अन्वेषण के इतिहास में सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति यदि कोई है तो नैनसिंह रावत का नाम सर्वोच्च शिखर पर है। उन्नीसवीं सदी के हिमालयी अन्वेषक नैनसिंह का जन्म 21 अक्तूबर, 1830 को ग्राम भटकूड़ा में हुआ था। शुरू से ही परिश्रमी, मेहनती, नैनसिंह के जीवन का उद्देश्य अपने लक्ष्य को पा लेने का था। जीवन की कई विसंगतियों को पार कर लगातार आगे बढ़ते रहने में, अनुसंधान करने में भयंकर कठिनाइयों का सामना करना तो जैसे नैनसिंह की आदत में शुमार हो चुका था।

नैनसिंह की प्रतिभा उनकी सूझबूझ और क्षमता का अद्भुत विवरण इस पुस्तक में है। उनकी कार्यपद्धति से भारत के ही नहीं अपितु विदेशों के भी प्रतिनिधि कायल थे।

उनकी जीवनगाथा को सरलतम रोचक शैली में श्री शेखर पाठक ने प्रस्तुत किया है। मानो इस यात्रा में हम भी सहयात्री हैं।

**प्रोफेसर शेखर पाठक** हिमालयी इतिहास के अध्येता, निरंतर यात्रा करने वाले तथा जन-आंदोलनों के हिस्सेदार रहे हैं। कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल में तीन दशक से अधिक समय तक इतिहास के शिक्षक रहने के साथ आप भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली तथा भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फैलो रहे हैं। फिलहाल आप नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली के समकालीन अध्ययन संस्थान में सीनियर फैलो हैं और हिमालय के औपनिवेशिक युग के इतिहास पर कार्यरत हैं।

रु. 100.00

ISBN 978-81-237-5505-2

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

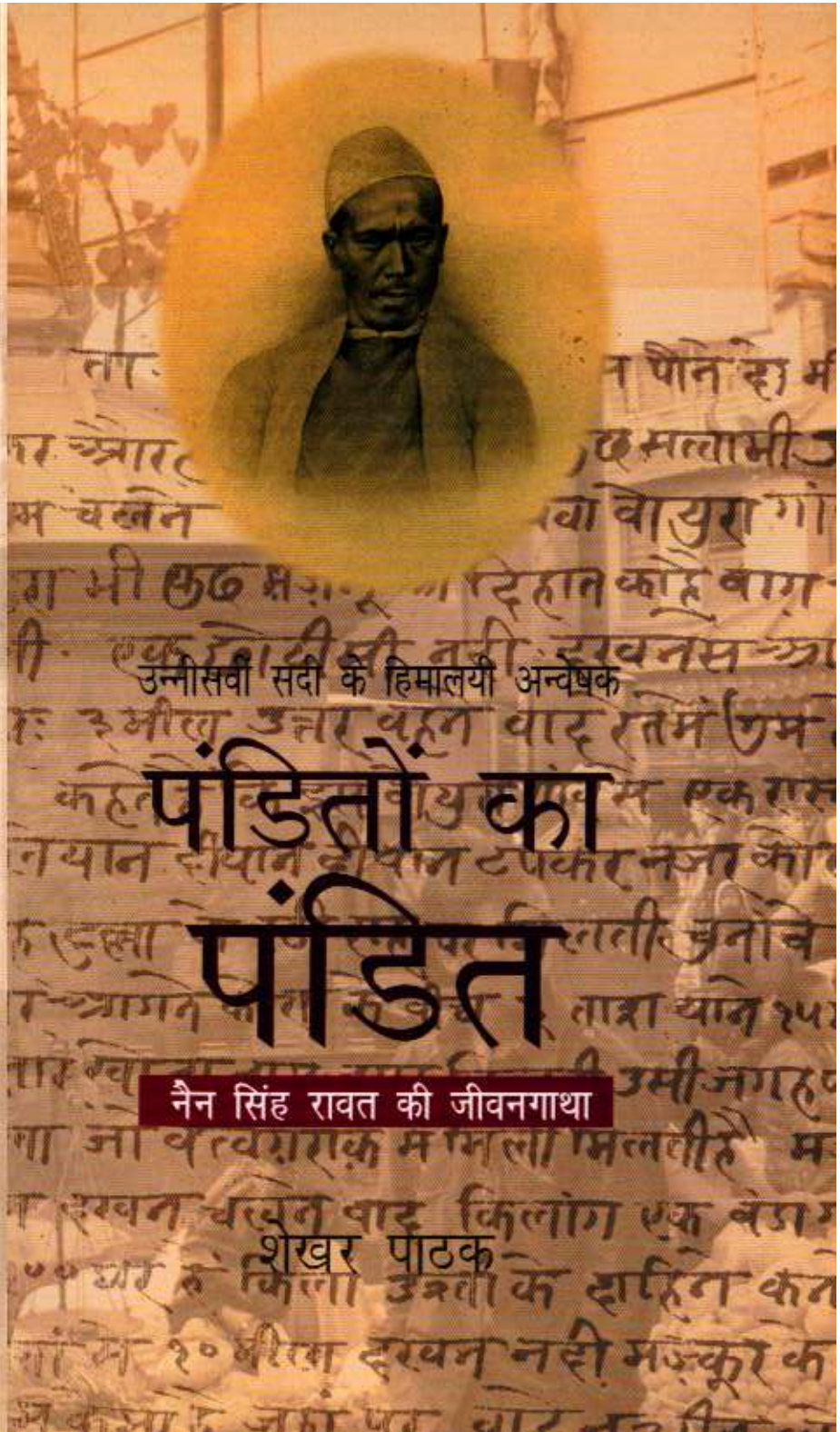

उन्नीसवीं सदी के हिमालयी अन्वेषक

# पंडितों का पंडित

## नैन सिंह रावत की जीवनगाथा

शेखर पाठक

*विविध*

# पंडितों का पंडित

## उन्नीसवीं सदी के हिमालयी अन्वेषक नैन सिंह रावत की जीवनगाथा

**शेखर पाठक**

**नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया**

ISBN 978-81-237-5505-2

पहला संस्करण : 2009 *(शक 1930)*

© शेखर पाठक, 2008

Original : Panditon Ka Pandit *(Hindi)*

**रु. 100.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

# आभार

**संस्थाएं**

रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी, लंदन
भारतीय सर्वेक्षण विभाग, देहरादून
राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
स्वेन हेडिन फाउंडेशन, स्टोकहोम, स्वीडन
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल
जवाहरलाल नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली

**व्यक्ति**

स्व. मदनमोहन मेहता
स्व. कवींद्र शेखर उप्रेती
स्व. कुंदन सिंह रावत
स्व. ठाकुर प्रसाद सिंह
स्व. धर्मवीर भारती
स्व. उमेश चंद्र पंत
डॉ. आर. एस. टोलिया
श्री भवान सिंह रावत
डॉ. राम सिंह
श्री चण्डी प्रसाद भट्ट
प्रो. पुष्पेश पंत
डॉ. रामचंद्र गुहा
सुश्री चरनजीत कौर मामिक
डॉ. शेर सिंह पांगती
श्री डैन जैन्सन
डा. ललित पंत
श्री कमल जोशी
प्रो. रघुबीर चंद
प्रो. उमा भट्ट
श्री बी.डी. सिंह
प्रो. मृदुला मुखर्जी
डॉ. प्रकाश उपाध्याय
डॉ. भूपेन मेहता

# अनुक्रम


*प्रस्तावना* *ग्यारह*

1. **हिमालय की खोज**
   सिकंदर से सर्वे आव इंडिया तक 1
2. **औपनिवेशिक शासन और हिमालय**
   नई व्यवस्था के तहत नये अभियान 20
3. **नैन सिंह : पृष्ठभूमि तथा परिवार**
   कठिन परिवेश, जटिल चुनौतियां 35
4. **पहली बार ल्हासा**
   देहरादून से काठमांडू से ल्हासा से कैलास 66
5. **ठोकज्यालुंग तक**
   सोने, सुहागे तथा नमक की खानों वाला मुलुक 95
6. **यारकंद में पांच महीने**
   मध्य एशिया के तमाम इलाकों से होकर 112
7. **अंतिम अंवेषण यात्रा**
   लेह से ल्हासा से तवांग से गुवाहाटी 136
8. **यात्रा साहित्य तथा विज्ञान लेखन**
   तीन डायरियां तथा एक किताब 153
9. **एक मूल्यांकन**
   शैली, संस्कार, सम्मान तथा स्मृति 161

*परिशिष्ट*

1. पंडित नैन सिंह रावत की वंशावली 179
2. संदर्भ सूची 181
3. पंडित नैन सिंह रावत : कुछ महत्वपूर्ण तिथियां 191

**समर्पित**

*हिमालय के तमाम*
*अन्वेषकों*
*और*
*हिमालय की*
*हिफाजत में*
*लगे लोगों को*

# प्रस्तावना

यद्यपि अन्वेषण के इतिहास में पंडितों या मुंशियों की लगातार चर्चा होती है और उनमें नैन सिंह रावत सर्वाधिक चर्चित रहे हैं लेकिन किसी पंडित या मुंशी की तो दूर नैन सिंह की भी कोई प्रमाणिक जीवनी पिछले साल तक उपलब्ध नहीं थी। नैन सिंह रावत तथा रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के 175 साल पूरे होने के मौके पर 2006 में नैन सिंह रावत के जीवन, अन्वेषण तथा लेखन के साथ हिमालय में अन्वेषण का विस्तृत सर्वेक्षण करने वाली तीन खंडों में प्रकाशित पुस्तक 'एशिया की पीठ पर' प्रकाशित हुई थी। यह नैन सिंह को अत्यंत विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयास था।

परंतु नैन सिंह रावत की एक सरल और लोकप्रिय तरीके से लिखी हुई जीवनी की जरूरत बनी हुई थी। इस हेतु प्रोफेसर विपिन चंद्र के आग्रह को स्वीकारते हुए यह पुस्तक तैयार की गई है। 'पंडितों का पंडित' इसी जरूरत को पूरा करने की कोशिश है। इसमें अधिकतम शोध सामग्री का प्रयोग हो सका है और जीवनी को सरल तथा रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। नैन सिंह रावत को लगातार उसके युग के साथ देखा गया है। बार बार उसकी डायरी के अंशों का प्रयोग किया गया है।

परिशिष्ट में कुछ सामग्री दी गई है। साथ ही संदर्भ सामग्री भी दी गई है ताकि यदि किसी पाठक को और अधिक जानकारी चाहिए तो वह बहुत सी और पुस्तकों या लेखों को देख सकता है। नक्शे तथा फोटो भी पाठकों को नैन सिंह के युग में ले जाने में मदद देंगे।

**शेखर पाठक**

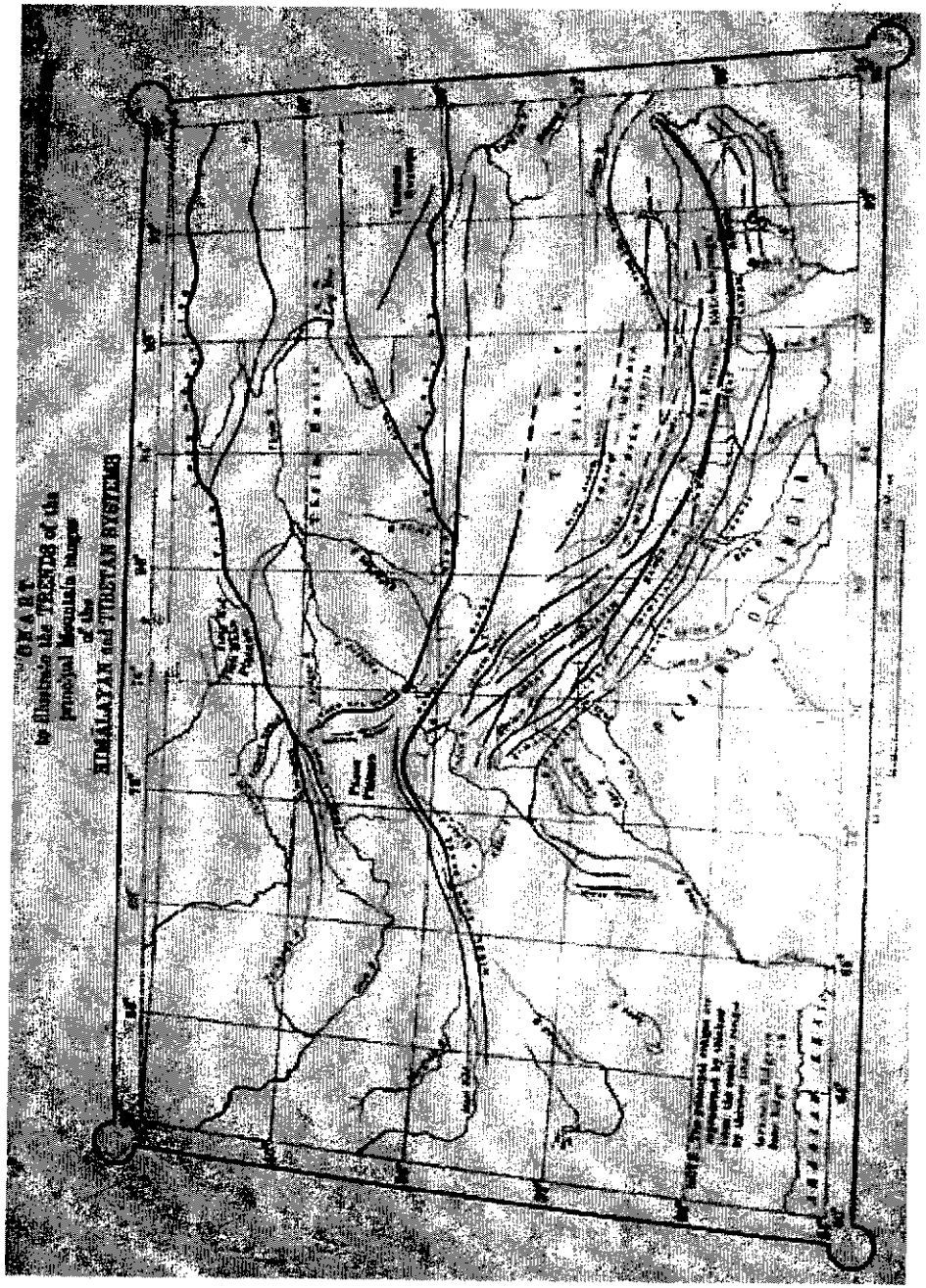


हिमालय तथा तिब्बत के पहाड़ों का सिलसिला

# 1

# हिमालय की खोज

## सिकंदर से सर्वे आव इंडिया तक

अन्वेषण मनुष्य की विकास यात्रा का मूल है और आवश्यकता ही आविष्कार को जन्म देती है। दुनिया के अनेक अनजाने लोग तथा देश इस क्रम में खोजे गए और लगातार कुछ न कुछ नए का आविष्कार होता रहा। ज्ञात भूगोल के भीतर भी अनेक अनजाने देश, इलाके-अंचल पिछली सदी तक खोज के लक्ष्य बने रहे। इनमें हिमालय, तिब्बत, मध्य एशिया, लातीनी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका आदि के क्षेत्र प्रमुख थे। शीघ्र ही उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव तथा अंटार्कटिका भी इसमें जुड़ गए। बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में तो चांद के बाद मंगल ग्रह तक अंवेषण के क्रम में आ गए हैं। आधुनिक युग में अंवेषण का विज्ञान साम्राज्यवाद का आधार बनता चला गया।

समस्त एशियाई मिथकों और प्राचीन साहित्य में हिमालय की पर्याप्त चर्चा रही है। भारतीय ही नहीं नेपाली, भूटानी तथा तिब्बती समाज, संस्कृति तथा पर्यावरण के साथ हिमालय का अपरिहार्य रिश्ता है। अपनी भू-राजनैतिक तथा प्राकृतिक विशिष्टता तथा अनेक समाजों, संस्कृतियों और राजनैतिक व्यवस्थाओं का संधि स्थल होने के कारण हिमालय प्रारंभ से ही महत्व का क्षेत्र रहा है। अनेक मानव समूह यहां आते और बसते रहे। इसीलिए इतनी विशिष्टता तथा विविधता वाला कोई और पर्वत इस पृथ्वी में नहीं है। सामाजिक विकास के अलग-अलग चरण आज भी यहां एक साथ दिखाई देते हैं। गुफा मानव से पशुचारक और खेतिहर समुदायों तक मनुष्य की विकास यात्रा की पड़ताल की जा सकती है। इन्हीं तमाम समुदायों से आज का हिमालयी समाज बना है।

मध्यकाल तक हिमालय के अनेक क्षेत्र व्यापक रूप से स्वायत्त थे तथा अनेक क्षेत्र सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से शेष भारत तथा तिब्बत से जुड़े होने के बावजूद राजनैतिक रूप से स्वतंत्र थे। अठारहवीं सदी में अफगानिस्तान, लद्दाख, कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड, नेपाल, सिक्किम, भूटान, पूर्वोत्तर सीमांत क्षेत्र तथा बर्मा में तरह-तरह के स्थानीय सामंती शासन प्रचलित थे। ये सभी मध्यकाल में विकसित हुई राजनैतिक-आर्थिक व्यवस्थाएं थीं।

अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में हिमालय में गोरखों तथा डोगरों की सत्ता अधिक शक्तिशाली होती गयी। गोरखा जिला, काठमांडू घाटी से विकसित गोरखा शासन ने सन् 1750 से 1809 के बीच सिक्किम से हिमाचल तक का क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया था, जो सन् 1815 में काली तथा तीस्ता नदियों के बीच सिमट आया था। सन् 1830 से 1842 के बीच डोगरों का कश्मीर घाटी, लद्दाख और पश्चिमी तिब्बत के कुछ हिस्सों में अधिकार हो गया था। कुछ समय के लिए डोगरा तथा गोरखा साम्राज्य के सीमांत एक दूसरे का स्पर्श करने लगे थे। पूर्वोत्तर के राज्य—विशेष रूप से अहोम-कुछ समय तक अपना अस्तित्व बनाए रहे। लेकिन अंततः उन्हें भी बर्तानवी साम्राज्यवाद के आगे झुकना पड़ा।

## सिकंदर से शुरू करें

हिमालय के प्रारंभिक अन्वेषण को समझने के लिए यदि विभिन्न मानव समूहों के इस क्षेत्र में आगमन तथा यहां मौजूद समूहों से अंतर्संबंध बनने का रोचक इतिहास छोड़ दिया जाए तो सबसे पहले सन् 327 ईस्वी पूर्व के सिकंदर के सैन्य अभियान पर नजर जाती है। मई 327 ईसवी पूर्व में हिंदुकुश में प्रवेश कर फरवरी 326 ईसवी पूर्व में सिंधु नदी को पार कर वह उत्तरी भारत में आया और 325 ईसवी पूर्व में वापस गया। 'विश्व विजेता' को दरअसल इन अपरिचित ऊंचाइयों ने ही ध्वस्त किया था। सिकंदर के सैन्य दल के अनेक सैनिक एक ग्लेशियर तथा दर्रे को पार करने में दफन हो गए थे। लेकिन इस अभियान से उसने वह ज्ञान अर्जित किया था जो तब तक जानी गई दुनिया में 2000 मील के 'रहस्यमय पूर्व' को जोड़ता था। प्राचीन भारत तथा यूनान के संबंधों का प्रत्यक्ष इतिहास यहीं से शुरू होता है। वापसी में सन् 323 ईसवी पूर्व में बेबीलोन में सिकंदर की मृत्यु हुई।

इतना ही महत्वपूर्ण था सन् 629 में ताकला मकान, थ्यानसान और फिर जंसकार-हिमालय को पार कर भारत पहुंचने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग का सांस्कृतिक यात्रा-अभियान। थानेश्वर के शासक हर्षवर्धन (सन् 606-647) के जमाने में भारत आने वाले ह्वेनसांग ने एक बर्फीले दर्रे को पार करते समय अपने दल के 14 लोगों को काल कवलित होते हुए देखा था। हिमालय में लद्दाख, कश्मीर, हिमाचल और उत्तराखंड के कुछ स्थानों की यात्रा के बाद वह पांचाल तथा मगध को चला गया था। ह्वेनसांग ने एशिया के एक विस्तृत क्षेत्र की प्रकृति, संस्कृति, समाज और राज व्यवस्था का विस्तृत वर्णन छोड़ा है। यद्यपि फाहियान चीनी यात्री के रूप में पांचवीं सदी के प्रारंभ में (सन् 405 से सन् 411 तक) भारत आ चुका था और इत्सिंग सन् 671 से सन् 689 तक 14 साल भारत में रहा पर उन्हें ह्वेनसांग जितना चर्चित होने का सौभाग्य नहीं मिला। ह्वेनसांग को उचित ही 'तीर्थयात्रियों का राजकुमार' (प्रिंस आव पिलग्रिम्स) कहा गया था।



इस बीच अनेक बौद्ध धर्म प्रचारकों और गुरुओं के तिब्बत जाने के संदर्भ मिलते हैं। यह सिलसिला ईसा पूर्व से ईसा पश्चात् की सदियों तक चलता रहा। इनमें कुमारजीव, धर्मरक्षित, बोधिधर्म, शांतिरक्षित, मणिपद्म या पद्मसंभव, धर्मकीर्ति, अतीसा (दीपंकर) आदि प्रमुख हैं। ईसा पूर्व की सदियों में ऋषभदेव या आदिनाथ का तथा नवीं सदी के प्रारंभ में आदि शंकराचार्य (सन् 788 से 820) का क्रमशः पश्चिमी तिब्बत तथा हिमालय के कुछ स्थानों पर आगमन अध्यात्म के साथ अन्वेषण से भी जुड़ा हुआ है। हिमालयी तीर्थयात्रा की दो परंपराएं इन आगमनों से शुरू हुई।

छठी सदी में तिब्बत नाम से अरब के लोग परिचित थे। भारत में इसका पुराना नाम 'त्रिविष्टप' प्रचलित था। हालांकि प्राग का प्लैनो कार्पिनी सन् 1246-47 में मंगोलिया की यात्रा कर चुका था पर हिमालय के उस पार की मार्कोपोलो की चर्चित यात्रा अभी होनी थी। मार्कोपोलो तथा उसके समूह ने सन् 1260 ईस्वी में कुस्तुनतुनियां से अपनी महान यात्रा प्रारंभ की। तब मार्कोपोलो मात्र 17 साल का था। फारस से कुछ मरुस्थली इलाकों से होकर उसका दल बल्ख तथा आक्सस नदी (सन् 1272) के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों, पामीर के पठार से पुराने रेशम मार्ग होकर सिनकियांग, फिर ताकला मकान पर्वत के आस-पास, अंततः यारकंद और तुन लुवांग होकर चीन की दीवार तक पहुंचा था।

लगभग चार साल बाद वह कुबलाई खां के दरबार में काईपिंग नामक स्थान पर पहुंचा और 17 साल तक वहां रहा। मार्कोपोलो की यात्रा ने न सिर्फ यूरोप तथा एशिया में संपर्क को बढ़ावा दिया बल्कि यूरोप द्वारा शेष दुनिया को जानने का क्रम इससे बढ़ा, जिसकी परिणति कोलंबस तथा वास्कोडीगामा की यात्राओं में हुई। मार्कोपोलो की यात्रा से मध्य एशिया के कठिन भूगोल के साथ साथ चीन की संपन्नता की जानकारी भी पश्चिम को हुई और रेशम मार्ग से होने वाला व्यापार इसके बाद निरंतर फैलता चला गया। यह पूर्व-पश्चिम के संबंधों का विस्तार भी था। इस यात्रा से मिलने वाली जानकारी ने पुनर्जागरण के समय के यूरोपीय यात्रियों को प्रभावित किया और उनके अंवेषक, व्यापारी या दुस्साहसी बनने के मार्ग प्रशस्त किए।

सन् 1253 से 1255 के बीच मंगोलिया की यात्रा करने वाले फ्रायर विलियम रुबरक द्वारा दिए गए वहां के वर्णन से ब्रिटेनवासियों को उत्तरी तिब्बत की पहली झलक मिली थी। इससे यूरोप में तिब्बत के बारे में पहला कौतूहल जन्म ले सका। चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में पोरडेनान के फ्रायर ओडोरिक ने पीकिंग की यात्रा की थी और मध्य एशिया से होकर वह सन् 1330 में वापस गया था। उसके ल्हासा जाने की बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया लेकिन अवश्य ही उसकी मुलाकात ल्हासा गए हुए लोगों से हुई थी। यह किसी यूरोपवासी के ल्हासा के सबसे करीब जाने की घटना थी। यूरोप से वास्तव में तिब्बत जाने और वहां से लौटने वाले यात्रियों से लगभग 300 साल पहले की इस घटना की उस समय व्यापक चर्चा नहीं हो सकी थी।

अलबरूनी हिमालय के पश्चिमोत्तर हिस्सों से गुजरा था। उसने हिमालय के कुछ हिस्सों के साथ मेरु तथा कैलास आदि शिखरों का जिक्र किया था। चौदहवीं सदी में मोरक्को का अंवेषक-यात्री इब्नबतूता मिस्र, मक्का, मध्य पूर्व, समरकंद, खुरासान और बल्ख होकर सितंबर 1333 में हिंदुकुश पार कर सिंधु नदी के किनारे पहुंचा था। दिल्ली आकर वह मुहम्मद बिन तुगलक के दरबार में रहा। अपने 'रेहाला' में उसने भारत और मध्य एशिया का पर्याप्त वर्णन छोड़ा है।

गजनबी और गोरी के बाद हिंदुकुश को पार करता हुआ सन् 1398-99 में तैमूर लंग भारत आया और लूटपाट कर वापस चला गया, पर चीन के अभियान (सन् 1404-05) से वह जीवित नहीं लौट सका। उत्तरी भारत में लूटपाट तथा 10 हजार से ज्यादा लोगों की हत्या करने वाले तैमूर के 20 हजार से ज्यादा सैनिक हिंदुकुश पर्वतमाला को पार करने में मारे गए। स्वयं उसकी मृत्यु बर्फीले तूफान के बीच हुई। इसी तरह सन् 1208 में चंगेज खां के नेतृत्व में चीन पर मंगोल हमला हुआ और पीकिंग पर अधिकार कर लिया गया। तत्पश्चात् मंगोल यूरोप तक हमले करते रहे। युद्ध और लूटपाट के साथ अंवेषण की प्रक्रिया भी चलती रही। इसी के बाद चीन के मिंग वंश के शासकों (सन् 1368-1644) ने विशाल दीवार का निर्माण किया। अहमदशाह अब्दाली तथा नादिर शाह के अठारहवीं सदी में हुए हमलों का पश्चिमोत्तर हिमालयी क्षेत्रों पर असर रहा।

मध्यकालीन भक्त कवियों तथा सूफियों की हिमालयी यात्राओं का जिक्र मिलता है लेकिन गुरु नानक (सन् 1469-1539) की यात्राएं अधिक चर्चा योग्य हैं। यदि गुरु नानक ने यात्राओं का विवरण छोड़ा होता तो यह ह्वेनसांग के विवरण जितना ही महत्वपूर्ण होता। नानक ने तिब्बत, असम, उत्तराखंड, हिमाचल, कश्मीर-लद्दाख, काबुल, कंधार, बुखारा, लंका, मक्का, मदीना, अदन, बगदाद तक यात्रा करने का जोखिम उठाया था और जिन स्थानों पर वे गए वहां आज कोई स्मारक या गुरुद्वारा मौजूद है।

## हिमालय में आए आधुनिक यूरोपीय

हालांकि हिमालय की चर्चा तो ग्रीक भूगोलविद् टौलमी से शुरू हो चुकी थी लेकिन हिमालय का पहला 'अनुमानित' नक्शा अकबर के दरबार में आने वाले पहले जेसुइट शिष्टमंडल (1579) के सदस्य फादर एंथनी मांसरेट द्वारा सन् 1590 में प्रस्तुत किया गया था और उसे तिब्बत में तथाकथित 'ईसाइयों' के होने की सूचना थी तथा मानसरोवर झील की भी। यह नक्शा तथा वर्णन प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित नहीं था। यूरोपीय व्यक्तियों की हैसियत से हिमालय का पहला वर्णन राल्फ फिंच (1583-91) तथा विलियम फिंच (1608-11) का माना जा सकता है।

यह क्रम सत्रहवीं सदी में जेसुइट पादरियों ने फिर प्रारंभ किया। जेसुइट पादरियों



का एशिया या अन्यत्र आगमन दुनिया में ईसाई धर्म के प्रचार और प्रकारांतर में उपनिवेशवाद के विस्तार की कहानी से पहले एशिया सहित दुनिया के तमाम अनजाने क्षेत्रों के अन्वेषण की कहानी है। जेसुइट पादरी सिर्फ धर्म प्रचारक नहीं थे। प्रतिभा-साहस से संपन्न तथा निरंतर प्रयोगशील इन पादरियों में खतरों से खेलने का अद्भुत गुण था। उन्होंने मिसीसिपी के क्षेत्रों, एंडीज के शिखरों, सहारा के रेगिस्तान से जापान के समुद्र तटों और हिमालय की ऊंची घाटियों-दर्रों से तिब्बत के पठार तक हर क्षेत्र को नापा था। हथेली में मृत्यु को ले कर चलने वाली ये यात्राएं जल और स्थल दोनों तरह के मार्गों से और दलदल, मरुस्थल, ठंडे मरुस्थल तथा बर्फीले दर्रों सहित विभिन्न भूगोलों से हर मौसम को अनुभव करते हुए की गई थीं।

पुर्तगालियों ने गोवा में अपना आधार सन् 1510 में स्थापित कर दिया था। इससे पहले सन् 1500 में वे लातिनी अमेरिका (ब्राजील) जा चुके थे। दिल्ली में अभी सल्तनत काल का अंतिम दौर चल रहा था। यहीं से अगली सदी में जेसुइट मिशन आगरा के मुगल दरबार में जाने में सफल हुआ। शायद आगरा में ही फादर अंतोनियो डी अंद्रादे को दो ऐसे यात्रियों से मिलने का मौका मिला, जो उत्तर के इलाकों (हिमालय या हिमालय पार) की यात्रा कर लौटे थे। इनमें से एक पुर्तगाली व्यापारी दियागो डी अलमेईडा बताया जाता है, जिसने सन् 1600 के आसपास लद्दाख की यात्रा की थी। सन् 1603 में गोवा वापसी पर उसने अपने सहयोगियों तथा मित्रों से वहां (लद्दाख में) रहने वाले 'ईसाई समुदाय' का जिक्र किया था।

लेकिन हिमालय के पार जेसुइटों की पहली बड़ी यात्रा का श्रेय बेंटो डी गोज को जाता है, जिसने 1603-07 के बीच लाहौर से पेशावर, काबुल, बदक्सा, पामीर क्षेत्र, यारकंद, बुखारा, ताकला मकान, थ्यानसान और तुरफान होकर चीन की दीवार तक की यात्रा की थी। हिंदुकुश क्षेत्र में उसका कारवां डाकुओं द्वारा लूटा गया था, बावजूद इसके कि 400 सैनिकों को सुरक्षार्थ नियुक्त किया गया था। भारत से चीन जाने वाला वह पहला यूरोपीय था और उसने कुल 4000 किमी. की यात्रा की थी। यह दक्षिण-पश्चिम दिशा से उत्तर-पूर्व की यात्रा थी। वह हिमालय को दक्षिण से उत्तर की ओर पार करने वालों में न था। 11 अप्रैल 1607 को चीन के सुचो नामक स्थान में गोज की मृत्यु हुई।

हिमालय को दक्षिण से उत्तर की ओर पार करने का श्रेय पादरी अंतोनियो डी अंद्रादे तथा मेन्युअल मारक्यूज को मिला, जिन्होंने माणा दर्रे से होकर पश्चिमी तिब्बत (गूगे) की राजधानी छपराङ पहुंचने में सफलता पाई थी। अनेक लेखकों ने अंद्रादे के श्रीनगर को कश्मीर में समझने की गलती की है और जे. एन. एल. बेकर ने अपनी मशहूर पुस्तक में दिए नक्शे में अंद्रादे का मार्ग ही नहीं दिखाया है। अंद्रादे तथा मारक्यूज 30 मार्च 1624 को आगरा से चले थे। 'खोये ईसाई भाइयों' की खोज में वे

हरद्वार से गंगा, देवप्रयाग से अलकनंदा के साथ श्रीनगर, कर्णप्रयाग, जोशीमठ और बद्रीनाथ होकर 18400 फीट ऊंचे माणा दर्रे को सन् 1624 के जून अंत में पार करने में सफल हुए।

अनेक बार कमर-कमर तक और कुछ बार कंधों तक ऊंची बर्फ में उन्हें चलना पड़ा। वे दोनों हिमदंश के शिकार हुए थे। बर्फ की चमक ने उन्हें कुछ समय के लिए अंधा भी बना दिया था। जुलाई 1624 में दूसरे प्रयास में तिब्बती मार्ग-दर्शकों की मदद से वे उपरी सतलज घाटी में गूगे की राजधानी छपराङ, जो एक प्रसिद्ध व्यापारिक मंडी भी थी, पहुंच सके। पश्चिमी तिब्बत का छोटा सा भाग गूगे तब लद्दाख के अंतर्गत था। अंद्रादे ने गूगे की प्रकृति तथा समाज के साथ अन्यत्र से आए समुदायों के सदस्यों को भी वहां देखा। इन्हीं में नेपाल से आए हुए लोग भी थे।

छपराङ से जेसुइट बंधु वापस आगरा आए और सन् 1625 में उनके साथ छपराङ की यात्रा में तीसरा मिशनरी गोनजेल्स डी सूजा भी गया था। वे छपराङ के शासक सहित अनेक तिब्बतियों को ईसाई धर्म स्वीकार करने को प्रेरित कर सके। 12 अप्रैल 1626 को तिब्बत में पहला ईसाई चर्च स्थापित हुआ। अगले चार साल तक यह मिशन चला। आगरा से माणा होकर अनेक जेसुइट पादरी छपराङ पहुंचे। तत्पश्चात् धर्म परिवर्तन के कारण छपराङ में विद्रोह हो गया। इस विद्रोह में लद्दाख के शासक ने भी मदद की थी। चर्च को ध्वस्त कर लगभग 400 धर्मांतरित तिब्बतियों को या तो मार डाला गया या गुलाम बना दिया गया और जेसुइट पादरी और धर्मांतरित शासक को गिरफ्तार कर लेह ले जाया गया। सन् 1631 में फ्रांसिस्को डी एजेवेदो को छपराङ जाना पड़ा। उसके साथ तिब्बती बोल सकने वाला जॉन डी ओलीवियरा भी था। सन् 1635 में यह मिशन बंद कर दिया गया।

इसके बाद यूरोपियनों द्वारा पुनः माणा दर्रा पार करने की घटना सन् 1855 में तब हुई जब अडोल्फ स्लागेंटवाइट द्वारा इसे पार किया गया था। उत्तरकाशी जिले की जाडगंगा की घाटी से होकर वह तिब्बत से वापस आया था। इस तरह उन्नीसवीं सदी में यह श्रेय कंपनी के लिए सर्वेक्षण कर रहे एक जर्मन अन्वेषक को मिला।

इस अवधि में दो और जेसुइट पादरियों-स्टीफन सेसीला तथा जॉन कैबराल—ने कंचनजंगा के पास की घाटी से हिमालय पार किया। यह दल 2 अगस्त 1626 को हुगली से चलकर कूच बिहार आया, जहां से 2 फरवरी 1627 को चला और दुआर, पारोजौंग, रैदक घाटी, चुंबी घाटी तथा तांगला होकर तिब्बत पहुंचा। कैबराल जनवरी 1628 में सांगपो नदी के किनारे स्थित सिगात्से नगर पहुंचने वाला पहला जेसुइट था। बाद में वह नेपाल होकर भारत वापस लौटा।

सेसीला ने अगले साल भूटान की यात्रा भी की थी। कैबराल सन् 1631 के मध्य में पुनः सिगात्से वापस आया। सेसीला की 6 अगस्त 1631 को सिगात्से में मृत्यु हुई



थी। कैबराल के सन् 1631 के अंत में हुगली लौटने के बाद तिब्बत के इस भाग में जेसुइटों के कार्यकलाप रुक गए। इस तरह सत्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में (सन् 1624-1641) हिमालयी अन्वेषण में जेसुइट पादरियों का स्मरणीय योगदान रहा। तीन दशक की यह सक्रियता फिर अगले 75 साल तक चुप्पी में ही बदली रही।

इप्पोलिटो देसीदेरी की तिब्बत यात्रा से पूर्व पीकिंग की शाही वेधशाला में कार्यरत दो जेसुइट पादरियों—आस्ट्रियावासी जोहन ग्रूबेर तथा बेल्जियमवासी अलबर्ट डी आरविले—ने पीकिंग से तिब्बत का पठार तथा हिमालय पर्वत पार कर आगरा तक की यात्रा की थी। वे 13 अप्रैल 1661 को पीकिंग से चले थे। सिनिंग फू होकर 8 अक्टूबर 1661 को ल्हासा पहुंचे। फिर कांपा, टिंगरी होकर भोट कोसी नदी की राह (जहां से होकर आजकल का काठमांडू-ल्हासा मोटर मार्ग गुजरता है) वे जनवरी 1662 में काठमांडू और मार्च में आगरा पहुंचे। इतनी लंबी और कठिन यात्रा, जो एक अत्यधिक प्राकृतिक सौंदर्य से भरे क्षेत्र में हुई थी और 1850 के बाद एवरेस्ट के रूप में चर्चित होने वाले शिखर के करीब से होकर गुजरी थी, का विवरण इस विस्तृत इलाके के बारे में बहुत अधिक जानकारी नहीं देता था।

देसीदेरी दिल्ली से फादर इमेनुअल फ्रेयरे के साथ लाहौर से पीरपंजाल होकर प्रचलित मुगल मार्ग से 13 नवंबर 1714 को श्रीनगर (कश्मीर) पहुंचा। जाड़ों भर श्रीनगर में निवास कर मई 1715 के अंतिम दिनों में जोजिला दर्रे को पार करने वाला वह पहला यूरोपीय बना। जंसकार पर्वतमाला का यह दर्रा अमरनाथ गुफा के पश्चिम तथा कारगिल युद्ध क्षेत्र के दक्षिण पूर्व में स्थित है। 20 जून 1715 को वे लेह (लद्दाख) पहुंचे और 17 अगस्त 1715 को वहां से चल कर गरतोक, टोकचेन, ट्राडम, शाकाजोंग, टिंगरी आदि स्थानों से होकर 18 मार्च 1716 को ल्हासा पहुंचने में सफल हुए। तब तक देसीदेरी को गोवा से चले दो साल चार माह, दिल्ली से चले डेढ़ साल और कश्मीर से चले दस माह हो गए थे। लगभग 158 साल बाद सन् 1874-75 में लेह से ल्हासा तक की अगली ऐतिहासिक यात्रा एक नए, कठिन और भिन्न मार्ग से नैन सिंह ने की थी, हालांकि वह काठमांडू से ल्हासा की यात्रा सन् 1865-66 में कर चुका था।

देसीदेरी ल्हासा और उसके आस-पास पांच साल तक रहा। वह सामये सहित अनेक मठों में गया और वहां अनेक दिनों तक रहा। तिब्बत के आम लोगों के अलावा वह विशिष्ट लामाओं से मिला। तिब्बती भाषा पर उसने पुस्तक लिखी। उसने वहां लामा धर्म की सीमाएं और ईसाई धर्म की विशेषताएं प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया। तिब्बत के मिशन को कापुचिन पादरियों को सौंपने के निर्णय (जो कि सन् 1719 में हुआ था) के बाद 25 अप्रैल 1721 को देसीदेरी ल्हासा से चलकर कुटी (नेपाल-तिब्बत सीमा) मार्ग से होकर दिसंबर 1721 में काठमांडू पहुंचा। वहां से वह पटना और मद्रास होकर रोम गया। दूसरी ओर नेपाल में पृथ्वी शाह ने कापुचिन पादरियों को काठमांडू

घाटी से बाहर कर दिया और यूरोपीय व्यापारियों के नेपाल प्रवेश पर रोक लगा दी।

इस क्रम की अंतिम यात्रा एक हालैंडवासी सैमुअल वान डर पुटी द्वारा की गई। वह न जेसुइट पादरी था और न अन्वेषक। पुटी ने एशिया के अनेक हिस्सों सहित तिब्बत की यात्रा सन् 1728 से 1730 के बीच की थी। उसने अपनी सभी डायरियां जला दी थीं। लेकिन उसके द्वारा बनाया गया तिब्बत का नक्शा तथा कुछ अन्य सामग्री क्लीमेंट्स मारखम को मिली थी, जिस कारण तिब्बती अन्वेषण के इतिहास से उसका नाम गुम नहीं हो सका।

जेसुइट पादरियों के मन में भौगोलिक अन्वेषण के साथ-साथ धर्म प्रचार की इच्छा थी। कुछ ने खगोलीय सर्वेक्षण भी किया। इन सीमाओं के बावजूद उनकी यात्राएं महान थीं। तिब्बत, चीन तथा मध्य एशिया के आधुनिक अंवेषण की शुरूआत दरअसल जेसुइट पादरियों ने ही की, यद्यपि कुछ ही जेसुइट पादरी भूगोल के जानकार थे।

## नए अभियान

अठारहवीं सदी के मध्य से पुनः हिमालय और तिब्बत की खोज का सिलसिला शुरू हुआ। यह क्षेत्र तीन बड़े साम्राज्यों के मध्य संघर्ष का कारण बनने वाला था। उत्तर-पश्चिम में रूस, उत्तर-पूर्व में चीन और दक्षिण में अंग्रेजों का भारतीय साम्राज्य। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रूस सबसे अधिक निष्क्रिय तथा चीन सबसे अधिक सक्रिय था और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में रूस सबसे सक्रिय हो गया था। बड़ी शक्तियों के मध्य एशिया तथा हिमालय के अन्वेषण तथा इस क्षेत्र में वर्चस्व कायम करने के बारे में हो रही प्रतियोगिता तथा प्रतिद्वंद्विता को ही 'ग्रेट गेम' का नाम दिया गया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी की रणनीति सन् 1757 के प्लासी के युद्ध के बाद भारतीय उप महाद्वीप के दूरस्थ क्षेत्रों पर अधिकार करने के लक्ष्य में बदल गई थी। इसी समय हिमालय और हिमालय पार के इलाकों को जानने, समझने और अपने अधीन करने के अभियान शुरू हुए। अठारहवीं सदी के मध्य तक तिब्बत और हिमालय के बारे में एक ही नक्शा विश्वसनीय माना जाता था, जिसे पेरिस के भूगोलविद डी अनविल ने अपने चीन संबंधी एटलस के लिए बनाया था। यह पेरिस से सन् 1725 में प्रकाशित हुआ था और पीकिंग की वेधशाला को जेसुइट फादर बॉप्टिस्टे रेजिस आदि द्वारा भेजी गयी सामग्री के आधार पर बनाया गया था।

अनविल का बनाया भारत का पहला आंशिक रूप से विश्वसनीय नक्शा सन् 1752 में प्रकाशित हुआ था। इससे पहले 1733 में एक नक्शा प्रकाशित हो चुका था। यह स्पष्ट रूप से सांगपो (ब्रह्मपुत्र), सतलज, सिंधु आदि नदियों को पूरी तरह दर्शाता था। गंगा को मानसरोवर क्षेत्र से जन्म लेते दिखाने की गलती की गयी थी। जिसके कारण दशकों तक यह भ्रम बना रहा था कि सिंधु, सतलज और ब्रह्मपुत्र की तरह गंगा



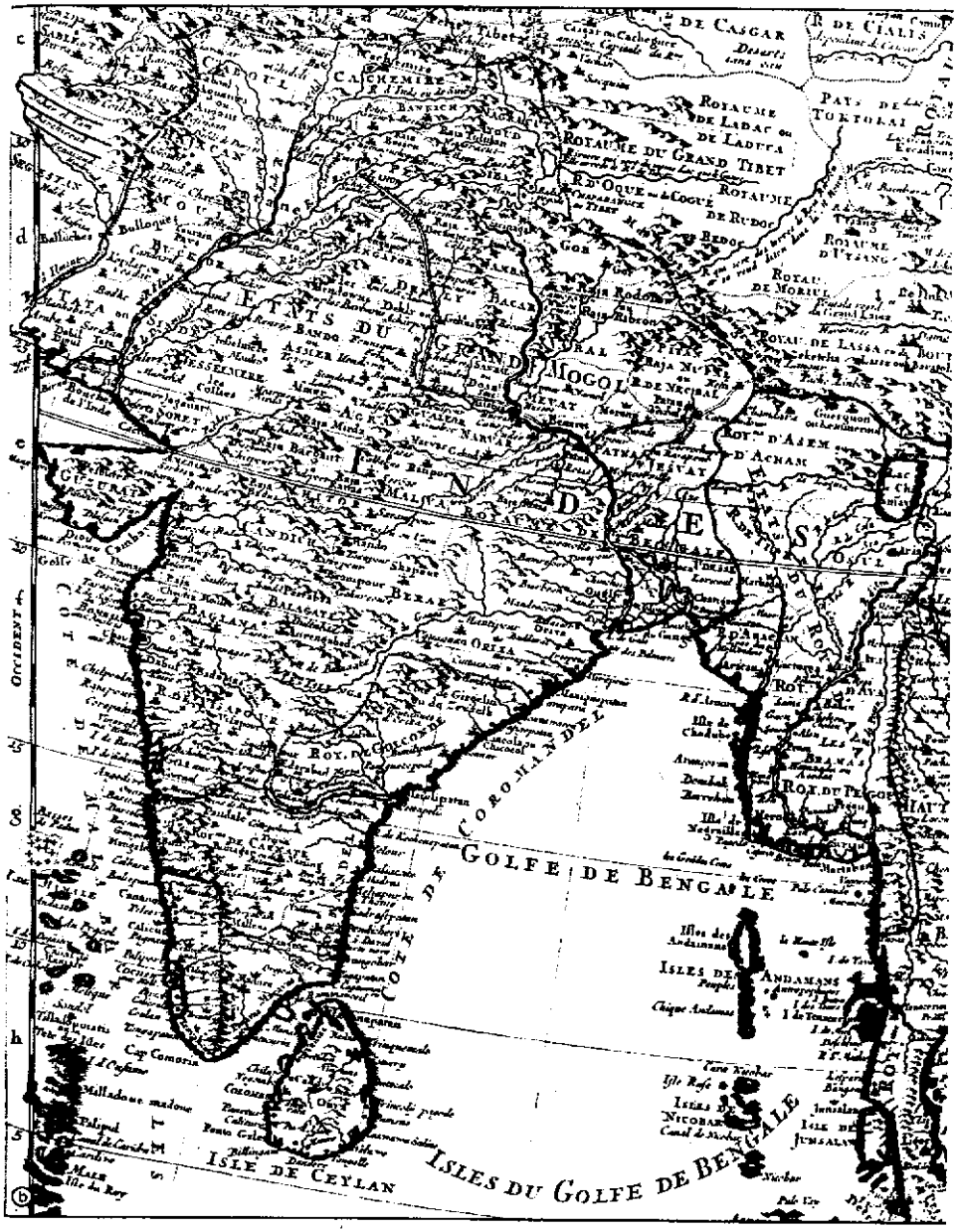


1733 में प्रकाशित भारतीय उपमहाद्वीप का नक्शा

भी तिब्बत से जन्म ले हिमालय को पार कर उत्तरी भारत में आती है। हिमालय की नदियों का क्रम इसमें सही न था। अठारहवीं सदी में बहुत कम नई जानकारी अब तक के भौगोलिक ज्ञान में जुड़ सकी।

भारत छोड़ने से पहले लार्ड राबर्ट क्लाइव (सन् 1757-1760, 1765-1767) ने कैप्टन जेम्स रेनैल (1742-1830) को सन् 1767 में बंगाल का प्रथम सर्वेयर जनरल नियुक्त किया। इसलिए सन् 1767 को ही सर्वे आव इंडिया की स्थापना का साल माना जाता है। 1776 में वह मेजर के पद से सेवा मुक्त हुआ। बाद में उसे रॉयल सोसायटी द्वारा फैलो चुना गया। उसका काम बंगाल प्रेसीडेंसी में कंपनी के अधिकार क्षेत्र के नक्शे बनाना और मार्ग सर्वेक्षणों संबंधी सामग्री इकट्ठा करना था। उसी ने डी अनविल के कार्य पर आधारित भारत का पहला मानचित्र सन् 1782 में बनाया था। यद्यपि रेनैल को अनविल के स्रोतों पर शंका थी। विशेष रूप से इस नक्शे में दी गयी गंगा की स्थिति से वह सहमत नहीं था।

लेकिन खुद उसे गंगा के स्रोत के बाबत भ्रम था कि गंगा का प्रवाह हरद्वार से ऊपर लगभग 800 मील है और इसमें कश्मीर तथा लद्दाख की तरफ का पानी भी आता है। सन् 1784 तथा 1790 में बनाए गए उसके नक्शों में ऐसा ही दर्शाया गया था। वह यह भी सोचता था कि वहां से गंगा एक सुरंग से होकर हिमालय के इस ओर आती है। यह भ्रम सन् 1808 में वेब तथा रेपर द्वारा किए गए गोमुख के पहले सर्वेक्षण के बाद ही कम हो सका, हालांकि भागीरथी की बड़ी सहायक जाडगंगा के बारे में तब अधिक जानकारी नहीं थी।

तत्कालीन नेपाली शासक के आग्रह पर नेपाल की दक्षिणी सीमा के नक्शांकन कैप्टन किनलोच के नेतृत्व में सन् 1767 में किए गए थे। उधर अगले साल कैप्टन जेम्स कुक अपनी पहली अंवेषण यात्रा में निकला था। कंपनी के किसी प्रतिनिधि का असली हिमालय आगमन 7 साल बाद तब संभव हुआ जब मई 1774 में वारेन हेस्टिंग्ज ने कंपनी के एक अधिकारी जॉर्ज बोगले को भूटान के शासक और तिब्बत के ताशी (या पंचम) लामा के पास भेजा। सन् 1772 में ही भूटान तथा उसकी दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्य कूचबिहार के बीच तनाव के कारण भूटान के विरुद्ध कंपनी ने सेना को भेजा था। इसी साल अफ्रीका में जेम्स ब्रूस नील नदी के स्रोत तक पहुंचा था।

कहा जाता है कि गोरखों की नजर भूटान पर लगी थी। उन्होंने ताशी लामा को भूटान की ओर से लार्ड हेस्टिंग्ज को पत्र लिखने को प्रोत्साहित किया था क्योंकि भूटान पारंपरिक रूप से तिब्बत पर निर्भर था। बोगले कूच बिहार और बुक्सा से असम और कंचनजंगा के पूर्व की ओर से होकर 6 जुलाई 1774 को भूटान की राजधानी ताशीछोजोंग में राजा के सामने प्रस्तुत हुआ। इस परिसर में 1000 बौद्ध भिक्षुओं सहित 3000 लोग रहते थे और इनमें एक भी महिला नहीं थी। राजा ने



बोगले तथा उसके साथ गए अलैक्जेंडर हैमिल्टन का भव्य स्वागत किया लेकिन तिब्बत जाने हेतु बोगले का संवाद सफल नहीं हो सका। बोगले अपने साथ डी अनविल के नक्शे की प्रति भी ले गया था।

तीन माह तक बोगले ने अपरिचित भूटानियों तथा तिब्बतियों की जीवन पद्धति को समझने का प्रयास किया। उसने स्थानीय प्रभावशाली लोगों से मित्रता बढ़ाई, तिब्बती कपड़े पहनने शुरू किए और तिब्बती भाषा को भी सीखने का प्रयास किया। अक्टूबर 1774 के प्रारंभ में बोगले को तिब्बत जाने की स्वीकृति मिली। 13 अक्टूबर 1774 को भूटान की राजधानी से वह तिब्बती दर्रे की ओर चल निकला। यह मार्ग कंचनजंगा शिखर के पूर्व की ओर से होकर जाता था। इस कठिन और कष्टों भरी यात्रा के बाद, जो बड़ी सीमा तक सेसिला तथा कैबराल द्वारा चले गए सन् 1626 वाले मार्ग से हुई थी और जिसकी तब उसे जानकारी नहीं थी, बोगले तिब्बत में पंचम लामा के मुख्यालय देसेरिपगे यानी सिगात्से नामक जगह पर पहुंचा। नवंबर 1774 में पहली मुलाकात के बाद पंचम लामा से उसकी गहन मित्रता भी हो गई।

यहां बोगले तीन माह तक प्रतीक्षा करता रहा कि शायद उसे ल्हासा जाने की स्वीकृति मिल सकेगी। दरअसल हेस्टिंग्ज ने पंचम लामा को तिब्बत का शासक समझा था और पत्र तथा उपहार सिर्फ उसी के लिए भेजे थे, जबकि तिब्बत का असली शासक ल्हासा में मौजूद नन्हा दलाई लामा था, जो तब चीनियों के प्रभाव में बताया जाता था। दलाई लामा से उसे मुलाकात की स्वीकृति नहीं मिली। वैसे भी तिब्बतियों के चीन, साइबेरिया, बुशहर तथा कश्मीर आदि से गहन व्यापारिक संबंध थे और इसमें उन्हें कोई हस्तक्षेप स्वीकार्य न था। बोगले तिब्बत के साथ व्यापार तथा सड़क संचार संबंधी जानकारी इकट्ठा करना चाहता था। ताशी लामा बोगले के इस प्रस्ताव से सहमत था कि कंपनी तथा तिब्बत के बीच व्यापार शुरू होना चाहिए लेकिन तिब्बती प्रशासक (रिजेंट) तथा चीनी अधिकारियों में ब्रिटिश इरादों के प्रति मौजूद शंका का भी उसने बोगले से जिक्र कर दिया था।

दुःखी मन से बोगले ने अप्रैल 1775 में कलकत्ता को वापसी की यात्रा शुरू की। सर्जन अलैक्जेंडर हैमिल्टन तथा पूरनगीर नामक ऐजेंट के साथ होने के बावजूद इस अभियान में बोगले के साथ कोई सर्वेयर नहीं था और वह अपने साथ मात्र मार्ग विवरण लाया था। 1000 मील (1600 किमी.) की कठिन यात्रा करके भी बोगले न तो ल्हासा जा सका, न तिब्बत के असली शासक तथा धर्मगुरु दलाई लामा से मिल सका और न ही तिब्बत से कंपनी के लिए मित्रता का कोई पत्र लेकर वापस आ सका। भूटान और तिब्बत के बारे में वह निश्चय ही पर्याप्त जानकारियां लेकर आया था, जिसका गहन अध्ययन कंपनी ने किया। यही इस यात्रा की उपलब्धि थी।

वारेन हेस्टिंग्ज ने सन् 1779 में पुनः बोगले को ल्हासा भेजने की योजना बनाई।

जेम्स रेनैल का सन् 1784 का नक्शा, जिसमें गंगा का स्रोत गलत दिखाया गया था



लेकिन पहले किन्हीं कारणों से यात्रा अभियान टल गया, फिर तिब्बत से यह सूचना आई कि सन् 1780 में चेचक से पंचम लामा की मृत्यु हो गई है। अगले साल (3 अप्रैल 1781) स्वयं बोगले की हैजे से कलकत्ता में मृत्यु हो गई। सन् 1774 में बोगले के साथ चिकित्सक की हैसियत से भूटान तथा तिब्बत गए अलैक्जेंडर हैमिल्टन ने सन् 1776 तथा 1777 में पुनाखा (भूटान) तक की दो छोटी यात्राएं कीं।

आर.जी.एस. से 63 साल पहले 1767 में सर्वे ऑव इंडिया की स्थापना

बोगले की रपटों से स्पष्ट था कि तिब्बत से सोना, सुहागा, नमक, चंवर गाय की पूंछें, ऊनी कपड़े तथा कश्मीरी शॉलों हेतु अच्छी ऊन निर्यात होती थी। उसे यह भी ज्ञात हो गया था कि तिब्बत द्वारा चीन में उत्पादित चाय का निर्यात भी होता है। तिब्बत मुख्यतः लोहा, रेशम, मसाले, फल, चावल, सूती कपड़े तथा मूंगे आदि सामग्री का आयात करता था। तिब्बत के व्यापार का बड़ा हिस्सा चीन के साथ होता था लेकिन दक्षिण की ओर से भारत, नेपाल, भूटान तथा असम/बर्मा से भी विभिन्न व्यापारिक मार्गों से व्यापार प्रचलित था।

बोगले की असमय मृत्यु के बावजूद वारेन हेस्टिंग्ज तिब्बत पर लगातार नजर

रखता रहा। दरअसल उसके माध्यम से बर्तानवी साम्राज्यवाद तिब्बत की तरफ देख रहा था। मुख्य रूप से हिमालयपारीय व्यापार तथा मध्य एशिया और तिब्बत में रूसी विस्तार पर उसकी नजर थी। सन् 1783 में पंचम लामा के नए शरीर में अवतरित होने की खबर ने हेस्टिंग्ज को मौका दे दिया। उसने अपने चचेरे भाई सैमुअल टर्नर को तिब्बत भेजने का निश्चय किया। टर्नर भी बोगले द्वारा अपनाए गए मार्ग से गया। टर्नर का तिब्बतियों से गहन संबंध नहीं जुड़ सका। उसे 18 माह के नन्हे पंचम लामा को देखने का मौक़ा मिला। लेकिन तिब्बतियों ने टर्नर को ल्हासा जाने की स्वीकृति नहीं दी। सन् 1784 में टर्नर भी बोगले की तरह वापस लौट गया पर उसकी डायरी शीघ्र प्रकाशित हुई और अगले सौ साल तक यूरोप में तिब्बत संबंधी महत्वपूर्ण पुस्तक बनी रही।

सन् 1783 में ही सेमुअल डेविस भूटान की यात्रा में गया था। उसके यात्रा विवरण में भूटान में मठों तथा बौद्ध धर्म के स्वरूप, विश्वास, धार्मिक सहनशीलता, मणि चक्र, लामा, सरकार, किसान, चिकित्सा पद्धति, विविध किले, व्यापार की वस्तुएं, स्थापत्य, नृत्य, पशु-पक्षी आदि का वर्णन था। यह माना जाता है कि टर्नर मिशन के बाद कुछ समय तक भारत-तिब्बत व्यापार में वृद्धि हुई लेकिन कुछ ही समय बाद तिब्बत के द्वार भारत के लिए बंद हो गए।

सन् 1785 में हेस्टिंग्ज के स्थान पर लार्ड कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया था। सन् 1791 में गोरखों ने तिब्बत के साथ हुए युद्ध के समय लार्ड कार्नवालिस से मदद मांगी थी। इस समय गोरखों द्वारा सिगात्से नगर तथा ताशील्हुंपो मठ को लूटे जाने के बाद एक विशाल चीनी सेना ने तिब्बत में आ कर नेपाली सेना को तिब्बत से बाहर जाने को विवश कर दिया। कार्नवालिस ने तटस्थता की नीति अपनाई, जिसने कंपनी शासन के प्रति तिब्बतियों, चीनियों तथा गोरखों तीनों को शंकित कर दिया। इस तरह चीनी सेना के तिब्बत में होने से बर्तानवी प्रभाव का वहां जाना बीसवीं सदी के प्रारंभ तक रुका रहा।

चीन के शासक किन लोंग ने तिब्बत के द्वार बाहरी दुनिया के लिए बंद कर दिए और तिब्बत व्यापार भी सिर्फ कैंटन के बंदरगाह से संभव हो सकता था। इस समय जहां ब्रिटिश मदद न मिलने से गोरखे गुस्सा हुए वहीं ईस्ट इंडिया कंपनी के हिमालय के पाद प्रदेश तक विस्तार ने तिब्बतियों के मन में शंका पैदा कर दी। चीनियों ने तिब्बतियों को यह विश्वास दिलाने में भी सफलता पाई कि कंपनी ने गोरखों की मदद की है और फिरंगी (यूरोपीय) लोग तिब्बत में बौद्ध धर्म के स्थान पर ईसाइयत को फैलाना चाहते हैं। इस समय जॉन गेरार्ड ने काठमांडू मार्ग का रेखांकन बनाया था।

टर्नर की वापसी के बाद तिब्बत पर क्रमशः गोरखों तथा चीनियों ने हमला किया। तब बर्तानवी समाज तथा शासन नेपोलियन के साथ युद्धों में व्यस्त था और उसे



हिमालय या तिब्बत में रुचि लेने का अवकाश न था। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक यही क्रम बना रहा। हां, इस बीच कलकत्ता से ल्हासा होकर पीकिंग जाने का सपना लिए थॉमस मानिंग नामक एक अंग्रेज सन् 1810 में कैंब्रिज से कलकत्ता आया था। अपनी चिकित्सा संबंधी जानकारियों के कारण वह सितंबर 1811 में 'वर्जित शहर' ल्हासा पहुंचने वाला पहला अंग्रेज बना। पीकिंग जाने की प्रतीक्षा में चार माह वह ल्हासा में रहा पर इस समय का सदुपयोग तिब्बत या ल्हासा का अध्ययन करने में नहीं कर सका। वर्ना ल्हासा का ही नहीं, तत्कालीन तिब्बती जीवन, दलाई लामा, विभिन्न मठों तथा व्यापार का विस्तृत वर्णन करने वाला वह पहला अंग्रेज बनता। अपने गंतव्य तक जाने में असफल होने पर अप्रैल 1812 में वह कलकत्ता को लौटा।

जब वह कलकत्ता आया तो कोई खास हलचल नहीं हुई। कुछ ही साल बाद भूटान तथा तिब्बत के द्वार विदेशियों के लिए पूरी तरह बंद हो गए। मानिंग के बाद सन् 1904 तक कोई अंग्रेज सरकारी या निजी रूप से ल्हासा नहीं जा सका। मानिंग के अलावा सन् 1904 से पूर्व यानी उन्नीसवीं सदी में ल्हासा पहुंचने का सौभाग्य जिन दो यूरोपियनों को मिला वे थे फ्रांस के पादरी एवरिस्ट हक तथा जोसेफ गैबे लेकिन वे यहां सन् 1846 में भारत से हिमालय पार करके नहीं बल्कि पीकिंग से पहुंचे थे। चीनी अधिकारियों द्वारा ल्हासा से निकाले जाने से पूर्व वे मात्र कुछ सप्ताह वहां रहे थे।

यद्यपि बोगले, टर्नर, मानिंग या एवरिस्ट हक तथा जोसेफ गैबे महान अन्वेषक न थे, लेकिन उन्होंने ही उस समय यूरोपवासियों को हिमालय तथा तिब्बत की झलक दिखाई थी। ये सभी यात्राएं राजनैतिक तथा व्यापारिक रूप से तो कुछ उपयोगी रहीं पर भौगोलिक ज्ञान में इनसे मामूली इजाफा हुआ। प्लासी के युद्ध के बाद ये तिब्बत की ओर घुसने के महत्वपूर्ण प्रयास थे। 18 वीं सदी के इन प्रयासों से ही 19 वीं सदी में वास्तव में हिमालय के उस पार जा सकने का सिलसिला प्रारंभ हुआ। अब मध्य तथा पश्चिमी हिमालय में यात्राओं का क्रम चलने वाला था।

साम्राज्यवादी दृष्टि से यह अस्वाभाविक न था कि तिब्बत की सीमाओं के बंद होने पर तिब्बत में ब्रिटिश रुझान और भी बढ़ता गया। तिब्बत के द्वारों के बंद हो जाने के बाद कंपनी शासन नेपाल से होकर तिब्बत जाने की सोचने लगा। गोरखों तथा तिब्बतियों में किसी तरह की मध्यस्थता हेतु सन् 1792 में कंपनी सरकार द्वारा बनाए गए विलियम कर्कपैट्रिक मिशन की असफलता के बावजूद यह विचार बन रहा था।

अतः सन् 1801 में कैप्टन नौक्स के नेतृत्व में दूसरा मिशन नेपाल भेजा गया। नौक्स काठमांडू में पहला ब्रिटिश रेजीडेंट बना और शीघ्र ही उसने नेपाल के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किए। लेकिन गोरखों द्वारा निरंतर ब्रिटिश नियंत्रण, प्रभाव तथा संरक्षण वाले क्षेत्रों में घुसपैठ की परिणति नेपाल युद्ध में हुई। सन् 1816 की सिगौली

की संधि के बाद काली नदी के पश्चिम का क्षेत्र कंपनी के अधिकार में आया और नेपाल अपने वर्तमान रूप में सिमट गया। नेपाली शासन को काठमांडू में एक अंग्रेज रेजीडेंट की उपस्थिति भी स्वीकार करनी पड़ी। दूसरी ओर भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शासित क्षेत्र का एक सीमांत (ब्रिटिश उत्तराखंड) तिब्बत को छूने लगा।

## फ्रांस की क्रांति तथा गोरखों का राज्य

जब फ्रांस की सामाजिक क्रांति की तैयारी हो रही थी तो मध्य हिमालय में गोरखा साम्राज्य का विस्तार हो रहा था। जिस वर्ष (सन् 1789) फ्रांस की क्रांति हुई, उसका अगला वर्ष हिमालय के इतिहास में गोरखों द्वारा कुमाऊं पर अधिकार तथा चंद शासन के अंत का था। तुरंत ही गोरखों ने तिब्बत पर भी हमला कर दिया। सन् 1791 में चीनी सेना द्वारा तिब्बत में घुसी नेपाली सेना पर हमले के कारण गोरखा-साम्राज्य का विस्तार गढ़वाल-हिमाचल की ओर रुक गया था। सन् 1792 में गोरखों ने तिब्बत के विरुद्ध नेपाल की मदद करने हेतु ईस्ट इंडिया कंपनी से प्रार्थना भी की थी। परिणामस्वरूप काठमांडू हेतु मार्ग का रेखाचित्र तैयार किया गया। इसे काठमांडू में कंपनी के प्रतिनिधि कैप्टन विलियम कर्कपैट्रिक के सहयोगी जॉन गैरार्ड के द्वारा बनाया गया था।

उधर मणिपुर के साथ कंपनी के संबंध सन् 1762 में राजा जयसिंह के समय तब शुरू हो गए थे जब बर्मा की ओर से मणिपुर पर निरंतर हमले हो रहे थे। भूटान के साथ सन् 1771 में बोगले मिशन के समय जन्मा तनाव सन् 1775 तक समझौते में बदलने लगा। सन् 1775 से सन् 1783 के बीच हेमिल्टन तथा सेमुअल टर्नर की यात्राओं के समय संबंध और प्रगाढ़ हुए। भूटान तथा सिक्किम होकर ल्हासा की कम दूरी भी इस क्षेत्र के प्रति औपनिवेशिक आकर्षण का कारण थी।

सन् 1804 से 1809 के बीच पूर्व में तीस्ता से पश्चिम में सतलज-ब्यास नदियों तक गोरखा साम्राज्य की ध्वजा लहराने लगी। खुड़बुड़ा (देहरादून) के युद्ध में गढ़वाल का अंतिम शासक प्रद्युम्न शाह लड़ते हुए मारा गया और उसका पुत्र सुदर्शन शाह, जो सन् 1815 के बाद छोटी टिहरी रियासत का शासक बनने वाला था, भागकर कंपनी क्षेत्र में चला गया। गोरखा साम्राज्य का विस्तार सन् 1815 के नेपाल युद्ध के बाद रुक गया और यह तीस्ता से काली के बीच में सिमट गया।

मिस्र की तरह नेपोलियन के भारत में आ धमकने का खतरा मौजूद था। सन् 1807 में नेपोलियन का रूस के जार अलैक्जेंडर से टिलसिट में पुनः समझौता हुआ। पर्सिया के शाह से समझौता हो जाने से तथा इस चर्चा से कि नेपोलियन ने अपना एक जनरल भारत जाने वाले मार्गों की पड़ताल हेतु भेज दिया है, भारत पर नेपोलियन के हमले की संभावना बढ़ गई थी। हालांकि नेपोलियन को भारत पर हमला करने का मौका नहीं मिला। लेकिन कदाचित् नेपोलियन के मन में दक्षिण भारत में हुए



आंग्ल-फ्रांसीसी (सन् 1756-1763) युद्ध तथा उसमें हुई फ्रांसीसियों की हार का बदला लेने का भाव रहा होगा।

यह प्रतिद्वंद्विता एक प्रकार से समस्त दक्षिण पूर्व एशिया में थी पर दक्षिण भारत में यह इस अर्थ में निर्णायक बिंदु पर पहुंच गई थी कि इस बीच (सन् 1757) कंपनी एक राजनैतिक शक्ति बन चुकी थी। सन् 1812 में नेपोलियन ने रूस पर हमला कर दिया था। इस युद्ध ने नेपोलियन की महत्वाकांक्षा को ध्वस्त कर दिया था तथा रूस में घुसे उसके 6 लाख सैनिकों में से मात्र 1 लाख ही जीवित लौट पाए। दूसरी ओर इस घटना चक्र ने ईस्ट इंडिया कंपनी को हिमालयी सीमांतों में अपने साम्राज्य का विस्तार करने को प्रेरित किया था। यमुना से पश्चिम के भारतीय राज्यों से समझौता करने तथा दुश्मन (फ्रांस) को सिंधु नदी पार न करने देने का निर्देश मिंटो को दिया गया था। उधर ईस्ट इंडिया कंपनी के पश्चिमोत्तर भारत की ओर हो रहे विस्तार को रूस ने भी गंभीरता से लिया था।

प्रद्युम्न शाह के समय 21 अप्रैल से 3 मई 1789 के बीच अंग्रेज चित्रकार थॉमस तथा उसके भतीजे विलियम डेनियल ने कोटद्वार, डाडामंडी, नैथाणा हो कर श्रीनगर तक की यात्रा की थी और खोह, नयार तथा अलकनंदा घाटी के कुछ दुर्लभ चित्र बनाए थे। इनके साथ अनूपशहर से दो सैनिक अधिकारी कैप्टन जॉन गुथरी तथा लेफ्टिनेंट जॉन स्टर्मर भी थे।

बावनी अकाल (संवत् 1752 या सन् 1795) के अगले वर्ष श्रीनगर में कैप्टन थॉमस हार्डविक का आगमन हुआ। वह कुंभ के मेले में हरद्वार आया था और 12 अप्रैल 1796 को कुछ सैनिकों तथा नौकरों के साथ हरद्वार से चल कर नजीबाबाद, कोटद्वार, द्वारीखाल, नैथाणा आदि स्थानों से होकर 29 अप्रैल 1796 को श्रीनगर पहुंचा था। उसकी गढ़वाल के तत्कालीन राजा प्रद्युम्न शाह तथा उसके भाइयों से मुलाकात हुई थी। डेनियल और हार्डविक दोनों ने अपने संस्मरणों में गढ़वाल के गांवों की दरिद्रता का वर्णन किया था।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने काशीपुर (उत्तराखंड के वर्तमान उधमसिंह नगर जिले में स्थित) में भांग की एक फैक्ट्री स्थापित की, जहां कंपनी के अधिकारी निरंतर आते रहते थे और हिमालय के नैसर्गिक सौंदर्य के बारे में सुनकर आकर्षित होते थे। इसी तरह बिहार तथा बंगाल की तराई में भी हिमालय संबंधी सतत कौतूहल कंपनी के अधिकारियों के मन में उठता रहता था। इनमें से अनेक अधिकारी पहाड़ों तक आए भी थे पर ये यात्राएं 'निजी' थीं और हिमालय का यह भाग तब गोरखा शासन के अंतर्गत था।

सन् 1802 में लार्ड वेलेजली (1798-1805) ने गाट नामक अधिकारी को कुमाऊं की संपूर्ण स्थिति जानने को भेजा था। इसी साल डा. फ्रांसिस ब्यूकैनन तथा लेफ्टिनेंट

कर्नल क्राफोर्ड ने नेपाल की यात्रा की थी। सन् 1807 में कंपनी ने नेपाल सरकार से स्वीकृति लेकर सन् 1808 में कैप्टन एफ. वी. रेपर, लेफ्टिनेंट डब्ल्यु. एस. वेब, कोलब्रुक तथा कैप्टन हैदर जंग हियरसे आदि को गढ़वाल भेजा था।

इस दल ने भौगोलिक परिदृश्य, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था तथा गोरखा शासन के अंतर्विरोधों के साथ उत्तराखंडवासियों की दुर्दशा को प्रत्यक्ष देखा-समझा था। यह संभावना प्रकट की थी कि कुछ ही दिनों में स्थानीय जनता गोरखों के खिलाफ विद्रोह कर देगी। दूसरी ओर हरबल्लभ मुंशी तथा उसके सहयोगियों ने भटवाड़ी से गोमुख तक का सर्वे 1 मई से 8 मई 1808 के बीच किया। हरबल्लभ ने भटवारी से गंगोत्री और कुछ आगे पहुंच कर बर्फ के बीच उस चट्टान को देखा था, जिसे गोमुख कहा जाता था और जहां से भागीरथी जन्म ले रही थी। इस दल के सदस्यों ने बदरीनाथ से आगे तक, फिर कुंवारी पास से अल्मोड़ा के करीब स्थित धामस गांव से होकर रूद्रपुर तक की यात्रा की थी।

अगली यात्रा तिब्बत तक होने वाली थी। सन् 1812 में विलियम मूरक्राफ्ट ने पिछली यात्रा के अनुभवी कैप्टन हैदर जंग हियरसे को साथ लेकर नीती दर्रे से होकर पश्चिमी तिब्बत की यात्रा की। उनके साथ गुलाम हैदर खां और हरकदेव पंडित भी थे, जिन्हें कदम गिन कर दूरी नापनी थी। यह दल 9 मई 1812 को ढिकुली (वर्तमान रामनगर के पास) से चलकर पश्चिमी रामगंगा के किनारे भिकियासैण, देघाट से लोहबा (गैरसैण) होकर कर्णप्रयाग और 24 मई को जोशीमठ पहुंचा। क्योंकि दो वर्ष पूर्व जोशीमठ और बद्रीनाथ तक के मार्ग का सर्वे रेपर, वेब तथा कोलब्रुक का दल कर चुका था। अतः मूरक्राफ्ट और हियरसे जोशीमठ से धौली नदी के किनारे-किनारे मलारी, नीती तथा उससे आगे जाना चाहते थे।

26 मई को जोशीमठ से चलकर ढाक तपोवन, रैणी और मलारी होकर 4 जून को वे सीमांत नीती गांव पहुंचे। 20 दिनों की प्रतीक्षा तथा प्रयत्न के बाद नीती दर्रे से हो कर यह दल 3 जुलाई 1812 को तिब्बत में दाबा (गरतोक) नामक स्थान पर पहुंचा। वेश बदलकर मूरक्राफ्ट ने 'मायापुरी' और हियरसे ने 'हरगिरि' नाम अपनाया। दोनों गुसॉइयों के वेश में कैलास-मानसरोवर तक जाना चाहते थे।

सतलज के किनारे-किनारे वे तीर्थापुरी होकर दारचिन पहुंचे, जो व्यापारिक मंडी के अलावा कैलास परिक्रमा हेतु आधार शिविर की तरह था। 6 तथा 7 अगस्त 1812 को मानसरोवर तथा राकसताल के आसपास गए। स्वयं बीमार हो जाने के कारण मूरक्राफ्ट ने हरकदेव से ज्यादा विस्तार से राकसताल को देखने को कहा। उसने पाया कि राकसताल के पश्चिमी कोने से सतलज की प्रथम शाखा निकलती थी। यह प्रमाणित हो गया था कि मानसरोवर से एक मौसमी धारा के अतिरिक्त कोई नदी जन्म नहीं लेती है। वापसी में वे 7 सितंबर को नीती पहुंचे।



मूरक्राफ्ट के विवरण से उत्तराखंड तथा पश्चिमी तिब्बत के बारे में विविध जानकारियां मिलती हैं। उसी ने तिब्बत के इस हिस्से में रूसी व्यापारियों के पहुंचने की जानकारी दी थी। नदी, पर्वत, वनस्पतियां, जीव जंतु, व्यापार सामग्री, सामाजिक परिदृश्य, गोरखा शासन के स्वरूप, मार्ग तथा पुलों की स्थिति पर भी इस विवरण से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। हैदर हियरसे की डायरी में भी कहा गया था कि इस क्षेत्र की जनता गोरखा शासन की क्रूरता से अत्यंत दुखी होकर विद्रोह को तत्पर थी। इस दल ने अपनी विस्तृत रपट कंपनी को दी थी, जिसका संपादित रूप ही प्रकाशित हुआ था।

इसके बाद फ्रेजर भाइयों (जेम्स तथा विलियम) ने सहारनपुर, देहरादून, उत्तरकाशी, गंगोत्री, यमुनोत्री, ट्यूनी, हाटकोटी, सराहन, रामपुर, बुशहर आदि होकर नहान तक की यात्रा की थी तथा उत्तराखंड और पश्चिमी हिमालय संबंधी विस्तृत रपटें कंपनी को प्रेषित की थीं। गार्डनर ने भी इसी तरह का कार्य किया। उनके अनेक यात्रा विवरण उस दौर में चर्चित भी हुए।

कहा जाता है कि लार्ड हेस्टिंग्ज (सन् 1813-1823) भी कुमाऊं आए थे लेकिन कदाचित् काशीपुर तक ही और उसने सर्वे कार्य में बहुत रुचि ली थी। यह माना जाता है कि मूरक्राफ्ट की यात्रा से तब तक गवर्नर जनरल बन गए, लार्ड हेस्टिंग्ज को नेपाल युद्ध के लिए आधारभूत आर्थिक तथा राजनैतिक तर्क मिले थे। नेपाल युद्ध के बाद ही मध्य-पश्चिम हिमालय में कंपनी का प्रत्यक्ष आगमन संभव हुआ और तिब्बत जाने का मार्ग भी खुला।

# 2

# औपनिवेशिक शासन और हिमालय

## नई व्यवस्था के तहत नए अभियान

फिरंगी यात्रियों, जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में हो चुकी है, के विवरणों तथा अन्य उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिमालय का आकर्षण बहुआयामी था। इसमें एक ओर ईसाई धर्म के फैलाव का लक्ष्य था तो दूसरी ओर कंपनी तथा इंग्लैंड की औद्योगिक जरूरतों हेतु कच्ची सामग्री, सस्ता श्रम तथा बाजार ढूंढ़ने का। तीसरी ओर विशेष रूप से नेपाल युद्ध के बाद 'सैन्य जातियों' (मारसियल रेसेज) की खोज और साम्राज्य रक्षार्थ उनके इस्तेमाल का लक्ष्य था तो चौथी ओर हिमालय में 'छोटी विलायतों' को बसाने का सपना भी इससे जुड़ा था। जेसुइट पादरियों की रोमांचक यात्राओं से ईस्ट इंडिया कंपनी के सन् 1815 में हिमालय में प्रत्यक्ष रूप से आ जाने तक की कहानी इन अनेक लक्ष्यों की रूपरेखा को स्पष्ट कर देती है।

इन यात्रा विवरणों से हिमालय और तिब्बत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक स्थिति उजागर हुई, वहीं यहां की सामरिक महत्ता तथा अनुकूल जलवायु से कंपनी प्रभावित हुई। विवरणों में इन क्षेत्रों के प्राकृतिक दृश्यों और संपदाओं का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया था और उस दिन के जल्दी आने की प्रार्थना की गयी थी, जब यह सुंदर देश उनके हाथ में आ जावे। पर उनकी सर्वाधिक दिलचस्पी हिमालय के सामरिक तथा आर्थिक महत्व में ही केंद्रित थी।

क्योंकि हिमालय को पाने का अर्थ हिमालय पार (टार्टरी, तिब्बत, चीन, मध्य एशिया) के देशों/क्षेत्रों के द्वारों का खुलना भी था और बर्तानवी साम्राज्यवाद के लिए भारत से बाहर स्थित इस बाजार का बहुत अधिक महत्व था।

गोरखा शासन के अंतिम दौर में कंपनी ने हिमालय के अनेक क्षेत्रों में अपने जासूसों का जाल बिछाया था। यह भी एक तथ्य है कि परमार शासकों के दौर में जो अंग्रेज घुमक्कड़ गढ़वाल आए थे उन्होंने प्रजा के असंतोष का वर्णन नहीं या कम किया है, जबकि इस काल में जो कुमाऊं गए (जहां तब गोरखा शासन का आगमन हो चुका था) या सन् 1803-04 के बाद जो उत्तराखंड में अन्यत्र आए उन्होंने प्रजा में उपज रहे



व्यापक असंतोष का जिक्र किया है। विभिन्न रपटों तथा यात्रा विवरणों से पता चलता है कि उत्तराखंड के मध्य-पश्चिमी हिस्से में ज्यादा असंतोष था।

मध्य तथा पश्चिमी हिमालय के प्रति अतिरिक्त आकर्षण का कारण यह नहीं था कि पूर्वी हिमालय कठिन या कम आकर्षक था बल्कि नेपोलियन के संभावित हमले का क्षेत्र पश्चिमी हिमालय और कराकोरम क्षेत्र था। इस क्षेत्र में तब तक कुछेक मिशन भी जा चुके थे। गोरखों के प्रति कुमाऊं, गढ़वाल तथा हिमाचल में मौजूद असंतोष के साथ गोरखों द्वारा कंपनी शासित क्षेत्र में घुसपैठ (विशेष रूप से नेपाल की तराई में बुटवल के पास) करने के कारण भी कंपनी चिंतित थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में ही नेपोलियन की नजर भारतीय साम्राज्य पर पड़ गई थी। मिस्र से लौटकर उसने एक बार भारत पर किए जाने वाले भावी हमले का संकेत भी दिया था। इसका एक कारण दक्षिण भारत में ब्रिटिश-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता के समय सात साला युद्ध (सन् 1756-1763) में फ्रांस का हारना भी रहा होगा।

एक प्रकार से नेपोलियन तथा नेपाल ने संयुक्त रूप से कंपनी के लिए तत्कालीन उत्तराखंड तथा हिमाचल के कुछ हिस्सों को हस्तगत करने हेतु परिस्थितियां तैयार की। अब काली से पश्चिम का विस्तृत तथा तीस्ता नदी से पूर्व का छोटा हिमालयी भाग कंपनी के लिए खुल गया था लेकिन नेपाल के सभी द्वार लंबी अवधि के लिए आंशिक रूप से बंद हो गए थे।

भांग, लीसे और लकड़ी के बहाने धीरे-धीरे औपनिवेशिक व्यवस्था उत्तराखंड में घुस रही थी। जिसकी पूरी जानकारी न गोरखा शासकों को थी और न जनता ही इस घुसपैठ को पूरी तरह समझती थी। उत्तराखंड के समकालीन चित्रकार-कवि मोलाराम तथा कवि गुमानी ने इसे समझा था और अपनी कविता में व्यक्त किया था।

सन् 1814 तक कंपनी तथा नेपाल के संबंध बहुत बिगड़ गए थे। नेपाल सरकार ने भांग उत्पादों को राज्य से बाहर ले जाकर बेचने पर प्रतिबंध लगा दिया था। इस बीच कंपनी ने कुमाऊं और गढ़वाल (तत्कालीन उत्तराखंड) को कब्जे में करने की अप्रत्यक्ष कार्यवाही शुरू कर दी। गुप्तचरों का जाल और भी सक्रिय हो गया और स्थानीय प्रभावशालियों को कंपनी के प्रभाव में लेने की जोड़-तोड़ शुरू हो गयी। यह प्रक्रिया अक्टूबर 1814 में तब प्रत्यक्ष रूप से सामने आई, जब कंपनी ने गढ़वाल में ब्रिटिश सेना भेजी और जनता से सहायता की अपील की। इस माह दून घाटी में, दिसंबर में सिरमौर (हिमाचल) तथा 26 अप्रैल 1815 को अलमोड़ा में कंपनी का अधिकार हो गया। 27 अप्रैल 1815 को 'कुमाऊं के समझौते' पर हस्ताक्षर हुए।

13 मई को उत्तराखंड में कंपनी के अधिकार की घोषणा हुई और बमशाह ने अपनी फौज और सामग्री लेकर काली नदी पार डोटी चले जाना स्वीकार किया। 15 मई 1815 को अमर सिंह थापा ने 'मलाऊं के समझौते' पर हस्ताक्षर किए और इसी दिन से

गवर्नर जनरल ने काली से सतलुज तक के प्रदेश के सामरिक महत्व के क्षेत्रों को कंपनी के अधिकार में रख शेष क्षेत्र भूतपूर्व शासकों को लौटाने का निश्चय किया। पर यह एक चाल मात्र थी, क्योंकि 22 नवंबर 1814 को गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी जॉन एडम ने विलियम फ्रेजर को यह चेतावनी दी थी कि राजाओं को राज्य देने या मिलाने के संबंध में कोई आश्वासन न दें। उधर टिटल्या की संधि (1817) के साथ सिक्किम और कंपनी के बीच भी संबंध स्थापित हो गए थे। सन् 1826 तक असम का बड़ा हिस्सा कंपनी शासन के प्रभाव क्षेत्र में आ गया था।

इस प्रकार बर्तानवी उपनिवेशवाद के हिमालय आगमन की प्रक्रिया नेपाल-कंपनी युद्ध से पूर्व ही प्रारंभ हो चुकी थी, जिसे उत्तराखंड-हिमाचल में निश्चित रूप से गोरखों के कुशासन, सुदर्शन शाह तथा हर्षदेव जोशी के प्रवास, उत्तराखंड तथा हिमालय के अद्‌भुत नैसर्गिक तथा आर्थिक आकर्षण और यूरोप के बदलते राजनीतिक परिदृश्य ने त्वरित किया। उत्तराखंड के संदर्भ में स्थानीय विद्रोह को तीव्र करने हेतु सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति स्पष्ट रूप से हर्षदेव जोशी था। 'अर्ल वारविक ऑव कुमाऊं' कहा जाने वाला हर्षदेव जोशी प्रारंभ में कंपनी की मदद करते समय आगामी परतंत्रता की कल्पना नहीं कर सका था। जब वह मामले को शायद समझ सका तो उसकी मृत्यु हो गई थी।

पूरे हिमालय के संदर्भ में देखें तो सन् 1846 में सत्ता परिवर्तन होने तक नेपाल से कंपनी के संबंध ठंडे बने रहे। फिर न सिर्फ संबंध सुधरे बल्कि सन् 1857 के विद्रोह के समय नेपाल ने कंपनी को मदद दी थी। सन् 1857 में टिहरी रियासत ने भी कंपनी सरकार की मदद की थी। फलस्वरूप सुदर्शन शाह को अपने दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने की रियायत दी गई। सन् 1817 तथा 1861 की संधियों ने सिक्किम क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव को बढ़ाया। सिक्किम होकर बंगाल से होने वाले तिब्बत व्यापार का मुख्य मार्ग (सन् 2006 में पुनः चर्चित नाथूला दर्रा तथा इसी के पास स्थित जेलप ला इसी मार्ग में पड़ता था) भी गुजरता था। भूटान के साथ सन् 1783 से 1838 के बीच सीमा विवाद भी रहा। सन् 1837-38 में पेंबर्टन मिशन के बाद संबंध सामान्य होने लगे पर एस्ले इडन के समय फिर विवाद हो गया। सन् 1865 से 1885 तक भूटान युद्ध तथा गृहयुद्ध से ग्रस्त रहा और तत्पश्चात् उग्येन वाङचुक तथा जॉन क्लाउड ह्वाइट के बीच हुए समझौते से भूटान के साथ बर्तानवी सत्ता के संबंध सामान्य हो गए।

असम को कंपनी ने सन् 1826 के पहले एंग्लो-बर्मा युद्ध के बाद अपने अधिकार में कर लिया था। इससे ल्हासा तथा दक्षिण-पश्चिमी चीन के लिए वैकल्पिक व्यापारिक मार्ग खुलने की संभावना बन गयी। उधर तिब्बत के पश्चिमी भाग में 'पशम' पर लगातार नजर रख रही कंपनी ने सन् 1850 से 1858 के बीच वर्तमान हिमाचल में



सतलज नदी की घाटी से हिंदुस्तान-तिब्बत रोड का निर्माण किया। यह मार्ग उत्तरी भारत के मैदानों से शिमला और रामपुर-बुशहर होकर शिपकी दर्रे तक जाता था, जहां से सतलज नदी भारत में प्रवेश करती है। कंपनी की नजर बुशहर, कश्मीर और लद्दाख पर भी थी। मूरक्राफ्ट की सन् 1812 की पश्चिमी तिब्बत यात्रा ने भी इस संबंध में कंपनी का चिंतन बदला था।

बर्तानवी उपनिवेशवाद को हिमालय के अनेक हिस्सों तक फैलने में न किसी बड़े संकट का सामना करना पड़ा और न व्यापक संघर्ष ही। इस समय भारत का कोई भी स्वतंत्र राज्य कंपनी सरकार को चुनौती दे सकने की स्थिति में न था। टीपू सुल्तान (सन् 1753-1799) का युग समाप्त हो गया था और सन् 1857 तो अभी दूर था। हिमालय और उस पार का आकर्षण इतना अधिक था कि कंपनी सरकार इसकी प्राप्ति के लिए एक लंबा और खर्चीला संघर्ष भी करने को तैयार थी। परंतु उसे ऐसा कुछ नहीं करना पड़ा।

## हिमालय में यूरोपीय

फ्रांस की क्रांति से पहले से ही औपनिवेशिक सत्ता हिमालय की जानकारियां लेने लगी थी। नेपाल युद्ध के बाद हिमालय में प्रत्यक्ष घुसपैठ शुरू हो गयी थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रसार प्रकारांतर में हिमालय के विभिन्न हिस्सों को राजनैतिक रूप से शेष देश से जोड़ने में सफल रहा। यह राजनैतिक एकता औपनिवेशिक व्यवस्था के लिए जरूरी थी। अनेक क्षेत्र राजनैतिक रूप से स्वतंत्र बने रहे। पूर्वोत्तर हिमालय में औपनिवेशिक घुसपैठ बाद तक जारी रही और स्थानीय विद्रोह भी होते रहे। पूर्वोत्तर में घुसना उतना सरल न था, जितना कि कश्मीर, हिमाचल या उत्तराखंड में। इसका एक कारण पूर्वोत्तर में गोरखा शासन का विस्तार न हो पाना भी था।

हिमालय में कंपनी शासन को लाने वाले यहां के कुछ पूर्व शासक या उनके प्रतिद्वंद्वी नहीं थे। जिस तरह स्थानीय शासकों का स्थान गोरखों ने लिया था, उसी तरह गोरखों की सैनिक सामंतशाही का स्थान अधिक शक्तिशाली कंपनी ने लिया। यह चतुर और सशस्त्र उपनिवेशवाद की जीत तथा अस्थिर और अदूरदर्शी सामंतवाद की हार थी। कंपनी और उसके माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की इस जीत के साथ शेष दुनिया के लिए हिमालय के द्वार खुलने शुरू हुए। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि हिमालय के द्वार कभी लगातार बंद नहीं रहे। इस बार साम्राज्यवाद से जनित सैन्य, भू-राजनैतिक तथा व्यापारिक आकांक्षा से ये द्वार खुले थे।

अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियों में ही हिमालय और हिमालय के उत्तर के 'अनजाने' तथा 'वर्जित' देशों/क्षेत्रों को जानने तथा दुनिया के सामने प्रस्तुत करने का सिलसिला फिर प्रारंभ हुआ। ये सदियां निर्णायक और निर्मम थी। अब हिमालय को 'औपनिवेशिक-

साम्राज्यवादी' तथा 'अन्वेषी' नजर से देखा जाना प्रारंभ हुआ। यह पारंपरिक व्यापार तथा तीर्थयात्रा से आगे का क्रम था।

यह प्रक्रिया हिमालय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, राजनैतिक व्यवस्थाओं, आर्थिक क्रिया-कलापों और हिमालयवासियों के 'मनोविज्ञान' पर गहन असर डालने वाली थी। आज का हिमालय इस प्रक्रिया का परिणाम है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1857 में प्लासी के युद्ध से गोरखों और कंपनी के बीच लड़े गए नेपाल युद्ध तक हिमालय को जानने, समझने और हड़पने का निरंतर प्रयास किया। बर्मा युद्धों से अफगान युद्धों तथा नेपाल युद्ध से सन् 1904 में ल्हासा पर हमला और कब्जा करने तक का सिलसिला ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भारतीय विस्तार की कहानी कहता है।

## नेपाल युद्ध के उपरांत

नेपाल युद्ध के बाद पश्चिमी हिमालय तथा कराकोरम क्षेत्र में अनेक अभियान गए। इससे पूर्व अगस्त 1812 से दिसंबर 1813 के बीच मूरक्राफ्ट के भावी व्यापक हिमालयी अभियान का मार्ग सर्वे करने के लिए सैय्यद मीर इज्जत उल्ला ने कश्मीर, तुर्किस्तान, लद्दाख, बुखारा, हजारा, स्योक, कराकोरम दर्रा, काशगर तथा यारकंद तक की विस्तृत यात्राएं की थीं। कुमाऊं का इस बीच व्यापक सर्वे हो रहा था। गेरार्ड भाइयों ने बुशहर का सर्वे किया था। इन अभियानों पर यूरोप में नेपोलियन के बढ़ रहे प्रभुत्व का असर भी देखा जा सकता है।

सन् 1819 से 1825 के बीच विलियम मूरक्राफ्ट और जॉर्ज ट्रेबेक की असाधारण हिमालयी यात्रा संपन्न हुई। यात्रा का अंत इन दोनों के ही नहीं, इनके चिकित्सक डा. गुथरी के जीवन का अंत भी था। उसका विशाल दल कुमाऊं से टिहरी, बुशहर, शिमला, मंडी, कांगड़ा, लेह, श्रीनगर, पेशावर, जलालाबाद, काबुल, खैबर दर्रा, दोआब, कुंडुज, बल्ख, अन्डखुई होकर बुखारा पहुंचा था। इस यात्रा में मूरक्राफ्ट ने उत्तराखंड, हिमाचल, कश्मीर, लद्दाख और बुखारा तक की विभिन्न नदियों, तालाबों, दर्रों और पहाड़ों के अलावा आक्सस नदी और हजारा के रेगिस्तान को भी पार किया था। अनेक कठिनाइयों, बीमारियों और अवरोधों के बीच वह चलता रहा। जहां रुका भी उसने यह समय आराम में नहीं अध्ययन, संकलन तथा सर्वेक्षण में लगाया।

इसी यात्रा में उसकी पंजाब के शासक रणजीत सिंह से मुलाकात हुई थी। रणजीत सिंह ने उसे कश्मीर तथा लद्दाख जाने की स्वीकृति दी लेकिन उसके द्वारा रणजीत सिंह को भेजा पत्र अंततः गवर्नर जनरल के पास पहुंचा, जो कंपनी से उसके संबंधों को गड़बड़ाने का कारण बना। किसी भी यात्रा में वह वनस्पतियों के नमूने लेना, जीव जंतुओं की चीरफाड़ करना या भाषा और कपड़े या विविध उपकरणों के नमूने लेना नहीं भूलता था। वह लद्दाख को ब्रिटिश छत्रछाया में देखना चाहता था और इसके द्वारा



आगे के क्षेत्रों तक ब्रिटिश व्यापार का विस्तार करना चाहता था। इस व्यापार के केंद्र में वह पशम को देखता था। चीनियों ने उसे जासूस, सिखों ने दुश्मन समझा तथा कंपनी ने उसे मदद नहीं दी ।

यों तो विलियम मूरक्राफ्ट का स्वयं का जीवन प्रारंभ से ही रहस्यपूर्ण था लेकिन हिमालय, तिब्बत तथा मध्य एशिया की यात्राओं ने इस रहस्यात्मकता में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी थी। उत्तराखंड से मध्य एशिया के बीच विभिन्न हिमालयी राज्यों की दर्जनों घाटियों और दर्रो को पार करता हुआ मूरक्राफ्ट सर्वेक्षण भी कर रहा था। लद्दाख में प्रतीक्षा में बीत रहे समय का उपयोग उसने स्पीति, द्रास और चांगथांग क्षेत्रों की अध्ययन यात्रा में किया। लद्दाख में मूरक्राफ्ट लोकप्रिय हुआ और उसने लोगों को परामर्श भी दिया कि वे सिखों के स्थान पर कंपनी की छत्रछाया में आ जाएं।

मूरक्राफ्ट ने सोमा द कोरोस को हिमालय और तिब्बत तथा विशेष रूप से तिब्बती भाषा के अध्ययन को जारी रखने हेतु प्रेरित किया और प्रत्यक्ष सहयोग भी दिया। दरअसल कोरोस को कलकत्ता जाने तथा एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल का सहयोग लेने का परामर्श भी मूरक्राफ्ट ने ही दिया था।

मूरक्राफ्ट अपने जीवन में ही एक मिथक बन गया था। मूरक्राफ्ट उत्तराखंड से तिब्बत यानी गरतोक, मानसरोवर-राकसताल तक जाने वाला पहला अंग्रेज था। मृत्यु के बाद भी उसे जीवित बताया जाता रहा। हक ने सन् 1853 में लिखा था कि जब वह ल्हासा पहुंचा तो उसे बताया गया था कि मूरक्राफ्ट की मृत्यु 1836 में उसके ल्हासा आकर फिर वहां से 12 साल बाद लद्दाख लौटते समय कैलास मानसरोवर के पास हुई थी। दरअसल मूरक्राफ्ट जब लौट रहा था तो डाकुओं ने कश्मीरी व्यापारी समझकर उसकी हत्या कर दी। उसके सामान में डायरी, रेखांकन तथा नक्शे मिले। आज तक यह सामग्री सामने नहीं आ सकी है। इन्हीं दस्तावेजों से मूरक्राफ्ट के 1825 के बाद के जीवन का रहस्य जुड़ा है।

## ग्रेट आर्क तथा ग्रेट ट्रिगॅनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.)

ग्रेट आर्क की शुरूआत तो 1802 में हो चुकी थी। सन् 1823 में जॉर्ज एवरेस्ट के ग्रेट ट्रिगॅनोमैट्रिकल सर्वे का अधीक्षक और सन् 1830 में सर्वेयर जनरल बनने के बाद भारत में सर्वेक्षण तथा अंवेषण कार्यों का क्रम बढ़ा। दरअसल 'ग्रेट आर्क' के अंतर्गत पूरे उपमहाद्वीप का जो सर्वेक्षण हो रहा था अब उसे हिमालय की ओर केंद्रित करने का अवसर आया। अन्य यात्रा अध्ययन अभियान भी संपन्न होते रहे। सन् 1830 में अलैक्जेंडर गार्डनर काराकोरम पार कर भारत आया। इन्ही सालों में फ्रांसीसी वनस्पतिशास्त्री विक्टर जैक्यूमौंट पश्चिमी हिमालय में वनस्पतियों का संग्रह कर रहा था तो जर्मन डॉ. जोसेफ वोल्फ आक्सस क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार में जुटा था।

सन् 1838 में बुखारा के अमीर के पास रूसी आक्रमण की स्थिति में कंपनी सरकार की मदद का आग्रह लेकर गया कर्नल चार्ल्स स्टोडार्ट अंततः बुखारा में गिरफ्तार कर लिया गया। स्टोडार्ट को सुरक्षित निकालने हेतु कैप्टन आर्थर कोनोली को भेजा गया। इसी समय काबुल में कुछ ब्रिटिश सैनिकों के साथ स्टोडार्ट और कोनोली की 17 जून 1842 को निर्मम हत्या कर दी गयी। इन्हें मुक्त करने के प्रयास हेतु यद्यपि वोल्फ वहां गए पर उन्हें भी कैद में रहना पड़ा और वे कठिनाई से रिहा हो सके। सन् 1835 से 1838 के बीच जी. टी. विग्ने ने कश्मीर में विशद यात्राएं की तथा जॉन वुड ने हिंदुकुश क्षेत्र में।

सन् 1817 की टिटल्या की संधि सिक्किम के राजा तथा गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के बीच हुई, जिसके अनुसार मेची नदी से पूर्व तथा तीस्ता नदी से पश्चिम का हिस्सा कंपनी ने सिक्किम के राजा को वापस कर दिया था और सिक्किम के भीतर अपने अनेक अधिकार सुरक्षित करा लिए थे। कंपनी ने 1 फरवरी 1835 की ग्रांट के अनुसार दार्जिलिंग के पर्वतीय क्षेत्र को कंपनी अधिकारियों के लिए अनुकूल जलवायु का तर्क देकर अपने अधिकार में ले लिया था। सिक्किम के कुछ और भागों को लेने का यह क्रम बाद में बढ़ता ही गया।

सन् 1835 तथा 1837-38 में कैप्टन बोयलू पैंबरटन ने मणिपुर, असम, कछार, पोंग, जयंतिया सहित पूर्वोत्तर भारत और भूटान पर कंपनी को रपट दी थी। इस रपट में पूर्वोत्तर के भौगोलिक परिदृश्य, जनजातीय समाज, संपदाओं और व्यापार तथा सैन्य मामलों पर विस्तृत विवरण दिया गया था। इस रपट में नक्शे तथा अनेक परिशिष्ट भी थे। सिक्किम से कंपनी के संबंध तब एकाएक कटु हो गए जब नवंबर 1849 में सिक्किम के अंतर्वर्ती क्षेत्र में कंपनी तथा सिक्किम के राजा से स्वीकृति लेकर घूम रहे जोसेफ डी. हूकर तथा आर्थर डी. कैंपवैल को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया था।

सन् 1845 में सिख युद्ध शुरू हुए और प्रथम सिख युद्ध के बाद मार्च 1848 में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। सन् 1848 में पंजाब, फिर कश्मीर को तथा सन् 1856 में सिंध को कंपनी क्षेत्र में मिला लिया गया। क्योंकि जम्मू का डोगरा शासक गुलाब सिंह एंग्लो-सिख युद्ध में तटस्थ रहा था इसलिए कंपनी ने इस नए राज्य का मुखिया उसे बना दिया और यह तय हुआ कि लद्दाख और तिब्बत की सीमा को निश्चित करने हेतु दोनों ओर के अधिकारियों की बैठक होगी। कंपनी को यह शंका थी कि सीमा निश्चित न करने पर गुलाब सिंह सन् 1841 में जनरल जोरावर सिंह के नेतृत्व में हुए पश्चिमी तिब्बत अभियान की तरह फिर तिब्बत पर हमला कर सकता है। इससे बुशहर, टिहरी या ब्रिटिश कुमाऊं जैसे सीधे कंपनी अधिकार वाले या संरक्षित क्षेत्रों पर असर पड़ सकता था। सन् 1846 में कैप्टन अलैक्जेंडर कनिंघम, पी. ए. वांस एग्न्यू को ब्रिटिश



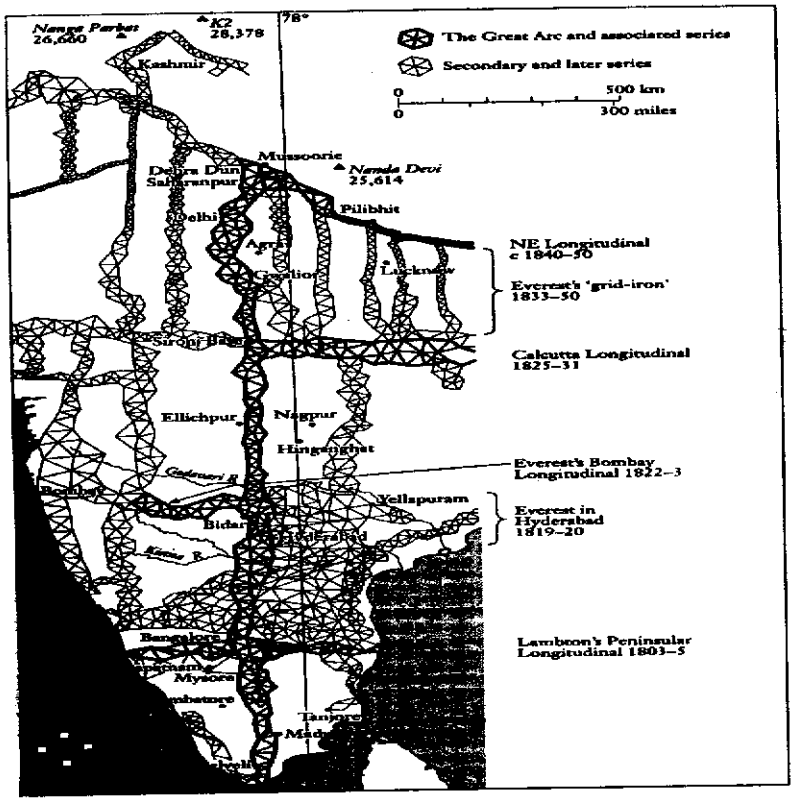


ग्रेट आर्क की सर्वेक्षण शृंखला

कमिश्नरों के रूप में सीमा निश्चित करने के साथ भारत-तिब्बत व्यापार की पड़ताल करने का दायित्व सौंपा गया था। तिब्बत, चीन या कश्मीर से सहयोग न मिल पाने के कारण अंततः ब्रिटिश कमिश्नरों ने अकेले ही सीमा तय कर दी।

सन् 1846 तथा उसके बाद भी हिमालय के पाद प्रदेश में सर्वेक्षण कार्य होता रहा। सन् 1846-48 के बीच कनिंघम, थॉमस थॉमसन, हेनरी स्ट्रैची तथा रिचर्ड स्ट्रैची ने हिमालय तथा हिमालय पार की अनेक यात्राएं की। लैफ्टिनेंट हेनरी स्ट्रैची ने सितंबर-अक्टूबर 1846 में पश्चिमी तिब्बत की विस्तृत यात्रा की थी। उसने लंपिया धूरा से तिब्बत में प्रवेश किया था और राकसताल तथा मानसरोवर का विस्तृत सर्वेक्षण कर ताकलाकोट से लीपूलेख होकर वापस लौटा था।

हेनरी के भाई रिचर्ड स्ट्रैची ने वनस्पतिविज्ञानी जे. ई. विंटरबॉटम के साथ सितंबर सन् 1848 में इस यात्रा को दोहराया था। वे अल्मोड़ा से मुनस्यारी, रालम, बुर्जिकांग

दर्रा, मिलम, ऊंटाधुरा, टोपीढूंगा, खिंगर दर्रा, लपथल तथा बाल्चा धुरा पार कर तिब्बत में तिसुम और फिर सतलज नदी के किनारे पहुंचे। तत्पश्चात् लिगचेफू, ज्ञानिमा, राकसताल, मानसरोवर, करनाली घाटी के विभिन्न स्थानों से होकर यह दल लाखुर (शायद किंग्री बिंग्री ला या उसके करीब का दर्रा) तथा जयंती धूरा होकर टोपीढूंगा (या शायद गंगापानी) पहुंचा। फिर ऊंटाधुरा पार कर मिलम वापस आया। दल के गाइड के रूप में जोहार के पटवारी बचू तथा टोला गांव के पधान बोरू साथ थे। रिचर्ड ने अपनी यात्रा में कुछ रेखांकन भी बनाए थे।

सन् 1849 में दोनों स्ट्रैची भाई कुमाऊं से पश्चिमी तिब्बत होकर नीती दर्रे से वापस लौटे थे। इन यात्राओं में उत्तराखंड के भोटांतिक क्षेत्र के अनेक व्यक्ति इन अधिकारियों के साथ कार्यरत रहे।

## स्लागेंटवाइट भाइयों का योगदान

सन् 1854-58 के बीच स्लागेंटवाइट भाइयों की अंवेषण यात्राएं हुईं। सन् 1857 के संग्राम के समय भी वे कार्य करते रहे। उन्हें कंपनी ने भारत तथा उच्च एशिया क्षेत्र में एक वैज्ञानिक मिशन को संपन्न करने की जिम्मेदारी दी थी। यह मूलतः विभिन्न भौगोलिक जानकारियों के साथ मार्ग, बसासतों, ग्लेशियरों तथा दर्रों की स्थिति के अध्ययन का कार्य था। हालांकि यह अध्ययन कराकोरम-कुलनुन पर्वतमाला से लंका तक फैला था लेकिन इसमें हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों के साथ पश्चिमी तिब्बत, लद्दाख-बल्तिस्तान, कराकोरम तथा चीनी तुर्किस्तान का विशिष्ट अध्ययन-सर्वेक्षण किया गया था। कैमरा छोड़कर सर्वेक्षण हेतु तब तक के सभी उपकरणों तथा विधियों का प्रयोग विलक्षण स्लागेंटवाइट भाइयों ने किया था।

यदि सिर्फ हिमालय-कराकोरम क्षेत्र को ही लिया जाए तो हर्मन ने सिक्किम, दार्जिलिंग, असम, नेपाल तथा हिमाचल में तथा अडोल्फ और रॉबर्ट ने कुमाऊं-गढ़वाल, हिमाचल, पश्चिमी तिब्बत (डरी खोरसम) में वृहत् सर्वेक्षण किए। फिर हर्मन तथा रॉबर्ट ने दो विभिन्न मार्गों, क्रमशः रामपुर-बुशहर, रोहतांग-बारालाचा तथा परांगला होकर लेह की यात्रा की और अडोल्फ ने शिमला से कुल्लू, लाहुल और जंसकार होकर स्कर्दो की यात्रा की थी। तत्पश्चात् हर्मन तथा रॉबर्ट लद्दाख, नुब्रा घाटी होकर तुर्किस्तान की ओर गए। वे खोतान होकर वापस आए। अडोल्फ ने कराकोरम (दायामीर) के ग्लेशियरों का अध्ययन किया। बल्कि यह कहा जाता है कि सन् 1856 में हर्मन तथा रॉबर्ट ने पहली बार कराकोरम दर्रा पार किया था। श्रीनगर में तीनों भाइयों का मिलन हुआ और कश्मीर से पंजाब होकर तीनों भाई दो मार्गों से वापस आए। जहां हर्मन तथा अडोल्फ उरी तथा मरी होकर रावलपिंडी आए, वहीं रॉबर्ट नौसेरा, मुजफ्फराबाद तथा एबटाबाद होकर यहां पहुंचा। मानी सिंह तथा नैन सिंह तब रॉबर्ट के साथ थे।



यह बताना भी उचित होगा कि अडोल्फ तथा रॉबर्ट ने 16 अप्रैल से 16 मई 1855 तक नैनीताल के आसपास का सर्वेक्षण किया था। अडोल्फ नैनीताल से अलमोड़ा, कपकोट, खाती, पिंडारी ग्लेशियर, ट्रेल पास तथा मरतोली होकर 4 जून 1855 को मिलम पहुंचा था तो भाई रॉबर्ट नैनीताल से बागेश्वर, थल, मुनस्यारी तथा रिलकोट होकर 31 मई 1855 को मिलम पहुंचा था। दोनों भाई मिलम में 4 जुलाई 1855 तक रहे और आसपास का सर्वेक्षण करते रहे। उन्होंने कुछ दिन नंदादेवी के पूर्वी शिखर के आसपास के क्षेत्र में भ्रमण किया और कुछ दिन मिलम ग्लेशियर का अध्ययन भी किया। उनकी यात्रा के 50 साल बाद लौंगस्टाफ वहां गया था।

दोनों भाई किसी तरह पश्चिमी तिब्बत में दाबा तक गए, जहां सन् 1812 में मूरक्राफ्ट तथा हैदर हियरसे गए थे। गरतोक जाने में मानी बुढ़ा ने मदद की थी। वापसी में वे आबी गामिन पर्वत (24130 फीट), जो कामेट पर्वत (25447 फीट) के पास स्थित था, में 22260 फीट तक चढ़ते चले गए, जो दुनिया में तब तक मनुष्य द्वारा स्पर्श किया गया सर्वोच्च बिंदु था। सन् 1877 तक कोई इस शिखर तक नहीं जा सका था।

अडोल्फ दूसरी बार फिर तिब्बत में घुसने में कामयाब रहा। वह माणा दर्रे से तिब्बत जाकर फिर निलंङ दर्रे (वर्तमान उत्तरकाशी जिला) से जाडगंगा घाटी में आकर मुखबा और केदारकांठा होकर 17 अक्टूबर 1855 को मसूरी पहुंचा तो भाई रॉबर्ट जोशीमठ से उखीमठ, केदारनाथ, त्रिजुगीनारायण, पंवालीकांठा, मसरताल, भागीरथी घाटी के विभिन्न स्थानों से यमुना घाटी में खरसाली गांव होकर 21 अक्टूबर 1855 को मसूरी पहुंचा।

स्लागेंटवाइट भाइयों की उपलब्धियां असाधारण थीं। आज भी उनके द्वारा तैयार की गई रपटों, चित्रों तथा चार्टों को देखकर सुखद आश्चर्य होता है। युवा भूगर्भविज्ञानी अडोल्फ अत्यंत प्रयोगशील था। लद्दाख से 31 मई 1857 को वह तिब्बती तुर्किस्तान में घुसा था। वह अपने साथ व्यापार हेतु सामान भी ले गया था ताकि वह भेष बदल कर यह कार्य कर सके। उसके साथ अल्मोड़े का हरकिशन तिवारी था। वह तिवारी को भी सामान के साथ लद्दाख में छोड़ गया था। अडोल्फ नहीं लौटा तो हरकिशन वापस आया। म्यूनिख विश्वविद्यालय के इस युवा भूविज्ञानी की हत्या जितनी जघन्य थी, मध्य एशिया की राजनैतिक अस्थिरता में उतनी ही अपरिहार्य भी थी।

स्लागेंटवाइट भाइयों की टीम में मद्रास के अब्दुल, अल्मोड़ा के हरकिशन तिवारी, कलकत्ता के डैनियल, बंबई के सालमन तथा स्जेजार, जोहार के मानी सिंह, नैन सिंह, दोलपा पांगती तथा अन्य स्थानों के रामचंद्र और मोहम्मद हसन आदि इनमें प्रमुख थे। इस टीम के सदस्यों ने विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षणों में कार्य करने के साथ तकनीकी सहायक तथा दुभाषिए के रूप में भी कार्य किया। इनमें मानी सिंह तथा नैन सिंह इस

अर्थ में भिन्न और महत्वपूर्ण थे कि वे पश्चिमी तिब्बत तथा तिब्बती भाषा के जानकार भी थे।

सन् 1856 में ग्रेट ट्रिगॅनोमैट्रिकल सर्वे द्वारा कश्मीर के नक्शांकन तथा सर्वेक्षण का कार्य भी प्रारंभ हुआ। सन् 1858 में के2 शिखर को खोजा गया यानी उसकी ऊंचाई का भी पता लगा। सन् 1861 में कराकोरम ग्लेशियर का सर्वे हुआ। सन् 1862 में एफ. ड्रयू ने कश्मीर में यात्राएं की, जो सन् 1871 तक जारी रहीं। उधर सन् 1863-64 में एसले एडन ने भी अपने अध्ययन-सर्वेक्षण के बाद सरकार को भूटान पर रपट दी थी।

एक प्रकार से हिमालय तथा तिब्बत के विभिन्न हिस्सों पर औपनिवेशिक सरकार की नजर सन् 1857 से पहले तथा पश्चात् सतत बनी रही। सन् 1857 की हलचल का इस कार्य पर अधिक असर नहीं हुआ। यह बताना भी उचित होगा कि सन् 1853 से 1857 के बीच डेविड लिविंगस्टन ने अफ्रीका के आरपार अपनी अंवेषण यात्रा पूरी की थी। इससे विश्व स्तर पर साम्राज्यवाद तथा अंवेषणों का रिश्ता समझा जा सकता है।

सन् 1860 के बाद समरकंद और बुखारा पर रूसी अधिकार होने से बर्तानवी शासन को चिंता होने लगी। अब मध्य एशिया में रूसी अंवेषण-सर्वेक्षण का दौर चला। इनमें पीटर सेम्योनोव तथा एलेक्सी और ओल्गा फेडचेंको की रूसी क्षेत्र तथा निकोलस मिखाइलोविच प्रज्वल्स्की की सन् 1873 से 1888 के बीच चीनी क्षेत्र—वह भी उत्तरी तिब्बत और गोबी मरुस्थल—में हुई यात्राएं अत्यंत महत्वपूर्ण थीं। प्रज्वल्स्की तो ल्हासा और पीकिंग तक जाना चाहता था। लेकिन थ्यानसान पर्वत के बीच में ही इस रूसी अंवेषक की मृत्यु हो गई।

मध्य एशिया में यात्रा करने वालों में थॉमस एटकिंसन तथा ने ऐलियास भी महत्वपूर्ण थे, जिन्होंने पीकिंग से मास्को की यात्रा सहित अन्य अनेक अभियानों में हिस्सेदारी की थी। इसके बाद कर्नल वाकर तथा कैप्टन मांटगोमरी के निर्देशन में पंडित भाइयों के अंवेषण अभियानों की शुरूआत हुई। सदी के अंत तक दर्जनों अंवेषक हजारों मीलों की यात्राएं करने और सर्वेक्षणों तथा अध्ययनों को सर्वे मुख्यालय तक भेजने या लाने में सफल हुए। इनमें नैन सिंह, किशन सिंह, मानी सिंह, कलियान सिंह, किंथप, शरत् चंद्र दास तथा हरी राम जैसे कितने ही नाम हैं। सन् 1870 से पूर्व हेवार्ड ने लेह से काशगर तथा यारकंद की यात्रा की। सन् 1873-74 में फोरसैथ का दूसरा मिशन यारकंद गया।

सन् 1883 में डब्ल्यू. डब्ल्यू. ग्राहम ने पहले सिक्किम में और फिर नंदादेवी क्षेत्र में पथारोहण तथा पर्वतारोहण किया। सन् 1887 से 1906 के बीच वाडेल तथा ह्वाइट ने सिक्किम तथा भूटान के बड़े हिस्से का सर्वे किया। मई 1888 में जब तिब्बत ने जेलप ला की ओर से सिक्किम पर हमला किया था तो ब्रिटिश शासन मदद के लिए गया और सितंबर 1888 में तिब्बतियों को हार कर भागना पड़ा था। सन् 1889 में गिलगिट



एजेंसी की स्थापना हुई और यंगहजबैंड ने दूसरी कराकोरम यात्रा की। शताब्दी के अंतिम दशक में हुन्जा, काराकोरम, नंगा पर्वत, पामीर, नुनकुन, के2 क्षेत्रों में कानवे, कौकेरिल, ममेरी, ब्रूस तथा एकेनस्टाइन के तथा कंचनजंगा क्षेत्र में फ्रेशफील्ड के अभियान हुए ।

शताब्दी के अंतिम हिस्से में धीरे-धीरे सर्वेक्षण-अंवेषण का काम कम और पर्वतारोहण का अधिक होने लगा। यद्यपि यह भी दूसरी तरह का सर्वेक्षण ही था। सन् 1904 में यंगहजबैंड का ल्हासा अभियान औपनिवेशिक प्रभुत्व तथा घुसपैठ का उच्चतम बिंदु था। इसी अभियान में बर्तानवी फौज द्वारा तिब्बत में घुसकर ल्हासा में हमला किया गया था और व्यापारिक अधिकार लिए गए थे। नैन सिंह के कृतित्व तथा व्यक्तित्व की प्रस्तुति के लिए हमने मुख्यतः उन्नीसवीं सदी के अभियानों की ही चर्चा की है।

## हिमालयी समाजों पर प्रभाव

हिमालय के अनेक क्षेत्र औपनिवेशिक शासन के प्रत्यक्ष अधिकार में आ गए और अन्य क्षेत्र भी ब्रिटिश सत्ता से निरंतर प्रभावित होते रहे। इसके तत्काल और दूरगामी प्रभाव हुए। हिमालय की सैन्य परंपरा का उपयोग साम्राज्य के विस्तार में हुआ। गोरखा, गढ़वाल, डोगरा, कुमाऊं तथा नागा सेनाएं स्थापित हुई। यह हिमालय से युवाओं के प्रवास में जाने की शुरूआत थी।

पलायन ने जनसंख्यात्मक दृश्य को बदल दिया। इसने महिलाओं और बच्चों को ज्यादा श्रम करने को विवश किया। आधुनिकीकरण भी इस पलायन से जुड़ा रहा। इसका एक परिणाम लोक परंपरा पर निरंतर बढ़ता दबाव था। लेकिन हिमालयी समाज लेटिन अमेरिका या अफ्रीका की तरह रूपांतरित नहीं किए जा सके। इस दौर में हिमालय के विभिन्न संसाधनों के दोहन की गति बढ़ी और इसी अनुपात में हिमालय के विभिन्न दर्रों से भारत तिब्बत व्यापार भी विकसित होता चला गया। कुमाऊं आयरन कंपनी या कांगड़ा स्लेट कंपनी की स्थापना, चाय का व्यापक उत्पादन, आलू की खेती और सेब की बागवानी का विस्तार जैसे अर्थव्यवस्था के कुछ नए साधन भी विकसित हुए। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में रेल के आगमन के साथ नेपाल, उत्तराखंड तथा हिमाचल के जंगलों पर भी दबाव बढ़ा। जंगलों का एक महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन में बदलना जंगलों के विनाश और तात्कालिक आर्थिक लाभ का कारण बना। रेल मार्गों तथा अपर गंगा कैनाल सहित अनेक नहरों के निर्माण ने कुछ रोजगार भी सुलभ कराया। सन् 1850 के बाद भारतीय उपमहाद्वीप में रेलवे के विस्तार तथा सन् 1869 में स्वेज नहर के खुलने के बाद यूरोप में उपभोक्ता सामग्री की मांग बढ़ गयी थी।

टिहरी रियासत में फैड्रिक विल्सन का जंगलों के कटान का व्यवसाय जब फैलने

लगा तो स्वयं ब्रिटिश सरकार ने इसे अपने हाथ में ले लिया। इस तरह प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य के अधिकार का विस्तार होता गया। खेती की जमीन अवश्य व्यक्तिगत स्वामित्व में दी गयी पर जंगल और चरागाह सरकारी अधिकार में आते गए। राज्य का यह एकाधिकार बाद में पानी और खनिजों पर भी घोषित किया गया।

हिमालय में प्रशासनिक केंद्र, पर्यटक नगर—हिल स्टेशन के रूप में दार्जिलिंग, शिलौंग, कालिंगपोंग, मरी, शिमला, सोलन, डलहौजी, नैनीताल, मसूरी तथा ऐबटमाउंट विकसित हुए। शिमला को भारत की तथा नैनीताल को संयुक्त प्रांत की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने का अवसर मिला। दार्जिलिंग तथा शिमला को रेल से जोड़ा गया। इसी समय अल्मोड़ा, देहरादून, सुबाटू, चकरौता, लैंसडौन, रानीखेत, घूम (दार्जिलिंग) तथा शिलांग आदि छावनियां विकसित हुईं। बेगार की शोषक प्रथा को औपनिवेशिक सरकार ने विधि सम्मत रूप दिया और भू-बंदोबस्त के साथ इसे जोड़ दिया। आज यह आश्चर्यजनक लग सकता है कि ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे कराने के लिए भी बेगार लगाई जाती थी। यद्यपि यह सेना, सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा चाय बागानों के मुकाबले कम थी।

वैक्सीन बनाने तथा पशु अनुसंधान के संस्थान बने। देहरादून तथा मसूरी में सर्वे ऑव इंडिया के दफ्तर खोले गए तथा दार्जिलिंग में नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी की स्थापना हुई। स्थानीय स्तर पर प्रेस तथा पत्रकारिता का प्रारंभ पिछली सदी में हुआ, जो अंग्रेजी के साथ स्थानीय भाषाओं में भी सामने आई। स्थानीय भाषाओं में बाइबिल के बाद अन्य किताबें भी छपने लगी। शिक्षा का विस्तार, स्त्री शिक्षा की शुरूआत तथा आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रारंभ इसके साथ हुआ। मिशनरियों ने न सिर्फ दूरस्थ दुर्गम क्षेत्रों में स्कूल खोले वरन् अस्पताल तथा कोढ़ीखाने भी बनाए।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में हिमालय के अनेक क्षेत्रों में कुछ व्यक्तियों या परिवारों ने ईसाई धर्म स्वीकारा। स्वयं नैन सिंह रावत के जोहार में धर्म परिवर्तन हुआ और पादरी उत्तम सिंह ईसाई धर्म को स्वीकार करने वाले पहले जोहारी बने। मिलम में अनेक वर्षों तक एक पादरी ने भी कार्य किया। इसी क्रम में अधिकांश नगरों में चर्च स्थापित हुए, मैसोनिक लॉज बने और जिमखाना क्लब स्थापित हुए। पियानो, हार्मोनियम, फीडल, बिगुल या मशकबीन (बैगपाइपर) का हिमालय में आगमन हुआ। अनेक भवनों में यूरोपीय निर्माण शैली—विशेष रूप से गोथिक शैली—प्रकट हुई। स्थानों, मकानों या मुहल्लों को अंग्रेजियत से भरे नाम दिए जाने लगे।

खान-पान की यूरोपीय शैली विकसित हुई और पहनावे में भी स्थानीय समाज में 'साहब' बनने या इस हेतु वांछित कपड़े पहनने की ललक बढ़ी। अनेक होठों पर नयी अंग्रेजी भाषा आ गई और रोचक उच्चारण के साथ अंग्रेजी का लोकीकरण होने लगा। लेकिन यह सब हिमालय की स्थानीय समाज-संस्कृतियों को लील नहीं सका।



संस्कृतियों का समन्वय इससे अवश्य प्रारंभ हुआ। कुछ जातियों, जनजातियों तक परिवर्तन की लहर नहीं गई। कुछ जनजातियों ने औपनिवेशिक विस्तार को अपने जीवन और संसाधनों पर हमला माना और इसके उत्तर में प्रतिरोधों का सिलसिला भी चला।

इस दौर में अनेक स्वतंत्र यात्री भी हिमालय में आए। एक प्रकार से ये प्रारंभिक हिमालयविद् थे। तिब्बत जाने वाले भी दर्जनों में थे। रेल, पोस्ट आफिस तथा सड़क यातायात के साथ तीर्थयात्रा का सिलसिला बढ़ा। इससे प्रारंभिक पर्यटन तथा साहसिक कार्यकलापों-विशेष रूप से पथारोहण और पर्वतारोहण-को विकसित होने का मौका मिला। प्रारंभिक पथारोहण और पर्वतारोहण अभियान दरअसल भौगोलिक-प्राकृतिक अंवेषण और सर्वेक्षण से जुड़े थे। शिकार अभियान तथा शिकार कथाएं भी इस दौर से जुड़ी हैं। औपनिवेशिक सत्ता ने पारंपरिक कानूनों को कुछ न कुछ स्थान दिया। जनप्रतिनिधित्व की शुरूआत हुई। भूमि बंदोबस्त तथा जंगलों के बंदोबस्त भी किए गए।

नए कानून भी लागू किए गए। अनेक क्षेत्रों में स्वायत्तता को बनाए रखा गया। साथ ही ब्रिटिश सत्ता के निर्विवाद शुभचिंतकों को अनेक पद या सम्मान मिलते रहे। पुनर्जागरण की लहरें कुछ देर से हिमालय में पहुंची और जब स्थानीय संगठन, प्रेस-पत्रकारिता तथा राष्ट्रवादी चेतना का उदय यहां हुआ तो हिमालय क्षेत्र भी धीरे-धीरे भारतीय मुख्य धारा का हिस्सा होता गया।

व्यापार, कूटनीति, मिशनरी कार्यकलाप तथा वैज्ञानिक अंवेषण ने संयुक्त रूप से औपनिवेशिक शासकों को अपने साम्राज्य के विस्तार तथा उसे टिकाए रखने के कौशल दिए। इसने भारत में ब्रिटिश राज की विचारधारा को विकसित किया।

उपनिवेशों के विस्तार के साथ नए शासकों के सामने एक अज्ञात या कम ज्ञात भूगोल प्रस्तुत हुआ, जिसे सिर्फ जानकर ही नियंत्रित किया और दुहा जा सकता था। प्रारंभ में ये विवरण या यात्रा उपलब्धियां रॉयल सोसायटी के फिलासाफिकल ट्रांजैक्संस में प्रकाशित होती थीं। सन् 1830 में स्थापित रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी ने इस क्रम को बढ़ाया।

यह तथ्य उजागर करना भी उचित होगा कि इंग्लैंड के अपने विभिन्न विशिष्ट संस्थानों के क्रम में रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी सबसे बाद में बनी। यह साम्राज्यवाद के विस्तार के साथ जुड़ा हुआ संस्थानिक विकास था। यह बहुतों को आश्चर्यजनक लग सकता है कि भारत में राजनैतिक सत्ता का पहला स्वाद चख लेने (सन् 1757) के मात्र दस साल बाद सर्वे आव इंडिया की स्थापना हो गई थी जबकि इसके भी चार दशक बाद इंग्लैंड में रॉयल सोसायटी (सन् 1799) की स्थापना हुई थी। फिर जिओलाजिकल सोसायटी (सन् 1807), रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी (सन् 1820) तथा जूलाजीकल

सोसायटी (सन् 1828) के बाद रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी (सन् 1830) का जन्म हुआ था।

इस प्रकार 18-19वीं सदी में हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में नयी व्यवस्था या इससे जनित विभिन्न प्रणालियों का आगमन हुआ और जिस तरह का सामाजिक–सांस्कृतिक, प्रशासनिक-राजनैतिक, आर्थिक-पारिस्थितिक आधार बना, उस पर औपनिवेशिक सत्ता बीसवीं सदी में भी चलती रही। इस व्यापक पृष्ठभूमि में नैन सिंह रावत का जन्म, बचपन, शिक्षा, अध्यापन और अंततः नियोजित सर्वेक्षण तथा भौगोलिक अंवेषण में उनके योगदान को देखना उचित होगा।

# 3

# नैन सिंह : पृष्ठभूमि तथा परिवार

## कठिन परिवेश, जटिल चुनौतियां

हिमालय तथा इसके उत्तर में स्थित क्षेत्रों में यूरोपीयों की दिलचस्पी किस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत आने के समय से ही प्रारंभ हो गई थी यह पहले अध्याय में बताया जा चुका है। यह भी कि लगभग 150 साल तक सिर्फ मिशनरी ही इस क्षेत्र के अभियानों में गए। फिर कुछ अन्य अभियान भी इस क्षेत्र में आए। यह सिलसिला देसीदेरी, हक तथा गैबेट, जॉर्ज बोगले, टर्नर, थॉमस मानिंग, मूरक्राफ्ट, हैदर हियरसे आदि के द्वारा जारी रखा गया।

उक्त यात्रियों की रपटों के आधार पर कंपनी सरकार ने एक ओर नेपाल युद्ध (सन् 1814-16) की पृष्ठभूमि तैयार की और दूसरी ओर सन् 1767 में स्थापित सर्वे आव इंडिया के अंतर्गत सन् 1802 में प्रारंभ ग्रेट ट्रिगॅनोमैट्रिकल सर्वे नामक वृहत् अभियान को फैलाने की आवश्यकता महसूस की। इसके अंतर्गत संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप का भौगोलिक सर्वेक्षण किया जा रहा था।

इस समय तक यूरोप में दक्षिणी अमेरिका के एंडीज को सबसे ऊंची पर्वत माला मानने की गलतफहमी मौजूद थी और जब सन् 1809-10 में सर्वेयर वेब, रेपर तथा कोलब्रुक द्वारा 25000 फीट से ऊंचे शिखरों को हिमालय के भौगोलिक यथार्थ के रूप में स्वीकारा और प्रस्तुत किया गया तो अधिकांश को इसका विश्वास ही नहीं हुआ। वेब ने अपने सन् 1819 के कुमाऊं के नक्शे में नंदादेवी को 'शिखर14' के रूप में दर्शाया था। इसकी ऊंचाई 25645 फीट दर्शाई गई थी और टिप्पणी में नंदादेवी नाम भी दिया गया था।

सन् 1860 के आसपास तक उत्तर में तिब्बती सीमांत से दक्षिण में लंका तक का संपूर्ण क्षेत्र सर्वे किया जा चुका था। इनमें सबसे महत्व की उपलब्धि सन् 1852 में 'शिखर 15' (एवरेस्ट) की ऊंचाई की खोज थी। लेकिन तिब्बत सन् 1904 तक रहस्यमय और वर्जित क्षेत्र बना रहा। अन्य आकर्षणों के अलावा अब तिब्बत बर्तानवी, चीनी तथा रूसी साम्राज्य के बीच में स्थित एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में भी स्वीकार

किया जा चुका था। इसके साथ ही तिब्बत तथा मध्य एशिया को कच्चेमाल के स्रोत और बाजार के रूप में हथियाने की औपनिवेशिक आकांक्षा का भी विस्तार होता जा रहा था।

## ग्रेट आर्क

दरअसल जब ईस्ट इंडिया कंपनी दक्षिण भारत में अपना विस्तार कर रही थी तभी सन् 1802 में एक विस्तृत भौगोलिक सर्वेक्षण की शुरूआत हुई। विलियम लैंबटन ने इसकी शुरूआत की। इसके बाद कर्नल जॉर्ज एवरेस्ट तथा एंड्रयू स्कॉट वा ने न सिर्फ यह कार्य आगे बढ़ाया बल्कि उत्तरी भारत की ओर इसका विस्तार किया। दरअसल ग्रेट आर्क तथा इस पर आधारित सर्वेक्षणों ने विज्ञान और इसके माध्यम से भू-राजनीति को समझने का विशिष्ट कार्य उन्नीसवीं सदी के आरंभ में ही शुरू कर दिया था। ग्रेट ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे, जिसके केंद्र में 'ग्रेट इंडियन आर्क' के तमाम सर्वे थे, औपनिवेशिक युग में किया गया एशियाई भौगोलिक ज्ञान को बढ़ाने वाला एक असाधारण कार्यकलाप था।

आधी सदी में पूरा हो सका यह कार्य ईरान से बर्मा तथा मंगोलिया से लंका तक फैला था। यह अविश्वसनीय लग सकता है लेकिन यदि जॉन की के शब्दों में कहें तो उस युग के युद्धों से अधिक व्यय इस अंवेषण कार्य में हुआ और युद्ध में जितनी जानें गई, उससे कहीं अधिक इस अंवेषण कार्य में गई। यही नहीं, सर्वे विभाग के सर्वोच्च अधिकारी भी या तो भारत में काल कवलित हो गए या अपंग होकर इंग्लैंड वापस लौटे। राबर्ट कोलब्रुक, मैकंजी तथा लैंबटन इन तीन सर्वेयर जनरलों की मृत्यु भारत में ही कार्य करते हुए हुई।

सन् 1833 में एवरेस्ट ने अपना घर तथा दफ्तर मसूरी के हाथीपांव नामक स्थान पर बनाया। उसके दो प्रसिद्ध भारतीय सहयोगी थे सैयद मीर मोहसिन हुसेन तथा राधाकांत सिकदर। पहला मद्रास का मुसलमान था तो दूसरा बंगाली ब्राह्मण। सिकदर ने एवरेस्ट शिखर की ऊंचाई निकाली थी।

सन् 1843 में एवरेस्ट के जाने के बाद भी हिमालय में सर्वेक्षण कार्य चलता रहा। नंदादेवी की ऊंचाई तो 1820 से पहले ही ज्ञात हो गई थी। सन् 1830 में कंचनजंगा की ऊंचाई (28146 फीट या 8660 मीटर) पता चली तो वह सर्वोच्च हो गया। इसी समय एक और ऊंचे शिखर की उपस्थिति का अंदाज आ गया था। एंड्रयू स्कॉट वॉ ने इस शिखर को 'गामा' नाम दिया। पर दार्जिलिंग से इसका सही मापन नहीं हो पा रहा था। सन् 1850 में यह स्पष्ट हो गया था कि वॉ का 'गामा' ही विश्व की सर्वोच्च चोटी है। महीनों की गणना के बाद 'गामा' ही 'शिखर15' बना। लेकिन वॉ ने 1856 में ही इस चोटी की ऊंचाई घोषित की, जो तब 29002 फीट या 8840 मीटर थी। जॉर्ज एवरेस्ट



के नाम पर इसे 'मौंट एवरेस्ट' और अंततः 'माउंट एवरेस्ट' नाम दिया गया, हालांकि अपने नाम से जुड़ी इस चोटी को जॉर्ज एवरेस्ट कभी प्रत्यक्ष देख नहीं सका।

आज मुख्यतः एवरेस्ट के नाम से जाना जाने वाला यह शिखर कभी भी बिना नाम का नहीं था। इसे तिब्बत में चोमोलंगमा, चीन में कोमोलंगमा तथा नेपाल में सागरमाथा कहा जाता था। इस शिखर को इसके आसपास के समाज न सिर्फ जानते थे बल्कि पूजते भी थे। औपनिवेशिक सर्वेयरों ने बिना पड़ताल के ही यह मान लिया कि इसका कोई नाम नहीं है।

सन् 1852 में जब राधाकांत सिकदर ने सागरमाथा/चोमोलंगमा की दुनियां के सबसे ऊंचे शिखर के रूप में पहचान की थी और इसे 'शिखर 15' नाम दिया था, तो यह शायद ही किसी ने सोचा होगा कि यह अंवेषण ही नहीं हिमालयी सौंदर्य, कठिनाई तथा मानवीय दुस्साहस के क्षेत्र में भी सबसे अलग शिखर सिद्ध होगा। यह कल्पनातीत रहा होगा कि 2003 तक 65 से अधिक देशों के 1200 से अधिक पर्वतारोही अलग-अलग मार्गों से इस शिखर तक चले जा चुके होंगे या 176 से ज्यादा लोग उस गंतव्य तक पहुंचने की कोशिश में दिवंगत हो चुके होंगे या सन् 1993 की तरह एक ही दिन में 40 लोग शिखर पर पहुंचेंगे या मई 1996 में एक ही दिन में 12 पर्वतारोही मारे जाएंगे।

सन् 1855-56 में टी. जी. मांटगोमरी ने के1 तथा के2 की ऊंचाई का पता लगाया। अगले 2-3 सालों में इनकी ऊंचाई निश्चित हुई। के1 का स्थानीय नाम भी पता चला। इसे माशेरब्रम नाम से स्थानीय समुदाय जानते थे। कहा जाता है कि के2 (28287 फीट या 8703 मीटर) के लिए कोई नाम प्रचलन में नहीं था। इसके लिए 'माउंट मांटगोमरी', 'माउंट वाग', 'माउंट अल्बर्ट' (रानी विक्टोरिया के पति), 'माउंट गाडविन आस्टिन' (जिस सर्वेयर ने पहली बार कराकोरम ग्लेशियरों का पता लगाया था) जैसे नाम प्रस्तावित हुए। पर कोई नाम स्वीकार नहीं हो सका। आज डेढ़ सौ साल बाद भी मांटगोमरी का दिया नाम के2 ही प्रचलन में है।

एक प्रकार से सन् 1808 में वेब से शुरू हुआ हिमालयी सर्वेक्षण सन् 1908 में स्वेन हेडिन द्वारा तिब्बत के विस्तृत सर्वेक्षण-अध्ययन के साथ अपनी सफल पराकाष्ठा तक पहुंचा। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अब्दुल हामिद, मिर्जा सूजा (द मिर्जा), हैदर शाह (हविल्दार), अता मुहम्मद (द मुल्लाह), नैन सिंह (पंडित ए या द पंडित), मानी सिंह (जी.एम.), किशन सिंह (ए.के.), कलियान सिंह (जी.के.), किंथप, सेरप ग्यात्सो, अब्दुल सुभान (एन.ए.), हरि राम (एम.एच. या न. नौ), नेम सिंह (जी.एम.एन.), लाला (एल), रिनजिंग नमग्याल, सुख दर्शन सिंह (जी.एस.एस.), मुख्तार शाह (एम.एस.), शरत चंद्र दास (डी.सी.एस.), लामा उग्येन ग्यात्सो (यू.जी), गंगा दत्त (टी.जी.) आदि सर्वेयरों/अंवेषकों ने हिमालय, नेपाल, तिब्बत तथा मंगोलिया जैसे एशिया के बहुत बड़े हिस्से में

असाधारण महत्व का कार्य किया। चार्ल्स एलन के शब्दों में तिब्बती अंवेषण की यह सदी ब्रिटेन के एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरने से भी जुड़ी है। इसलिए मुख्यतः ब्रिटिश भारत की खिड़की से ही दुनिया तिब्बत तथा उसके आसपास के क्षेत्रों को जान सकी।

पं. नैन सिंह रावत

यह कहना भी उचित होगा कि तब तक अनेक बार ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासक तथा सर्वेयर अनधिकृत रूप से विभिन्न सीमांतों तक जाने, कुछ भीतर घुसने और विभिन्न जानकारियां जमा करने में कामयाब हो चुके थे। तिब्बती प्रशासक किसी भी विदेशी—विशेष रूप से यूरोपियों—को अपने क्षेत्र में नहीं आने देते थे। अनेक दुस्साहसी बलात् तिब्बत में प्रवेश करने के कारण मारे जाते रहे। सन् 1812 में तिब्बत गए मूरक्राफ्ट और हैदर हियरसे वहां से तो सुरक्षित वापस आ गए थे पर गोरखा क्षेत्र (उत्तराखंड) में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था और वे कठिनाई से मुक्त हो पाए थे। तिब्बत में उन्हें स्पष्ट रूप से बताया गया था कि वहां फिरंगी तथा गोरखों का प्रवेश पूरी तरह वर्जित है। बाद में सन् 1841 में पश्चिमी तिब्बत को डोगरा राज्य में मिलाने के प्रयास में निरंतर सफलता प्राप्त करने वाले प्रसिद्ध सेनापति जोरावर सिंह तथा उसके अधिकांश सैनिकों को अंततः ताकलाकोट के आसपास तिब्बतियों ने मार डाला था और शेष बचे सैनिकों को भागना पड़ा था।

पं. किशन सिंह रावत

सर्वे ऑफ इंडिया के सर्वेयर टी.जी. मांटगोमरी ने इसका समाधान निकाला कि सिर्फ भारतीय—वह भी हिमालयी क्षेत्र के—सर्वेयरों के द्वारा ही तिब्बत और मध्य एशिया की व्यापक खोज और सर्वे का कार्य हो सकता है। इसमें तिब्बत तथा तिब्बती भाषा का जानकार होना तथा तिब्बती नाकनक्श का होना विशेष मददगार हो सकता था। व्यापारियों और तीर्थ यात्रियों के रूप में तिब्बत जाने वाले भोटांतिकों के



निवासी अंततः इस हेतु सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुए। वहां भेजने के लिए जो स्थानीय लोग ढूंढे गए उन्हें 'पंडित' या 'मुंशी' नाम दिया गया था।

उन्हें सर्वे करने, तिब्बती पहनावे, भाषा, नामों का प्रयोग करने, गुप्त जेबें और उनमें डायरी या उपकरणों को छिपाने, 'ओम मणि पद्मे हुम्' का माला जाप करने का प्रशिक्षण देकर अत्यंत पारंगत बनाया गया था। इनमें सर्वाधिक प्रखर और प्रभावशाली थे पंडित नैन सिंह रावत, जो 'पंडित ए', 'चीफ पंडित', 'ओरिजिनल पंडित' या 'नंबर-एक' के नाम से भारतीय सर्वेक्षण तथा अंवेषण यात्राओं के इतिहास में चर्चित बने। दरअसल यह संबोधन नैन सिंह के सर्वे विभाग में आने से पहले के पेशे (अध्यापन) से जुड़ा था। नैन सिंह रावत को इस नए अभियान का प्रथम तथा प्रमुख पुरुष बनने का सौभाग्य मिला था।

## हिमालयी घुमक्कड़ों का वंशज

विभिन्न पहाड़ी क्षेत्रों की तरह उत्तराखंड में भी यहां के भूगोल ने सामाजिक—सांस्कृतिक विविधता को संभव बनाया है। तराई—भाबर से उच्च हिमालय तक पशुचारण, खेती तथा मौसमी प्रवास की जो जीवन पद्धतियां विकसित हुईं, उनमें सबसे अधिक विशिष्टता उत्तरी क्षेत्र में मौजूद भोटांतिकों में प्रकट हुई। यहां के समुदायों ने पशुचारण, खेती तथा व्यापार की मिली-जुली जीवन पद्धति विकसित की। पहले इसमें कुटीर उद्योग भी शामिल थे और बीसवीं सदी के अंतिम हिस्से में नौकरी तथा भिन्न तरह के प्रवास की प्रक्रिया भी इसमें जुड़ गई।

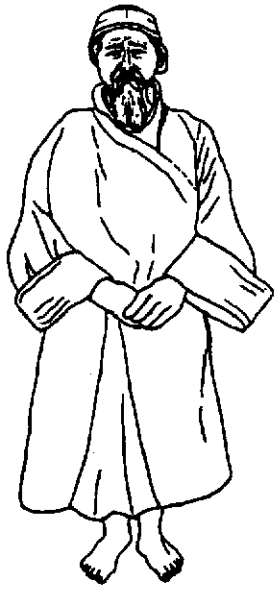

किंथुप

उत्तराखंड में भोटांतिकों के चार प्रख्यात क्षेत्र रहे हैं। पहला है कुटी, काली तथा पूर्वी धौली घाटियों का क्षेत्र जिसे ब्यांस, चौदांस तथा दारमा कहा जाता है और यहां के निवासियों को ब्यांसी, चौदांसी तथा दारमी यानी रङ कहा जाता है। दूसरा क्षेत्र है गोरी नदी की घाटी यानी जोहार। यहां के निवासी जोहारी कहलाते हैं। ये क्षेत्र तत्कालीन अल्मोड़ा जिले में आते थे। तीसरा क्षेत्र पश्चिमी धौली तथा विष्णु गंगा घाटी का है। यह नीती तथा माणा का क्षेत्र पैनखंडा भी कहलाता था। यहां के निवासी तोलछा तथा मार्छा कहलाते हैं। यह क्षेत्र जिला ब्रिटिश गढ़वाल में आता था। अंतिम चौथा क्षेत्र जाड गंगा तथा भागीरथी की ऊपरी घाटी

(टकनौर) का है, जहां जाड समुदाय निवास करते हैं। तब यह क्षेत्र टिहरी रियासत में आता था। आज ये क्षेत्र उत्तराखंड के क्रमशः पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तरकाशी जिलों में पड़ते हैं, जोकि तिब्बती सीमांत पर स्थित हैं।

भोटांतिक क्षेत्र में गोरी नदी की घाटी अपनी संरचना में सबसे विशिष्ट है। इस घाटी का मदकोट से नीचे का इलाका गोरीफाट कहलाता है तो मुनस्यारी से बगुड्यार तक का क्षेत्र तल्ला जोहार और रिलकोट से उपर का मल्ला जोहार। मल्ला जोहार में मिलम, बिलजू, बुर्फू, गनघर, पाछू, टोला, ल्वां, मरतोली, खिलांज तथा लास्पा आदि मुख्य गांव थे। इसी क्षेत्र में गोरी नदी में गुंखा गाड़, पांछूगाड़ तथा कुछ नीचे रालम गाड़ जैसी नदियां मिलती हैं।

औपनिवेशिक युग में अल्मोड़े से 170 मील (272 कि.मी.) उत्तर में स्थित तथा सन् 1870 के आसपास लगभग 1500 की जनसंख्या वाला मिलम (11430 फीट) इस घाटी का सबसे अंतिम तथा सभी घाटियों का सबसे बड़ा गांव था। इसके आगे एक ओर त्रिशूली तथा हरदेवल शिखरों के दक्षिण-पूर्वी उतार पर विराट मिलम ग्लेशियर से गोरी नदी का जन्म होता है और दूसरी ओर गुनखा गाड़ की घाटी है जो स्यूंतापानी ग्लेशियर, बमरास ग्लेशियर तथा परीताल ही नहीं ऊंटाधूरा से पूर्व का पानी लेकर मिलम गांव से कुछ नीचे गोरी से मिल जाती है। ऊंटाधूरा से त्रिशूली तथा हरदेवल शिखरों से होकर एक बर्फीली धार नंदादेवी शिखरों और ट्रेल पास से आगे जाती है तो दूसरी धार राजरंभा शिखर, रालम दर्रा से होकर पंचचूली शिखरों तथा छिपला केदार तक विस्तृत है। यही धार गोरी तथा पूर्वी धौली/काली नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों की विभाजक रेखा है और एक प्रकार से गोरी काली नदी के संगम स्थल जौलजीबी तक उतर जाती है।

लामा उग्येन ग्यात्सो

जोहार के निवासी गुनखागाड़, स्यूंतापानी तथा बमरास ग्लेशियर तथा परीताल हो कर ऊंटाधूरा दर्रे (18000 फीट) को पार कर एक ओर गंगापानी से जयंती तथा किंगीबिंगी ला जैसे दो दुर्गम दर्रों को पार कर तिब्बत जाते थे, दूसरी ओर टोपीढुंगा से खिंगर दर्रा, लपथल आदि पार कर मलारी, नीती तथा जोशीमठ पहुंचते थे। पहले इलाके से जोहारियों के व्यापारिक संबंध थे और दूसरे में पारिवारिक रिश्तेदारी थी। जोहार के निवासी रालम गांव तथा बुर्जिकांग धूरा होते हुए टोला आते थे तो रालम गांव तथा रालम दर्रा होते हुए दारमा घाटी के अंतिम गांव सीपू पहुंचते थे। इसी तरह



मरतोली तथा ल्वां से ट्रेल पास तथा पिंडारी ग्लेशियर होते हुए मल्ला दानपुर पहुंचते थे। ये सभी मार्ग तथा दर्रे जोहारियों के जीवन के स्वाभाविक हिस्से थे। जोहारियों की जमीन तथा जंगल का विस्तार ऊंटाधूरा के पार अलकनंदा के उपरी जल ग्रहण क्षेत्रों यानी गिरथी तथा कियोगाड़ नदी के उद्गम तक था। आज भी मिलम की वन पंचायत का विस्तार ऊंटाधूरा के पार सांचिमाला-लपथल तक है।

गोरी घाटी में जोहारी समाज गर्मियों में अपने ऊपरी गांवों में जाता था, जहां इनके परिवार (कुंचा) कुछ महीनों या एक फसल की अवधि तक टिकते थे और घुमंतू समाज की परंपरा को स्थायित्व देते थे। दूसरी ओर जोहारी पुरुष अपने याक, भेड़, बकरी तथा घोड़ों के 'ढाकरों' के साथ एक ही दिन में तीन ऊंचे हिमालयी दर्रों को पारकर तिब्बत के पठार में गरतोक (दाबा), थोलिंग, तीर्थापुरी, दारचिन तथा ताकलाकोट तक पहुंचते थे। इस बीच उनके कारिंदे तिब्बती माल को वापस भी ले जाते थे। कुछ माह में वहां व्यापार का कार्य निपटाकर वापस लौटते थे। मिलम तथा अन्य गांवों से अपने परिवारों, अन्न-उपजों तथा इस बीच जन्मे आदमी तथा जानवरों के बच्चों को नीचे के गांवों में ले जाते थे।

इस तरह अक्टूबर से अगले ग्रीष्म तक के लिए ये परिवार मुनस्यारी से थल, तेजम (नैन सिंह तथा रावतों का पूर्वी रामगंगा घाटी में स्थित गांव), डीडीहाट, फरसाली (काड़ाकोट, चुड़ियाधार तथा मल्लादेश), गुलेर, देबी बगड़, रीठाबगड़, सामा, थाला, बागेश्वर तथा गरुड़ आदि कुमाऊं के अन्य स्थानों में आ जाते थे और पुरुष व्यापारिक सामग्री लेकर इन स्थानों से भाबर-तराई, करीब के मैदानों और अनेक बार और आगे कलकत्ता तथा बंबई तक चले जाते थे। यही नहीं, इस अवधि में वे पश्चिमी नेपाल के अंतर्वर्ती क्षेत्रों-मर्मा, डंडेलधूरा तथा आछाम आदि-तक अनेक आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति और विनिमय व्यापार करते थे। कभी कभी वे शहद तथा घी के साथ वापस लौटते थे।

## जोहार के रावत

जोहार घाटी में उत्तरी भारत तथा तिब्बत के नृतत्व समूहों तथा उनकी समाज-संस्कृतियों का समन्वय निश्चय ही हुआ होगा लेकिन जोहार के निवासी भोटांतिक की किसी भी और घाटी के निवासियों के मुकाबले सबसे जल्दी कुमाऊं की मुख्य धारा में आ गए। राजुला-मालूशाही की सुप्रसिद्ध प्रेम कहानी जोहार तथा शेष कुमाऊं या पहाड़ और भोट के सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों की कहानी भी है। कत्यूरी तथा चंद राजाओं के समय जोहार क्षेत्र महत्व का बना रहा। जोहारियों ने अनेक सालों तक कुमाऊं को जीत चुके गोरखों को जोहार में नहीं घुसने दिया। यही नहीं उन्होंने कुमाऊं के चाणक्य कहे जाने वाले हर्षदेव जोशी को गिरफ्तार करने का साहस भी किया। बाद में सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, अंवेषण तथा स्वतंत्रता संग्राम में जोहार की हिस्सेदारी चकित करने

वाली है। उन्नीसवीं सदी में इस समाज में जो व्यक्ति कई कारणों से महत्वपूर्ण बन सके उनमें नैन सिंह सर्वाधिक चर्चा योग्य है। नैन सिंह की वंश परंपरा पर अलग से और जरा विस्तार से नजर डालनी उचित होगी।

भोटांतिकों के निवासी मूलतः घुमक्कड़ समुदाय रहे हैं। घुमक्कड़ी में ही उनका पशुचारण, कृषि, लोक-कलाएं, व्यापार, कुटीर उद्योग और उत्सव जीवित रहे। नैन सिंह के पूर्वज, जो नैन सिंह द्वारा तराईन के युद्ध (सन् 1191-92) के बाद राजस्थान से गढ़वाल आए बताए गए थे, अंततः जोहार आकर इसी परिवेश तथा समाज-संस्कृति का हिस्सा हो गए थे। दरअसल हुआ यह कि कैलास मानसरोवर की यात्रा के समय तिब्बती डाकुओं के खिलाफ सफल मोर्चा लेने और स्थानीय लोगों को विजयी बनाने में असाधारण भूमिका निभाने के कारण धाम सिंह नामक रावत कौम के मूल पुरुष को ल्हासा सरकार ने बुढ़ा (पधान) का सम्मान और तिब्बत व्यापार की सुविधा दी थी। तिब्बत से वापसी में जोहार का क्षेत्र धाम सिंह को पसंद आ गया और वह यहां बस गया। तब से यह क्षेत्र उसका और उसके वंशजों का 'सात संसार एक मुनस्यार' बना रहा।

नैन सिंह रावत द्वारा लिखे गए 'इतिहास रावत कौम' के अनुसार जोहार के रावतों के मूल पुरुष धाम सिंह की चार ज्ञात तथा सात अज्ञात पीढ़ियों के बाद कलपा और फिर उसकी पांचवी में कोनच्यों तथा छठी पीढ़ी में धाम सिंह, जिसे नैन सिंह ने धामा या धामू बुढ़ा संबोधित किया था, पैदा हुए। धाम सिंह या धामू बुढ़ा या धाम सिंह द्वितीय रावत वंशावली के सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरित्र थे। धामू बुढ़ा के कुल तीन विवाह हुए थे और तीन पत्नियों से दस बेटे जन्मे थे। बेटियों का विवरण प्राप्त नहीं होता है। धामू बुढ़ा की पहली पत्नी मडुली बूढ़ी से तीन पुत्र जसपाल, दोलपा तथा सुरजू; दूसरी पत्नी खिमुली टुल्यानी से बीर सिंह तथा कुकरिया तथा तीसरी पत्नी धर्मी माछी से पांच पुत्र फते सिंह, देबू बुढ़ा, झेमू, लाटा (अमर सिंह) तथा नागू जन्मे थे :

> **"धामा बूढ़ा के तीन शादी थीं अलग 2 तीन घरों में रहती थीं तमाम मीरास व विरसियत तीनों हिस्सों में बटा था–अव्वल शादी मंगुली बुड़ी के जसपाल, दोलपा, सुरजू के तीन भाई एक तिहाई के मालिक थे दूसरी शादी टुलानी बुड़ी की कुकरिया, विरसिंह ये दो भाई एक तिहाई के हिस्सेदार समझे गए तीसरी शादी माछी धरमी बुड़ी के फतेसिंह, देवू, झेमू, लाटा, नागू पांच लड़के एक तिहाई मिरास के हकदार थे पांचों भाई एक साथ रहते थे"**

इस प्रकार नैन सिंह का पिता लाटा यानी अमर सिंह धामू बुढ़ा की तीसरी पत्नी का चौथा और सभी भाइयों में नौवां बेटा था।

जसपाल की पांचवीं पीढ़ी में उत्तम सिंह रावत ने सन् 1878 में ईसाई धर्म स्वीकार किया था। शायद यह जोहार में धर्मांतरण की पहली तथा अंतिम घटना थी। जौन, फ्रैंक, सिरिल तथा आर्थर रावत उत्तम सिंह की प्रसिद्ध संतानों में से थे। उनकी बेटी



फोबी (Phoebe) रावत का विवाह अल्मोड़े के मनोहर लाल कार्की से हुआ था। बहुत से पाठकों को आश्चर्य होगा कि प्रसिद्ध गायिका शुभा मुदगल की मां जया गुप्ता इसी दंपति की बेटी हैं। फते सिंह का दूसरा बेटा मानी सिंह या मानी बुढ़ा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह संपन्न होने के साथ साथ समाज सुधारक था और एक प्रयोगशील व्यक्ति भी। मिलम का मार्ग ठीक करने के लिए उसने छिरकानी नामक स्थान पर गोरी नदी से नहर निकाल कर नदी का प्रवाह ही बदल दिया था तथा अनेक मार्गों में मरम्मत का काम भी कराया था।

यह रोचक तथ्य है कि इन दस पुत्रों के पुत्रों ने यानी धामू बुढ़ा के विभिन्न नातियों ने भारतीय सर्वेक्षण तथा अंवेषण के इतिहास में अमूल्य योगदान दिया। बल्कि ग्रेट ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे के हिमालय तथा तिब्बत अभियानों के वे आधार थे। धामू बुढ़ा के सांतवें पुत्र देबू बुढ़ा के पहले पुत्र मानी सिंह (मानी कंपासी) तथा चौथे पुत्र किशन सिंह और धामू बुढ़ा के नौवें पुत्र अमर सिंह के दूसरे तथा चौथे पुत्र यानी नैन सिंह तथा कलियान सिंह हिमालयी अंवेषण के इतिहास के प्रख्यात नाम हैं। बाद की पीढ़ियों के भी जोहार के अनेक व्यक्ति सर्वे विभाग में कार्यरत रहे। समाज सुधारक राम सिंह पांगती या उन्नीसवीं सदी के अंवेषकों पर किताब लिखने वाले इंद्र सिंह रावत या उनके बेटे राजेंद्र सिंह रावत इसके उदाहरण हैं।

## लाटा उर्फ अमर सिंह की कहानी

धामू बुढ़ा के नौवें बेटे और नैन सिंह के पिता अमर सिंह यानी लाटा की कहानी रोचक तथा त्रासद दोनों ही है। कुमाऊं में गोरखा शासन के आ चुकने के बाद सन् 1795 में जन्मे लाटा का पहला विवाह नीती घाटी में हुआ था। जब लाटा 24-25 साल का हुआ तो वह मिलम गांव के सयाना राठ में विवाही गयी बिलज्वालों की पुत्री लखमा के प्रेम पाश में बंध गया और लखमा को उठाकर अपने घर ले आया :

> **"मेरा बाप लाटा बूढ़ा सन् 1795 ईस्वी में पैदा हुआ था करीब 24 या 25 वरस की उमर में एक ऐसी चूक हुई कि केसरसिंह नितवाल धाड़ा नीतीवाले की बहन शादी घर में मौजूद थी तिस पर भी भादू थेपू वगैरह चौभये विलज्वालों की बहन लखमा जो मिलम के सयाने राठ की व्याही थी उठाकर अपने घर लाया जिसे फतेसिंह, देवू वगैरह भाई नाराज होकर लाटा बूढ़ा को विला हिस्सा अलग कर दिया जो कुछ मिरास पांच भाईयों का हक था कुल चार हिस्सा कर वांट लिया ॥"**

लाटा के इस दुस्साहस को समाज तथा परिवार ने स्वीकार नहीं किया। उसके सभी भाई उससे नाराज हो गए और उसे चल-अचल संपत्ति से भी वंचित कर दिया गया। यह जोहारी समाज में अपनी तरह की पहली घटना थी। ऐसा दुस्साहस किसी

और ने नहीं किया था और ऐसी सजा भी किसी और को नहीं मिली थी।

प्रताड़ित लाटा ने हिम्मत नहीं हारी और वह विवश हो कर अपनी दोनों पत्नियों के साथ मुनस्यारी के सामने गोरी नदी के पार जिमदारों/बरपटियों के गांव भटकूड़ा में रहने लगा। यह गांव पंचचूली पर्वतमाला की पश्चिमी ढलान में स्थित था। भटकूड़ा को एक प्रकार से गैर भोटिया गांव कहा जा सकता है। लाटा के लिए यह एक तरह का वनवास ही था, जो 27 साल बाद पुनः मिलम वापसी के समय समाप्त हो सका। उसकी दोनों पत्नियों के लिए यह एक कठिन स्थिति थी। लाटा ने अपने हिस्से की पैतृक संपत्ति के लिए कुमाऊं कमिश्नर ट्रेल के न्यायालय में आवेदन दिया लेकिन उसे इसमें सफलता नहीं मिली। इस वनवास तथा हार का सदमा उसकी पत्नियां नहीं सह सकीं और एक दिन दोनों ने गोरी नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली। शौका महिलाओं द्वारा आत्महत्या किए जाने की निश्चय ही यह अपवाद घटना रही होगी।

लाटा के लिए यह समय अत्यंत विपत्तियों से भरा था। सामाजिक-आर्थिक ही नहीं उस पर मनोवैज्ञानिक दबाव भी था। नैन सिंह लिखता है :

**"सन् 1824 ईस्वी में वाप की उम्र 29 वरस की थी मिरास के हार जाने और औरतों के डूव मरने से परेशान था गोरी पार जमीदारों में रहकर दिन काटता किसी गांव वालों के आपस में तकरार होता तो पंचायत की रू से उनका झगड़ा निवेड़ देता जमीदारों से कुछ खेती भी करवाता इसी तरह गुजारा करता ॥"**

घर-परिवार सब समाप्त हो गया था। पर वह फिर हिम्मत जुटाने में कामयाब रहा। अमरसिंह के लिए शौका समुदाय से लड़की पाना संभव न था। कुछ समय बाद सन् 1825 में लाटा ने जसुली नामक जुमाल राजपूत (तवाघाट के पास जुम्मा गांववासी) की लड़की से पुनः विवाह किया :

**"सन् 1825 ईस्वी में वाप ने मेरी मां यशुली से शादी की जो परगनह असकोट के जुंमा गांव के लाटा राणा जुमाल रजपूत की वेटी थी सन् 1826 ईस्वी में मुझसे वड़ा भाई समजांग पैदा हुआ और तारीख 21 अक्टूवर सन् 1830 ईस्वी के रोज मुताविक सम्वत 1887 के कार्तिक छः गते वुधवार के दिन मैं पैदा हुआ सन् 1833 ईस्वी में एक वहन जनी जो चरखमिया पंछू जंगपांगी की वाही गई सन् 1836 ईस्वी में एक भाई पैदा हुआ जिसको मागा नाम रखा गया ॥"**

यह शौका समुदाय से बाहर किया गया विवाह परिवार तथा समाज द्वारा अब भी जारी रखे गए लाटा के बहिष्कार का संकेत देता है। इस तीसरी पत्नी जसुली से सामजांग (जन्म सन् 1826) पहला तथा नैन सिंह (जन्म सन् 1830) दूसरा बेटा था। तीसरी बेटी थी जो सन् 1833 में जन्मी थी और जिसका किसी विवरण अथवा वंशावली में नाम नहीं मिलता है। लेकिन नैन सिंह लिखता है कि इस बहिन का विवाह चरखमियां पंछू जंगपांगी परिवार में हुआ था। लाटा की चौथी संतति तथा तीसरे बेटे



का नाम मागा (जन्म सन् 1836) था। लगभग 13 साल के वैवाहिक जीवन और चार संततियों को जन्म देने के बाद सन् 1838 के मई महीने में मां जसुली की मृत्यु हो गयी। जसुली का वैवाहिक जीवन पूरी तरह इसी भटकूड़ा गांव में बीता। तब नैन सिंह मात्र आठ साल का था। बस इतना ही कहा जा सकता था कि वे तीन भाई तथा एक बहिन लगभग अनाथ हो जाने पर भी अकेले नहीं थे।

लाटा का चौथा तथा अंतिम विवाह भी हुआ। नैन सिंह के शब्दों में "हम लड़के अनाथ हो गए...हमारी परवरिश के लिए मेरे पिता को फिर एक शादी करनी पड़ी।" यह विवाह मुनस्यारी के पास स्थित धापा गांव के थोला धपवाल की बेटी पदिमा से सन् 1839 में हुआ। इससे गजराज (जन्म सन् 1839) तथा कलियान (जन्म सन् 1841) नामक दो पुत्र पैदा हुए :

**"धामा वूढ़ा के नवां लड़का अमरसिंह जिनका उपनाम लाटा प्रसिद्व था उनसे हम पांच लड़के उत्पन्न हुए सवसे वड़ा समजांग इससे पीछे मैं नैनसिंह हूं मुझसे मागा मागा से छोटा गजराजसिंह इससे छोटा कलियाणसिंह है हम पांच भाइयों में से मागा तो फ़क़ीर वन गया समजांग वूढ़ा के खड़कू, रामलाल, नंदलाल ये तीन लड़के हैं नैनसिंह का वालासिंह गजराजसिंह के महेन्द्रसिंह धर्मू दो लड़के हैं ॥"**

परिवार की कठिनाइयां पूर्ववत थीं। सन् 1847 में लाटा ने गोरी पार भटकूड़ा से वापस मिलम आने का निर्णय लिया। पर उसके पिता के भाइयों ने उसे पैतृक संपत्ति में हिस्सा नही दिया। निश्चय ही लाटा को अपना परिवार किसी और के मकान अथवा मिलम के किसी छोड़े हुए घर में रखना पड़ा होगा। यह नैन सिंह तथा उसके भाइयों का सौभाग्य था कि उनका पिता उन्हें अपनी मृत्यु से एक साल पहले मिलम वापस ले आया था। ऐसा लगता है कि लाटा को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था और वह अपनी संतानों को उनके असली पैतृक गांव मिलम लाना चाहता था।

अगले ही साल सन् 1848 में लाटा की मृत्यु अत्यंत दुख तथा असंतोष के बीच हुई। अपने जन्म स्थान मिलम लौटने की खुशी उसे अवश्य रही होगी पर मिलम में उचित स्थान तथा सम्मान न मिल पाने के कारण लाटा का वह दुख आजन्म बना रहा जो उसके मिलम से निकाले जाने के साथ शुरू हुआ था। सच कहा जाए तो घर लौटने के बाद भी उसका वनवास समाप्त नहीं हुआ था :

**"ग़रज मेरा वाप 25 वरस तक गोरीपार मौज़ा भटकुड़ा में रहा सन् 1847 ईस्वी में गोरीपार छोड़कर मिलम में आये सन् 1848 ईस्वी में मर गया वापके मर जाने पर तयेरा भाई वड़ा माणी वूढ़ा ने चाहा कि लाटा वूढ़ा के हिस्से का माल व मताह ज़ो कुछ लाटा वुढ़ा हार गया था उसके लड़कों को दी जावे इस वात पर और तयेरे चचेरे भाईयों की नियत देने की न हुई"**

हां बच्चों के लिए मिलम लौटना सुखद रहा। यह अवश्य ही अपनी जड़ों की ओर लौटना था, यद्यपि अनेक बार यह पुराने घावों को हरा भी कर देता था। इस सवाल का जवाब देना निश्चय ही कठिन है कि यदि लाटा अपने परिवार को सन् 1847 में वापस मिलम नहीं लाता तो क्या यह परिवार कभी स्वयं मिलम आ पाता। और क्या नैन सिंह के जीवन का प्रवाह वैसा हो पाता जैसा कि वह अंततः हुआ?

अपने पिता की मृत्यु के समय नैन सिंह अठारह साल का हो गया था। कुल 5 भाइयों तथा एक बहिन में वह दूसरे क्रम पर था। पर अधिक संवेदनशील तथा समझदार होने के कारण समय परिवार की जिम्मेदारी उसके सिर डालने वाला था। अत्यंत उतार-चढ़ाव वाला लाटा का लगभग 53 साल का जीवन आज ज्यादा चर्चा का विषय नहीं बनता यदि उसको नैन सिंह तथा कलियान सिंह जैसे पुत्रों का पिता बनने का सौभाग्य नहीं मिला होता। उसकी दुस्साहसपूर्ण प्रेम कथा भी शायद ही उजागर होती। इन बेटों के बिना वह अमर सिंह होकर भी लाटा ही बना रहता और इनके कारण वह लाटा होकर भी अमर हो गया।

तब मिलम भोटांतिक के भारत-तिब्बत सीमांत का जून से अक्टूबर तक आबाद रहने वाला सबसे बड़ा गांव था। बीसवीं सदी के मध्य तक बल्कि सन् 1960 तक भी यह कुमाऊं का सबसे बड़ा गांव था। कितने ही किस्से-कहानियां इस गांव के बारे में प्रचलित थीं और आज भी हैं। आज उजड़ा और उदास यह गांव तब अत्यंत गुलजार था। यहीं से शौका समुदाय के सदस्य उत्तराखंड की भाबर-तराई से गरतोक, ग्यानिमा, ताकलाकोट या दारचिन आदि पश्चिमी तिब्बत की मंडियों तक व्यापार करते थे। हर शौका व्यापारी का तिब्बत में एक मितुर होता था। कभी-कभी तिब्बती व्यापारी भी भोटांतिकों में आया करते थे। विशेष रूप से सरजी लामा का आगमन नए व्यापारिक मौसम की शुरूआत माना जाता था। यह आगमन एक प्रतीक्षित सालाना उत्सव की तरह होता था। गांव का मिरासी समुदाय ऐसे मौकों पर नृत्य और गीत प्रस्तुत करता था।

भारत से विभिन्न अनाज, सूती कपड़ा, गुड़, चीनी, तंबाकू, चमड़े का सामान, जानवरों के गले में बांधी जाने वाली घंटियां, विभिन्न बर्तन तथा लौह सामग्री आदि का निर्यात होता था और ऊन, पशम, चंवर गाय की पूंछ, सुहागा, नमक, मक्खन, घोड़े, भेड़-बकरी तथा सोना आदि तिब्बत से आयात की जाने वाली मुख्य सामग्रियां थीं। इस मार्ग से तिब्बत जाने के लिए ऊंटाधूरा, जयंती धूरा तथा किंग्री बिंग्री ला नामक तीन मुख्य दर्रे एक ही दिन में पार करने पड़ते थे और डाकुओं से भरे तिब्बत में ये साहसी व्यापारी-घुमक्कड़ शौका निरंतर जाते रहते थे। इनके साथ याक, झब्बू, भेड़, बकरी, घोड़ों तथा कुत्तों आदि पालतू जानवरों का 'कुंचा' यानी कारवां होता था और एक पूरी तरह जीवंत संस्कृति सीमांत के आर-पार चहल कदमी करती थी।



## नैन सिंह का बचपन

नैन सिंह का जन्म 21 अक्टूबर सन् 1830 यानी संवत् 1857 के कार्तिक छः गते बुधवार को ग्राम भटकूड़ा में हुआ था। भटकूड़ा पंचचूली पर्वतमाला की पश्चिमी ढलान में, गोरी नदी की बांई तरफ नदी से बहुत ऊपर स्थित था। यह गांव आज भी मुनस्यारी से दिखाई देता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह उसका अपना गांव नहीं था बल्कि कठिन परिस्थितियों में उसके पिता को अपने निवास हेतु यह गांव चुनना पड़ा था।

औपनिवेशिक अधिकारियों तथा हिमालयी अंवेषण के तमाम विशेषज्ञों ने कभी भी इस बात की पड़ताल नहीं की कि नैन सिंह वास्तव में कहां जन्मा था। कुछ लोग उसका जन्म मिलम गांव में हुआ बताते रहे, जिसे कि नैन सिंह के जन्म से दस साल पहले उसके पिता को अपमानित होकर छोड़ना पड़ा था। फिर नैन सिंह सत्रह साल बाद ही इस नए गांव भटकूड़ा से निकल सका था। तब कुमाऊं में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को 15 साल पूरे हो रहे थे। यह कुमाऊं के दूसरे कमिश्नर जॉर्ज विलियम ट्रेल (1816-1836) का दौर था। इसी साल ट्रेल ने दानपुरवासी मलक सिंह के साथ अनेक सालों से बंद मल्ला दानपुर तथा मल्ला जोहार के मार्ग को खाती गांव से पिंडारी ग्लेशियर होकर मल्ला जोहार के मरतोली गांव पहुंच कर पुनः खोला था। लेकिन यह मार्ग नियमित रूप से कभी नहीं खुल सका। सन् 1830 के बाद से इस दर्रे को ट्रेल पास कहा जाने लगा।

यह भी एक रोचक संयोग है कि नैन सिंह से कुछ माह पहले भविष्य में उसका सहयोगी बनने वाला और उसे दुनिया के सामने प्रस्तुत करने वाला थॉमस जॉर्ज मांटगोमरी 23 अप्रैल 1830 को जन्म ले चुका था। इसी साल लंदन में रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की भी स्थापना हुई, जो भविष्य में नैन सिंह और मांटगोमरी दोनों को दुनिया के सामने प्रस्तुत करने का माध्यम बनने वाली थी। यह भी जानना उचित होगा कि भारतीय सर्वे विभाग की स्थापना भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के शुरू होने के मात्र 10 साल बाद सन् 1767 में हो चुकी थी जबकि इसके 63 साल बाद 1830 में लंदन की रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की स्थापना हुई थी।

अपनी पीढ़ी के अन्य बच्चों की तरह नैन सिंह की भी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने की परिस्थितियां न थी। दरअसल तब कुमाऊं में शिक्षा की कोई विधिवत व्यवस्था थी ही नहीं। कुछ सवर्ण परिवारों में संस्कृत की शिक्षा का प्रचलन था। हां समाज के विभिन्न समुदाय अपने पेशे या धंधे को अपने परिवार तथा समुदाय की परंपरा से सीखते थे। शौका समुदाय में भी पशुचारण, व्यापार तथा कुटीर उद्योगों की शिक्षा परिवार तथा समुदाय से सीखी जाती थी। इसी क्रम में वे अनेक भाषा-बोलियां भी सीख लेते थे।

नैन सिंह अपने जन्म से 16-17 साल तक भटकूड़ा में रहा। बचपन में उसे भटकूड़ा के घर का अकेलापन झेलना पड़ा था, जहां सिर्फ उसकी मां, पिता तथा बड़ा भाई सामजांग थे। उनकी शौका बिरादरी के लोग इस गांव में न थे। मिलम गांव की

सक्रियता तथा सामाजिकता से ही नहीं उस शिक्षा से भी वह वंचित रहा जो अपने समुदाय से उसे स्वतः मिलती। इसके साथ ही समाज द्वारा प्रताड़ित पिता का दंश उसे सहना पड़ा था। यह विस्थापन तथा सामाजिक दंश शायद उसके द्वारा सीखे गए पहले पाठ थे। इनसे उसे कर्मठ तथा कठोर होने का दबाव मिला।

पहले मां और फिर पिता के न रहने से नैन सिंह तथा उसके भाई असहाय हो गए थे। असहायता का बड़ा कारण यह था कि नैन सिंह के पिता को मिलम लौटने के बावजूद न मकान मिल सका और न खेत ही। मिलम से निकाले जाने के कारण व्यापार में भी चौथाई सदी से इस परिवार की कोई हिस्सेदारी नहीं रही थी। इस समय और ऐसी कठिन परिस्थितियों में जिस साहस और धैर्य की जरूरत थी वह तब न नैन सिंह में था और न उसके भाइयों में। बाद के जीवन में साहस और दुस्साहस दोनों के प्रयोग में सिद्धहस्त बनने वाला नैन सिंह इस समय लाचार था। उसे कोई रास्ता सूझता ही न था।

चचेरा भाई मानी बुढ़ा मददगार निकला। पहले उसने लाटा के सभी चार भाइयों से मिल कर लाटा बुढ़ा की संपति में नैन सिंह तथा उसके भाइयों को उनका हिस्सा दिलाने का प्रयास किया। सफलता न मिलने पर मानी बुढ़ा ने नैन सिंह को कुछ रुपए तथा भेड़-बकरी देकर व्यापार करने की सलाह दी। दरअसल नैन सिंह में प्रारंभिक आत्मविश्वास भरने का श्रेय सिर्फ मानी बुढ़ा को दिया जा सकता है :

> **''बाप के मर जाने पर तयेरा भाई वड़ा माणी बूढ़ा ने चाहा कि लाटा बूढ़ा के हिस्से का माल व मताह ज़ो कुछ लाटा वुढ़ा हार गया था उसके लड़कों को दी जावे इस वात पर और तयेरे चचेरे भाईयों की नियत देने की न हुई लाचार वड़ा माणी वूढ़ा ने सिर्फ अपनी तर्फ से कुछ रुपए और भेड़ वकरे दिए लेकिन हमारे परेशानी हाल को देखकर हमारे ऊपर नजर पर्वरिश की रखता रहा कभी 2 पूंजी देकर व्योपार में से नफ़ा दिलाता।''**

वह मानी बूढ़ा के इस सुझाव पर विचार कर ही रहा था कि एक दिन नैन सिंह का किसी बात पर अपनी सौतेली मां से झगड़ा हो गया। झगड़े के पीछे निश्चय ही उनकी पारिवारिक गरीबी और अभाव मुख्य कारण रहे होंगे। परिवार की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करना मुश्किल हो रहा था। मां की बातों और व्यवहार ने उसे जितना दुखी किया, उससे ज्यादा वह अपने व्यवहार तथा निठल्लेपन से दुखी हुआ और जुलाई 1851 में घर से निकल पड़ा। 18 साल के नैन सिंह ने लिखा :

> **''कमाई तो कुछ थी नहीं सिर्फ उधार लेकर पेट भर लेने का काम था मैं वड़े भाई से भी निर्वुद्धि था एक रोज मेरी सौतेली मा ने मुझे कुछ काम के लिए आज्ञा दी मैंने उनका कहा तो न माना वल्के नाराज होकर सन् 1851 ईस्वी के जुलाई महिने में मिलम से निकला मुन्सारी दानपूर वधाण और हुमली वलान और इरानी पाना होता हुआ जोशीमठ के राह वदरीनाथ को जा पहुंचा ॥''**



## मिलम से माणा

अनेक बार गुस्सा मनुष्य के जीवन में नए द्वार खोलता है। अपने शौका समुदाय के सदस्यों के विपरीत नैन सिंह अभी तक कहीं बाहर निकला ही नहीं था। जीवन के पिछले सत्रह साल भटकूड़ा में रहने के कारण उसे तिब्बत जाने का मौका भी नहीं मिल सका था। अब तक वह भटकूड़ा से मिलम तक के दृश्य भूगोल से परिचित था बस। 21 साल के नैन सिंह की इस तरह की यह पहली यात्रा थी। शौका होकर भी उसके जीवन में यात्रा का आगमन कुछ ज्यादा ही देर से हो रहा था। बाद की उसकी सभी महान यात्राएं जैसे इसकी भरपाई हों।

मिलम से गोरी नदी के साथ बिल्जू, बुर्फू तथा मरतोली आदि गांवों से होकर लीलम से वह पहले मुनस्यारी आया। मुनस्यारी तब आज की तरह सघन बसासत नहीं थी। यहां के गांव बिखरे हुए थे। फिर वह कालामुनी पर्वत पार कर रामगंगा घाटी में उतर तेजम होकर मल्ला दानपुर की ओर निकला। यहां से बघाण पट्टी के अनेक गांवों और फिर हिमनी, बलाण, इरानी तथा पाणा होकर वह जोशीमठ और फिर बद्रीनाथ पहुंचा। अंततः नैन सिंह इस घाटी के अंतिम भोटांतिक गांव माणा पहुंचा। इस यात्रा में वह माणातोली, बेदिनी, आली तथा कुंवारीखाल जैसे बुग्यालों से होकर गुजरा था और उसने गोरी, रामगंगा, सरयू, पिंडर, कैल, विरही, नंदाकिनी, अलकनंदा तथा विष्णुगंगा आदि अनेक नदियां पार की। तब तक गौनाताल नहीं बना था वर्ना पाना-इरानी गांवों से गुजरते समय वह नीचे घाटी में इसे भी देखता।

इस समय मिलम, नीती या माणा से तिब्बत की ओर तथा कुमाऊं की तराई तक प्रचलित मार्ग अवश्य थे पर इन घाटियों के बीच के अंतराल मात्र मामूली और कभी कभी अनुमानित बकरिया मार्गों से जुड़े थे। मिलम से माणा जाने का ज्यादा प्रचलित मार्ग ऊंटाधूरा तथा लपथल होकर जाता था। पर नैन सिंह ने दूसरा मार्ग चुना था। नैन सिंह ने पहली बार अपने बड़े से कुमाऊं जिले (अल्मोड़े) का मल्ला दानपुर तथा गढ़वाल जिले का पैनखंडा क्षेत्र देखा और भोटांतिक की दूसरी घाटी माणा से उसका परिचय हुआ। स्थानीय समाज तथा उसके प्राकृतिक परिवेश की उसकी पहली समझ इस यात्रा से बनी।

मिलम वालों के मलारी, नीती तथा माणा में वैवाहिक संबंध थे। लाटा बुढ़ा, मानी बुढ़ा और किशन सिंह के विवाह मलारी, नीती तथा माणा में हुए थे। माणा में अमर देब मार्छा*, जो मानी बुढ़ा का ससुर भी था यानी उसकी बेटी लाटी का विवाह मानी से हुआ था, ने नैन सिंह को अपने यहां टिकाया। अमरदेब मार्छा ने नैन सिंह में

---

* अमरदेब मार्छा की वंशावली उससे आगे इस प्रकार है : अमरदेब मार्छा - लाटा - आलम सिंह तथा जालम सिंह - रामरतन सिंह - बी.डी. सिंह। सौजन्य बी.डी. सिंह।

कोई विशिष्टता देखी या उसकी विवशता का उपयोग किया, यह कहना कठिन है पर कुछ समय बाद अमरदेब मार्छा ने अपने दिवंगत भाई निरौला, जिनको 'जगमू' नाम से भी जाना जाता था, की एक मात्र बेटी उमती का विवाह नैन सिंह से कर दिया (उमती के लिए थौंण सिंह की वंशावली में 'पुंती' नाम भी मिलता है)।

अपने घर-परिवार तथा बिरादरी से दूर यह विवाह इस अर्थ में अनोखा था कि नैन सिंह ही दूल्हा था और बराती भी। उमती तब नैन सिंह से आधी उम्र की यानी लगभग 10 साल की थी। भविष्य का यह शिक्षक और अंवेषक सन् 1854 यानी तीन साल से कुछ कम समय तक घर जमाई के रूप में वहीं अपने ससुराल माणा गांव में पड़ा रहा और जाड़ों में माणा वालों के साथ अलकनंदा घाटी में नीचे चमोली-गोपेश्वर तक फैले गांवों में जाता रहा। दरअसल अमरदेब के जाड़ों का गांव गोपेश्वर के पास स्थित घिंघराणा था, जहां अवश्य ही तीनों जाड़ों में नैन सिंह आया होगा।

जोहार की तरह की जीवन पद्धति को उसने यहां भी देखा। बस फर्क इतना था कि यहां बद्रीनाथ के कारण देश भर से ज्यादा तीर्थ यात्री आते रहते थे। इनके मुकाबले जोहार से होकर कैलास मानसरोवर जाने वाले कम ही होते थे। उसने यह भी देखा कि जोहार के शौका जाड़ों में अनेक घाटियों में स्थित अपनी बसासतों में जाते हैं जबकि माणा वालों का प्रवास मुख्यतः अलकनंदा घाटी में ही कर्णप्रयाग आदि तक सीमित रहता है। अवश्य ही उनकी भेड़-बकरियां भाबर तक जाड़ों में जाती थी। मिलम को उसने पिछले कुछ ही सालों में देखा था पर उसे लगा था कि तिब्बत व्यापार उस ओर से अधिक होता है।

इन सालों में नैन सिंह कभी तिब्बत की तरफ निकल सका हो ऐसा विवरण उसकी डायरी से नहीं मिलता है पर उसके ससुर अमरदेब मार्छा हर साल तिब्बत व्यापार के लिए निकलते थे। निश्चय ही उसकी तिब्बत व्यापार संबंधी जानकारी बढ़ती रही होगी या हो सकता है वह एकाध बार तिब्बत गया भी हो। इस अवधि में उसने घरेलू कार्यों में हाथ अवश्य बटाया होगा। उसने भेड़ों को चराने तथा उनका ऊन निकालने का काम भी किया। माणा में उसे किसी तरह की चिंता न थी। मिलम की तरह किसी बिरादर का व्यंग्य बाण नहीं सुनना पड़ता था। पर उसे मां और बहिन-भाइयों की याद आती थी तथा उसे उनकी चिंता भी थी।

नैन सिंह इस तरह कब तक रहता! वह इस सुरक्षित जीवन से कुछ ऊबने सा लगा था। उसे लगा कि यह स्थिति बहुत दिनों तक चलती नहीं रह सकती है। सन् 1854 के प्रारंभ में वह सोचने लगा था कि ऐसा बहुत समय तक नहीं चलेगा! उसे मिलम, जिस गांव में वह अपने बचपन में नहीं रह सका था तथा अपनी मां, भाई–बहन सभी की याद आने लगी। रास्ता भी एक मात्र यही था कि वह अपने घर लौटे। एक संकट और उसके सामने तब खड़ा हुआ जब अमरदेब मार्छा ने अपनी तथा अपने दिवंगत भाई की संपत्ति



का वारिस नैन सिंह को बना दिया। यह नैन सिंह को असहज लगा। लेकिन यह नहीं सूझता था कि वह माणा से जाए कैसे और किस तरह अपनी इच्छा को अमरदेब के सामने रखे। उमती को कैसे ले जाए! उमती की मां को कैसे बताए! उस पर जैसे मिलम तथा माणा के दो परिवार निर्भर हो गए हों। वह अपने घर को देखे कि ससुराल को ?

कई दिनों तक अंतर्द्वंद्व चलता रहा। वह माणा से निकलने का साहस तो जुटाने लगा था पर इस बाबत अपने बड़े ससुर या सास को बताने में झिझक रहा था। किसी तरह उसने उमती को अपना अंतर्द्वंद्व बताया। उमती से उसे सहयोग मिला। वह उमती को अपने साथ जाने को तैयार करने में कामयाब रहा। उमती आजन्म उसे इसी तरह सहयोग देती रही। लेकिन वे दोनों अमरदेब मार्छा को इस बाबत बताने का साहस नहीं कर सके। शायद उमती ने अपनी मां को यह जरूर बताया होगा।

## माणा से मिलम पर अकेले नहीं

'ससुर घर में रहना सवव गैरती जानकर' मार्च 1854 में एक दिन नैन सिंह अपने तेरह वर्षीय 'कबीले' यानी उमती को लेकर वापस लौट पड़ा। इस समय मिलम बर्फ से ढका था। परिवार-बिरादरी के लोग अभी तेजम में ही थे। यह बताया जाता है कि नैन सिंह ने सामा से अपनी बिरादरी में यह सूचना भेजी कि वह उच्च कुल की बहू को लेकर आ रहा है। इस तरह वह उस गर्त से निकलना चाहता था जहां पिता के कारण उसे गिरना पड़ा था। उसने बड़े ससुर अमरदेब मार्छा को अपने तथा उमती के जाने की सूचना नहीं दी।' इस बाबत उलाहना भी उसके ससुर कुछ ही महीनों बाद तब दे सके जब उनकी मुलाकात थोलिंग में हुई। नैन सिंह अपनी डायरी में लिखता है :

> **''अमरदेव ने मुझसे यह ठहरा लिया था कि नैनसिंह बरावर मेरे घर में रहे जो कुछ मिरास मेरा और मेरे भाई का है नैनसिंह को मिलै अमरदेव मालदार आदमी था उसके घर में मैं बड़े आनंद से रहता था लेकिन ससुर घर में रहना सवव गैरती का जान कर सन् 1854 ईस्वी के मार्च महीने में कवीले को साथ लेकर गढ़वाल से घर को चले आया उस वक्त मेरे कवीले की उम्र 13 वरस की थी यद्यपि मेरे घर आने से सौतेली मा व भाई वगैरह सवको खुशी हासिल हुई लेकन किसी तरह का रोजगार न होने से वेचैन थे ॥''**

जब वह तीन साल बाद और सपत्नीक वापस लौटा तो गांव–परिवार में सभी प्रसन्न हुए। मां, भाइयों तथा मानी बुढ़ा सबको सुखद आश्चर्य हुआ। कुछ बिरादर भी प्रसन्न हुए थे। बहन ने भी अपनी ससुराल में इस बाबत सुना होगा। नैन सिंह तथा उमती का स्वागत हुआ पर नैन सिंह के सामने तीन साल पहले खड़े प्रश्न पूर्ववत थे। अब उमती का अतिरिक्त प्रश्न भी इनमें जुड़ गया था। नैन सिंह की आर्थिक गर्दिश बरकरार थी। न अपना घर था, न खेती, न व्यापार। बस बड़ा मानी बुढ़ा का तीन साल

पहले दिया गया प्रस्ताव याद था कि कुछ करो और मुझसे पैसा तथा जानवर उधार लेकर शुरूआत करो। वही बात एक रोशनी की किरण की तरह उसके मन में थी। अब उसको अपनी बढ़ी हुई जिम्मेदारियों का भी भान होने लगा था। यह पांच जनों का परिवार किसी तरह घिसट रहा था। इसमें ये दो और जुड़ गए थे।

मानी बुढ़ा को भी अपने प्रस्ताव की याद थी। नैन सिंह के विवाह तथा लौट आने की भी उसे बहुत खुशी थी। उसने रुपया तथा सुझाव दोनों नैन सिंह को दिए। इस तरह नैन सिंह मात्र 10 दिन गांव में रहकर और अपने 'कबीले' को गांव में छोड़ कर एक नए प्रयोग के लिए दूसरी बार घर से बाहर निकला। इस बार वह भागा नहीं था बल्कि योजनाबद्ध तरीके से जा रहा था। शायद माणा के आराम के तीन साल उसके हिस्से इसलिए आए थे कि अब आजन्म उसे व्यस्त रहना था। अब नैन सिंह 24 साल का हो गया था और कुछ न कुछ करने की चाह ने उसे कांगड़ा तक के हिमालय की यात्रा का और वापसी में तिब्बत होकर लौटने का मौका दे दिया। यह परीक्षा थी और प्रयोग भी।

15 अप्रैल 1854 को भाइयों की सलाह तथा बड़ा मानी बुढ़ा तथा कुछ अन्य बिरादरों से 600 रुपया लेकर नैन सिंह एक नयी यात्रा में निकला। उसके साथ कुछ बिरादर व्यापारी थे। इनमें जीता जंगपांगी तथा बीजू धरमसक्तू मुख्य थे। यात्रा का लक्ष्य था भेड़, बकरी, सुरगाय आदि खरीदना। गंतव्य था हिमाचल का सर्वथा अपरिचित इलाका। टिहरी, मसूरी, शिमला, बिलासपुर, ज्वालामुखी, कांगड़ा होकर चंबा-भरमौर तक की यात्रा करनी थी। यह एक प्रकार से आज के उत्तराखंड तथा हिमाचल के आर पार जाना तो था ही। वापसी तिब्बत की ओर से होनी थी। यह एकाएक एक कठिन प्रयोग करने जैसा था। तब वह दूसरी बार घर से निकला था, लेकिन यह यात्रा लंबी थी। उसने इन तमाम इलाकों को पहली बार देखा। इस यात्रा से चीजों को देखने तथा समझने की उसकी क्षमता निश्चय ही बढ़ी।

अगर आज के नक्शे में इस यात्रा के मार्ग को समझने का प्रयास करें तो इसमें गोरी, सरयू, रामगंगा पूर्वी तथा पश्चिमी, सरयू, कोसी, गंगा, यमुना, सतलज, ब्यास, चंद्राभागा, स्पीती तथा गुंखा नदियां पार करनी थी। ये नदियां वर्तमान उत्तराखंड, हिमाचल तथा पश्चिमी तिब्बत के विशाल भूखंड में फैली हुई थी। हिमालयी भूगोल की सभी विशेषताओं का अनुभव उसे हुआ। तरह तरह के हिमालयी समाजों, उनकी भाषा, संस्कृति, पहनावे तथा खानपान से भी उसका सामना हुआ।

नैन सिंह तथा साथियों ने जानवरों की खरीददारी करने के बाद वापसी की यात्रा शुरू की। वापसी तिब्बत से होनी थी। भरमौर से चौबिया दर्रा पार कर वे चंद्रभागा यानी चेनाव नदी के किनारे किनारे त्रिलोकनाथ के मंदिर को देखने आए। हिंदुओं के इस मंदिर में बुद्ध की प्रतिमा का पूजन होता था। यहां से वे भागा नदी के साथ लाहुल की प्रमुख वसासत केलिंग (केलांग) पहुंचे। केलिंग तथा भेलिंग के आसपास के गांवों से उन्होंने



350 भेड़ तथा बकरियां, 10 सुरागाय तथा एक घोड़ा खरीदा। नैन सिंह ने लिखा :

**"ब्रह्मोर से चौविया का जोत यानी हिमालिया टप कर तीन दिन के राह चन्द्र भागा नदी के वाई किनारे पर त्रिलोकनाथ का मन्दर देखा यह मन्दर हिन्दूस्तान के तौर पर तामीर है लेकन मुर्ति वुध का संगमरमर का वना है पूजा तिव्वत के तरीके पर किया जाता वलके पुजारी एक लामा मुकर्रर है और मनदिर के भीतर वुध के मुर्ति के पास एक वड़ा भारी चिराग रातोदिन वरावर जलता रहता है जिसमें पन्द्रह सेर तक घी समा सक्ता है हमेशह यह चराग घी से भरा रहता है मैंने त्रिलोकनाथ से लेकर लावल के केलिंग भेलिंग गांव के वीच 350 तक भेड़ वकरे 10 सुर गाय 1 घोड़ा खरीदा जीता जंगपांगी वगैरह साथियों समेत पाराल्हाचा पहाड़ टपकर पीती के मुल्क में होता हुआ सुमगिल इलाके तिव्वत के भुतभुतल्हा पहाड़ टपकर छुमरती ख़्यालिंग श्यांगचा फियां दुंखार के राह थोलिंग में आया थोलिंग में मुझे अमरदेव मारछा मिला उसके घर से चुपके निकल आने के विशय में उसने मुझे वहुत लानत दिया मैं उसके सामने वहुत लज्जित हुआ निदान एक घोड़ा नजर देकर कुछ रुपए देने का इकरार करके राजी किया ॥"**

वे थोलिंग हो कर वहां से मल्ला जोहार आना चाहते थे। लेकिन जब वे जानवरों को लेकर थोलिंग मठ पहुंचे तो उन्हें पता ही नहीं था कि वहां जानवरों की बीमारी फैली हुई है और अनेक जानवर मर चुके हैं। कब नैन सिंह द्वारा लाए गए जानवरों में बीमारी फैली इसका अंदाज ही नहीं आया। खरीदकर लाए गए सभी 361 जानवर बीमार हो गए और अंततः 100 जानवर ही बच पाए। थोलिंग में नैन सिंह की अपने बड़े ससुर अमरदेव मारछा से भी मुलाकात हुई। अमरदेव ने उसके माणा से चुपचाप भाग जाने पर उलाहना भी प्रकट किया और नैन सिंह ने बड़े ससुर को एक घोड़ा भेंट किया।

दुर्भाग्य ने पिता के बाद अब पुत्र को अपने घेरे में ले लिया था। कितनी उम्मीदों के साथ नैन सिंह इस यात्रा में गया था। उसे अपनी विपदा से बाहर निकलने की पूरी उम्मीद थी। पर होना इसका उल्टा ही था। समय, श्रम तथा नकदी सभी कुछ बरबाद हुआ। उधार लिए रुपए सिर पड़े। थका-हारा और उदास-निराश वह घर वापस पहुंचा। यह अनेक जोखिमों से भरा प्रयोग नैन सिंह के पक्ष में नहीं गया। भाग्य तथा भगवान दोनों उसे अपने प्रतिपक्ष में लगते थे। कठिन तो उसके जीवन का अब तक का हर साल रहा पर इस कोशिश के बाद उसे हर काम कठिन तथा असंभव लगने लगा।

अब कर्ज ली गई धन राशि का ब्याज चुकाना भी कठिन हो गया। घर परिवार की जरूरतें अलग थी। मां ने जब यह सब जाना तो नैन सिंह को दिलासा देने के स्थान पर वह अपने दोनों बेटों-गजराज और कलियान-को लेकर अलग हो गई। नैन सिंह की पीड़ा इस तरह व्यक्त हुई :

**''ऐसी कम किसमती कि इस वीच व्योपार के भेड़ वकरी जवू मान रोग से सव मर गए सिर्फ करीव एक सौ तक वचे पूंजी साहूकार का विलकुल सिर पड़ा हजार वारह सौ रुपयें की देनदारी में आ गया गुजारा खाने पहिनने का मुशकल से होता विरादरी के लोग कोई आदरपूर्वक पेश नहीं आते जेरवारी इतनी की सूद अदा करना मुश्किल था इस वीच मेरी सौतेली मा ने जाना कि करज की जेरवारी साल साल वढ़ती जाती है अदाय करज की कोई सूरत नहीं गजराजसिंह और कलियान सिंह अपने दो वालकों को समेत हमसे अलग हो गईं घर में जो कुछ अनाज और वरतन थे उनमें से आधा समजांग वगैरह हम तीन भाइयों को दिया।''**

इस तरह एक अभावग्रस्त परिवार के दो चूल्हे हो गए। इससे नैन सिंह की निराशा में और इजाफा हो गया। क्योंकि मां के कारण उमती के लिए तो कम से कम नैन सिंह की अनुपस्थिति में एक सहारा था। एक बार तो उसने यह भी सोचा होगा कि माणा में आराम से ससुराल में रहने में उसे क्या दिक्कत थी? घरजमाई बन कर रहने में कौन सा अपमान हो रहा था? नैन सिंह फिर नए रास्ते खोजने लगा। वह हार मानने को तैयार न था।

इस यात्रा में नैन सिंह को अन्य अनुभवों के साथ-साथ तत्कालीन हिमाचली तथा तिब्बती भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन को देखने-समझने का मौका मिला। प्राकृतिक तथा सामाजिक विविधता से उसका सामना हुआ और अपने इस 'यात्रा विश्वविद्यालय' के अनुभवों से उसने बहुत कुछ सीखा। मुख्य कार्य में असफलता पाने के बावजूद वह कुमाऊं के तिब्बती सीमांत तथा हिमाचल-तिब्बत संबंधी छोटा-मोटा जानकार तो हो ही गया था। इस यात्रा से सीखे गए तमाम पाठ निकट भविष्य में उसके लिए और हिमालयी अंवेषण के लिए बहुत उपयोगी होने वाले थे। लेकिन तब वह स्वयं अपनी गर्दिशों के बीच इस सबका आगामी निहितार्थ नहीं समझ सकता था।

एक प्रश्न यह उठता है कि क्या नैन सिंह का बुशहरी भाषा से इसी यात्रा में संपर्क हुआ था? शायद हां।

## निजात-ए-गर्दिश : अगली कोशिश

सन् 1814-16 के नेपाल युद्ध के बाद कुमाऊं में लगातार विस्तृत सर्वेक्षण हो रहा था। सन् 1857 के संग्राम से पूर्व सर्वेक्षण की यह प्रक्रिया लगातार चल रही थी। विभिन्न प्रशासक, सैन्य अधिकारी तथा स्वयं कुमाऊं के अनेक कमिश्नर इस कार्य में सीधा योगदान दे रहे थे। धीरे-धीरे सर्वेक्षण की यह प्रक्रिया पूरे हिमालय तथा हिमालय पार के क्षेत्रों को अपने घेरे में लेने वाली थी।

सन् 1855 का साल नैन सिंह ने लगभग अनिर्णय में ही गुजार दिया। फरवरी



1856 में नैन सिंह फिर व्यापार से जुड़ने का प्रयास करने लगा। इस हेतु उसके पास न पूंजी थी और न ही कोई और साधन। अपनी गरीबी से लड़ने का उसे कोई और रास्ता सूझता भी न था। उस जमाने में किसी भी शौका व्यक्ति को पशु पालन, खेती तथा व्यापार में ही आगे बढ़ने का रास्ता दिख सकता था। तब आज उपलब्ध नौकरी का रास्ता न था। इस संदर्भ में जब वह नई नई बस रही रामनगर मंडी जा रहा था तो उसने सुना कि अडोल्फ, राबर्ट तथा हरमन स्लागेंटवाइट नामक जर्मनी से आए हुए सर्वे वैज्ञानिक अनेक इलाकों में काम करने के बाद अब लद्दाख और तुर्किस्तान की ओर जा रहे हैं और कुछ लोगों को अपने सहयोगी के रूप में भर्ती कर रहे हैं। उसके मन में पहली बार यह विचार आया कि इस काम से भी वह अपना गुजारा कर सकता है। क्योंकि इसमें उसे न पूंजी की जरूरत होगी और न ही किसी और साधन की। हालांकि अभी उसे पता नहीं था कि यह कार्य किस तरह का है! पर वह मामूली से मामूली काम करने को तैयार था। (यह काम उसके जीवन में एक नया अध्याय खोलने वाला था।)

स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ नैन सिंह के ताऊ देब सिंह (जिन्हें कंपनी सरकार ने पटवारी बनाया था) का लड़का मानी सिंह (जो तब स्वयं पटवारी के रूप में जोहार में कार्य कर रहा था और बाद में मानी कंपासी कहलाया) जाने वाला था। मानी सिंह इससे पहले सन् 1848 में रिचर्ड स्ट्रैची के साथ कैलास मानसरोवर की यात्रा में जा चुका था। कदाचित् इसीलिए इस अभियान के लिए पहला चयन उसी का हुआ था। रामनगर पहुंच कर नैन सिंह ने निश्चय कर लिया कि उसे भी मानी के साथ इस अभियान में चले जाना चाहिए। नैन सिंह के भीतर मौजूद जोखिम उठाने की क्षमता ने उसे यह निर्णय लेने की सामर्थ्य दी होगी। कोई और सुरक्षित रास्ता उसके पास बचा भी नहीं था।

नए सिरे से व्यापार करने की तैयारी को बीच में विराम देकर वह रामनगर से 'दो मंजिलों की एक मंजिल करता हुआ' पूर्वी रामगंगा घाटी में स्थित जोहारियों के अनेक गांवों में एक तेजम पहुंचा और मानी भाई को अपनी स्थिति तथा उसके साथ काम करने की आकांक्षा बताई। पर मानी सिंह उसे अभियान में ले जाने को तैयार नहीं हुआ। शायद मानी के मन में लाटा के कृत्यों के कारण नैन सिंह के प्रति पूर्वाग्रह था। मानी सिंह पर नैन सिंह के अनुनय-विनय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह रुंआसा होकर मानी सिंह के घर से बाहर आया। उसने अपना संकट मानी बुढ़ा, जिसे वह अपनी डायरी में 'बड़ा मानी' संबोधित करता है, तथा अन्य भाइयों के सामने रखा :

**''भाई माणी ने मुझे अपने साथ लेने से इनकार किया वल्के कई लफ्जें सक्त कही मैने जाना कि मेरे नसीहत के लिए कहता है फिर भी वहुत अरज और मिन्नत की लेकिन साथ लेने में कवूल न हुआ यद्यपि वह अपने साथ के लिए दोल्पा पांगती व्रगैरह जो उस्के रिश्ते में नहिं था वड़ी मिन्नत से चिट्ठी लिख लिख कर वुला रहा था यह हाल और अपने नसीव की खूवी को सोचकर मैं रो गया**

**उसी वक्त उठकर ताऊ फतेसिंह का लड़का वड़ा माणी जो हमारी कौम में सर गिरोह था अकसर मेरी पर मिहर्वानी रखता था उनके घर में जाकर रोरोकर सव हाल जो कुछ भाई माणी पटवारी ने कहा था सुनाया मुझे रोता हुआ देख कर भाई वड़ा माणी ने उसी वक्त एक आदमी के द्वारा माणी पटवारी को वुलाकर कह दिया कि नैन सिंह को साथ ले जावो यह तेरा सव तरह फर्मावरदार रहेगा क्योंकि हकीकत में अपना अपना ही होता विगाना विगाना ही होता गरज कि वहुत ही समझाने से माणी पटवारी ने मुझे साथ लेना कवूल किया''**

इस तरह अंततः भाइयों और विशेष रूप से मानी बुढ़ा के प्रभाव तथा दबाव के बाद मानी सिंह ने नैन सिंह को साथ ले जाना स्वीकार किया। लेकिन नैन सिंह के प्रति वह लगातार निर्मम बना रहा।

सन् 1856 की फरवरी के अंतिम दिन वे घर से चले। मानी सिंह के साथ गुलाब सिंह नेगी, लाल सिंह कारकी तथा सुरुवा कोरंगा आदि नौकर थे। गुलाब सिंह नेगी तो सिर्फ दोनाली बंदूक कंधे में लेकर चलता था और कुली लोग दस सेर बोझ के साथ चलते थे। सन् 1851 में ही जोहार परगने का पटवारी बन चुका मानी देबू बुढ़ा का बड़ा बेटा भी था और स्वाभाविक था कि वह यात्राओं में घोड़े में आता-जाता था।-दूसरी ओर नैन सिंह का बोझ किसी कुली से कम न था। दरअसल मानी सिंह सिर्फ मानी बुढ़ा के कहने पर नैन सिंह को साथ लाया था। मानी सिंह को तब यह अंदाज नहीं हो सकता था कि जिस नैन सिंह को वह अभी अपने साथ मामूली 'कुली' बना कर ले जाने के लिए तैयार नहीं है, भविष्य में वह उससे कहीं अधिक योग्य 'अन्वेषक' सिद्ध होने वाला है।

उन्हें पहले देहरादून और फिर शिमला पहुंचना था, जहां स्लागेंटवाइट भाई उनका इंतजार कर रहे थे। भविष्य में सर्वाधिक चर्चित अंवेषक बनने वाला नैन सिंह रावत इस समय एक लद्दू घोड़े की तरह मानी सिंह के पीछे-पीछे चला जा रहा था। उसका बोझ किसी भी कुली के मुकाबले ज्यादा था। पड़ावों में भाई मानी की मालिश करना, उसके कपड़े धोना, बिछौना बिछाना आदि नैन सिंह के सामान्य कर्तव्य थे। एक बार तो जब वे भवाली के पास से गुजर रहे थे उसे भाई की ओर से व्रत भी धारण करना पड़ा था। यानी भूखा नैन सिंह रहा और व्रत मानी सिंह का माना गया। फिर वे नैनीताल होकर हल्द्वानी आए। नैन सिंह के ही शब्दों में :

**''मैं पीठ में वोझ लेकर साथ चलता तो भी मेरा काम कि डेरे में पहुच कर भाई का पैर मलना अस्नान वाद धोती धोना और विस्तरा विछा देना वगैरह टहल नित्य अपनें पर मैंने निश्चय ठहरा लिया था क्योंकि मानी मुझसे उमर में और रुतवे में भी वड़ा था उसका खिदमत करने में मुझे कुछ लाज नहीं थी वलके अपनें तई धन्य जानकर सेवा टहल किया करता पर तमाशा यह था कि**



**नौकरान भाई के खाली चलते रास्ते में वोझ का सवव मै थककर पीछे रह जाता परन्तु भाई साहव अपने नौकरों से कभी नहि कहता कि नैनसिंह थक गया उस्का वोझ तुम वांट लो वल्के इसके वदले नौकरान को लड़छड़ाते हुएं खाली चलना खुशामद पसन्दी की वार्ते सुनना अपने को सवारी में चलना चचेरे भाई पर वोझ होना उस्की खुद पसन्दगी और शानशौकत की जेआयश थी गरज कितने ही मंजिल तै करते हुएं एक रोज सुवह के रोटी खाने कीं वक्त नैनीताल के नजदीक भुवाली नाम मुकाम पर पहुँचे उस रोज शिव चतुर्दशी का दिन था भाई ने फर्माया कि मेरी सवारी का घोड़ा तो घर का वापीश गया आज मेरा व्रत का दिन है मैं चल नहिं सकूंगा मेरे वदले कोई व्रत ले तो मैं सवेरे का खाना खालू मैंने कहा कि आपके वदले व्रत मैं करुँगा''**

इस पर भी भाई ठीक व्यवहार नहीं करता था। किसी तरह अलमोड़ा, हल्द्वानी, हरद्वार, देहरादून, नहान होकर वे शिमला में स्लागेंटवाइट भाइयों के पास पहुंचे।

आज अगर इस दूरी का अनुमान लगाया जाए तो किसी को वास्तविकता पर विश्वास न होगा। तेजम से शिमला की यह दूरी कुल लगभग 450 मील की थी और इसमें उन्हें लगभग 40 दिन लगे थे। यह नैन सिंह की कुमाऊं के दक्षिणी हिस्से की पहली यात्रा थी। एक प्रकार से यह उसकी अंतर्वर्ती हिमालय में हुई पहली माणा यात्रा के समानांतर थी और माणा से लौट कर कुछ समय बाद उसने जानवरों की खरीद हेतु एक और हिमालयी यात्रा की थी। हल्द्वानी में ही उसने पहली बार कुमाऊं के सर्वाधिक चर्चित तथा तत्कालीन कमिश्नर हेनरी रैमजे को देखा था। रैमजे की आवाज सुनने का भी उसे मौका मिला था। रैमजे ने उन्हें 100 रुपया राह खर्च हेतु दिया था। प्रतिमाह 60 रु. पर मानी सिंह और 35 रु. पर नैन सिंह तथा दोलपा पांगती की नियुक्ति की गई। यह राशि नैन सिंह को गैर मामूली लगी थी। दोलपा पांगती दयालू पांगती का बेटा तथा स्वतंत्रता सेनानी जगत सिंह पांगती का पिता था।

## स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ

शिमला से स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ यात्रा आरंभ हुई। हर्मन के साथ मानी किन्नौर, स्पीती तथा सोमोरिरी झील होकर लद्दाख को गया। अडोल्फ तथा राबर्ट के साथ नैन सिंह तथा दोलपा कुलू होकर लाहौल को गए। लाहौल से अडोल्फ जंसकार होकर बल्तिस्तान के स्कर्दू स्थान को और नैन सिंह राबर्ट के साथ बाराल्हाचा पहाड़ के रास्ते श्योक होकर लेह पहुंचा। बाराल्हाचा से आगे नैन सिंह पहली बार जा रहा था। शायद वह तांगसे होकर स्योक गया होगा। हर्मन तथा राबर्ट तो मानी, मुहम्मद अमीन तथा मकसूद आदि के साथ तुर्किस्तान के सीमांत पर स्थित खोतान तक होकर अक्टूबर में कश्मीर वापस आए थे। यहां से कारगिल होकर कश्मीर और फिर पश्चिमी पंजाब को।

अडोल्फ भी स्कर्दू से कश्मीर आया। रावलपिंडी में अडोल्फ, हरमन और राबर्ट ने तय किया और बताया कि हरमन और राबर्ट तुर्की के मार्ग इग्लैंड जाना चाहते थे और अडोल्फ बुखारा-रूस होकर के यूरोप को। मानी सिंह ने अडोल्फ तथा राबर्ट के साथ कराकोरम दर्रा तथा कुलनुन पर्वत पार किए और खोतान की राजधानी ऐल्ची तक गया।

नैन सिंह से तीनों सर्वेयर वैज्ञानिक प्रसन्न थे क्योंकि उसने कंपास और बैरोमीटर से परीक्षण का कार्य तुरंत सीखा और फिर इसे सफलता पूर्वक किया। साथ ही तीनों साहबों को तिब्बती भाषा सिखाई। वे तीनों स्लागेंटवाइट भाई न सिर्फ नैन सिंह की लगन से प्रसन्न थे बल्कि उसकी चीजों को जल्दी समझने तथा विभिन्न कामों को जल्दी सीखने की क्षमता के भी कायल थे। नैन सिंह की प्रारंभिक दो यात्राओं के अनुभव निश्चय ही इस समय काम आए थे।

तीनों भाई—विशेष रूप से हरमन और राबर्ट—नैन सिंह को तीन साल के लिए लंदन ले जाना चाहते थे, जहां उन्हें अपने इस सर्वेक्षण कार्य को अंतिम रिपोर्ट का रूप देना था। एक रोज यह प्रस्ताव उसके सामने आ ही गया। नैन सिंह से कहा गया कि उसे लंदन में 100 रु. माहवार मिलेगा और 1000 रु. अग्रिम रूप से घर के गुजारे के लिए दिए जाएंगे। इस राशि को सुनकर नैन सिंह को विश्वास ही नहीं हुआ कि उसे यह धनराशि कभी मिल सकती है। उस समय यह राशि कम नहीं कही जा सकती थी। पर नैन सिंह ने एकदम लंदन जाने के लिए हामी नहीं भरी। सात समंदर पार जाने का तब सामाजिक भय भी था। अल्मोड़ा शहर में तो सन् 1900 के बाद तक भी समंदर पार करने वाले को जातिच्युत होने का भय रहता था। इस मामले में राष्ट्रवादी कुमाऊंनी कवि गौरीदत्त पांडे गौर्दा के भाई भोला दत्त पांडे को अध्ययन के लिए जापान जाने के कारण जाति से बाहर निकाल दिया गया था। फिर गोबर, गोमूत्र और गंगाजल से नहाने के बाद भी उन्हें जाति में नहीं लिया गया था।

नैन सिंह के लिए सबसे बड़ी मनोवैज्ञानिक मुश्किल यह थी कि कुछ ही समय पहले उसकी लंबी विपत्ति का युग समाप्त हुआ था, अतः इस प्रस्ताव से वह असमंजस में था। यदि हां कहता है तो क्या परिवार तथा बिरादरी के सदस्य स्वीकृति देंगे? और यदि नहीं कहता है तो क्या साहब लोग नाराज तो नहीं हो जाएंगे? जब एक साहब ने कहा कि तुम्हें आना ही होगा तो वह कुछ डरा भी। कहीं साहब नाराज न हो जाए इस भाव से उसने लंदन जाने के लिए हामी भरी और सरलता से यह निर्णय मानी को बताया। यह भी सोचा कि शायद मानी उसकी इस उपलब्धि से प्रसन्न होगा।

मानी को न साहबों का निर्णय पसंद आया और नहीं नैन सिंह का। उसने जल्दी ही अपना गुस्सा भी प्रकट कर दिया। यह लगता है कि एक तो मानी को नैन सिंह के इस तरह साहबों की नजरों में आ जाने से चिढ़ थी, दूसरे उसके स्थान पर नैन सिंह को लंदन साथ चलने का प्रस्ताव दिया जाना जैसे उसका स्वयं का अपमान था। मानी ने



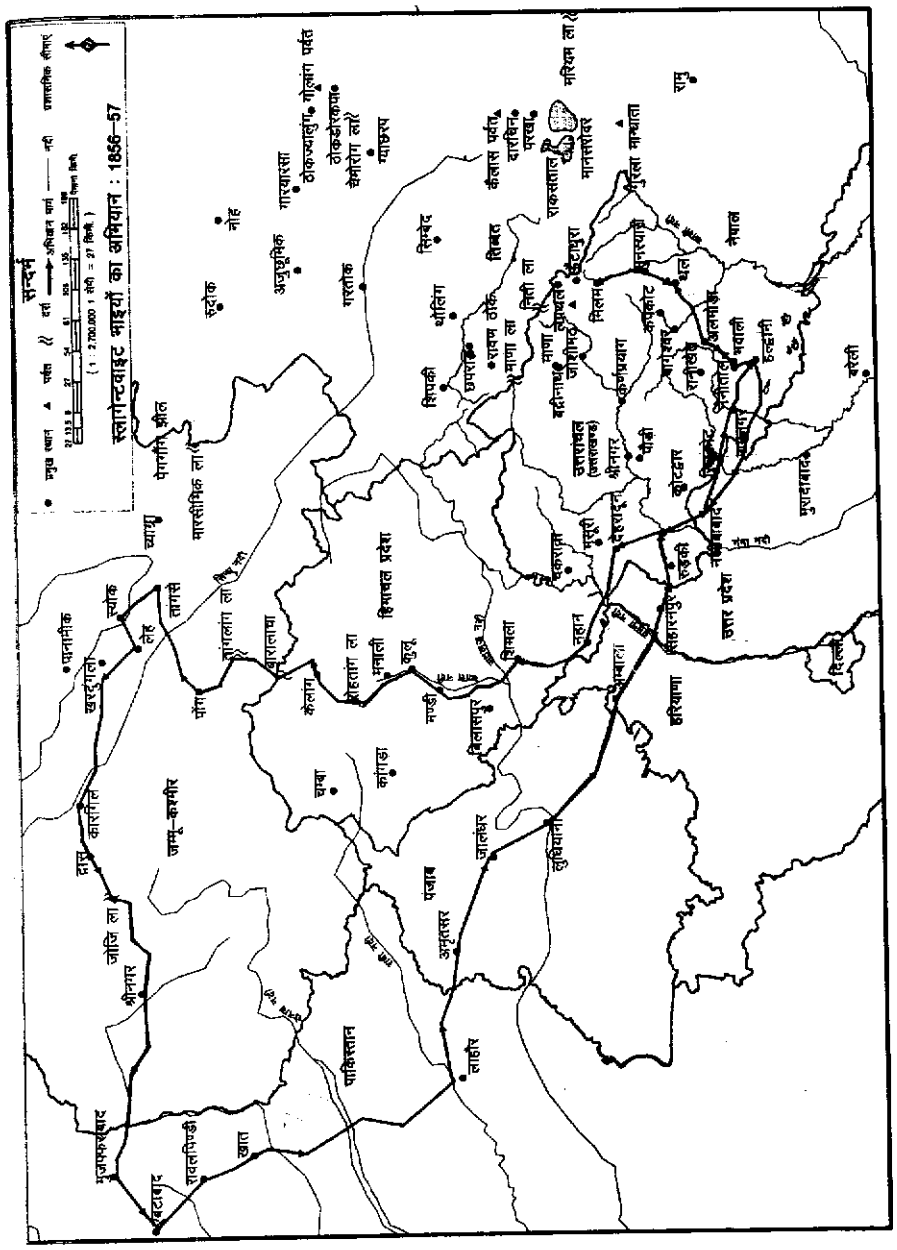


स्लागेंटवाइट भाइयों का यात्रा मार्ग जिससे नैनसिंह भी गया था

नैन सिंह से कहा कि वह इंग्लैंड जाने के लिए तुरंत मना कर दे। मानी ने गुस्से में यहां तक कह दिया कि :

**"अगर तू इंगलेन्ड को जाता है तो तू हमारे तर्फ से अभी मर गया तेरे लिए छाक अभी छोड़ते हैं गरज कई वार्ते दिखला कर जाने से मना किया तव मैंने पूछा कि साहव तो मानता नहिं कहा कि आज रात ही को खात में कूच कर जाओ"**

जब नैन सिंह ने यह कहा कि साहब को उसने मना किया पर साहब इसके लिए तैयार नहीं है तो मानी ने कई बातें बतला कर उसे इंग्लैंड जाने से मना करने को कह दिया। मानी के गुस्से ने नैन सिंह के सामने एक ही विकल्प बाकी रखा कि वह चुपचाप यहां से भाग जाए। जब नैन सिंह ने यह पूछा कि भाग के कहां जाऊं तो मानी ने नैन सिंह से उसी रात वहां से भागने और अंतिम पड़ावों में खात नामक स्थान पर उसका इंतजार करने को कहा। कुछ ही समय बाद जोहार के एक गीत का विषय बनने वाला मानी सिंह दरअसल नैन सिंह को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार देना ही नहीं चाहता था। नैन सिंह द्वारा प्रदर्शित प्रतिभा से भी वह खिन्न लगता था।

जो मानी सिंह ने कहा भोले नैन सिंह ने वही किया। पूरे दो महीने तक वह खात नामक स्थान पर बेकार बैठा रहा। वह अपने साहबों से अलविदा भी नहीं कह सका। हां उसने अवश्य ही स्लागेंटवाइट भाइयों के लिए क्षमा मांगते हुए एक लंबा पत्र रख छोड़ा था। नैन सिंह द्वारा स्वतंत्र निर्णय ले सकने की क्षमता पाने में अभी कुछ सालों की देरी थी। स्लागेंटवाइट भाई लगातार उसकी प्रशंसा करते रहे। उसकी प्रतिभा को पहचान सकने के बावजूद वे उसके भागने का असली कारण कभी नहीं जान सके। मानी सिंह स्वयं अडोल्फ को छोड़ने पेशावर तक गया और नैन सिंह खात नामक स्थान पर दो माह तक मानी सिंह का इंतजार करता रहा। कुछ कमाना तो दूर रहा जो कुछ गांठ में था वह भी घटता रहा। फरवरी 1857 में मानी उसके पास लौटा।

तब लाहौर, अमृतसर, जालंधर, लुधियाना, अंबाला, सहारनपुर, रुड़की, हरद्वार, नजीबाबाद, सिरकोट, हल्द्वानी तथा अल्मोड़ा होकर वे घर पहुंचे। सिरकोट में अल्मोड़ा के जैराम जोशी दरोगा का लड़का शिबू भी उसी धर्मशाला में टिका था, जहां ये सभी टिके थे। इनके पास कमाई के रुपए जान कर उसने इन सबको लड्डू के साथ संखिया मिलाकर खिला दिया। सभी जहर के नशे से बेहोश हो गए। किसी को उल्टी और किसी को दस्त हुए लेकिन मानी ने कपूर की बदबू के कारण मिठाई नहीं खाई और इस कारण उन सबकी कमाई की राशि बची रही। जो दो-एक सौ रुपए नैन सिंह कमाकर लाया था उसे कर्जदाता बिरादरों को ब्याज के रूप में दे दिया गया।

हिमालय तथा इसके पाद प्रदेश के विस्तृत इलाके को देखने का मौका नैन सिंह को मिला। लगभग एक साल तक तरह तरह के अनुभवों की संपन्नता इस यात्रा से



जरूर मिली पर नैन सिंह की पारिवारिक विपन्नता इससे कम नहीं हो सकी। इस यात्रा में नैन सिंह स्वतंत्र निर्णय लेने का साहस नहीं कर सका। मानी के उपकार का उस पर इतना बड़ा दबाव था कि वह बीच यात्रा में ही हरमन और राबर्ट को छोड़ कर भाग आया। इस तरह नैन सिंह की तीसरी यात्रा भी उसके अनुभवों की दुनिया को बढ़ाने वाली तो रही पर उसमें निर्णय लेने की क्षमता विकसित नहीं कर सकी। बीच में भाग आने से वह सर्वेक्षण का काम भी उतना नहीं सीख सका जितना कि पूरी यात्रा में रहने पर सीख सकता था।

इस समय तीनों भाई—समजांग, नैन सिंह तथा मांगा—साथ रहते थे। इस बीच नैन सिंह के जन्म के तीन साल बाद जन्मी उनकी एक मात्र बहन का विवाह हो चुका था। हालांकि विवाह का समय या साल किसी स्रोत से पता नहीं चलता। अपनी विपत्ति से मुक्त होने का तीनों को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। समजांग कुछ संकोची था तो मांगा कुछ अस्थिर चित्त का था। दोनों परिवार के लिए योगदान देना तो दूर रहा कुछ सोच भी नहीं पाते थे। एक दिन मांगा के मन में लटक आई। वह नेपाल की ओर निकल गया और जोगी बन गया। उसकी फिक्र होनी स्वाभाविक थी। कुछ समय बाद मांगा वापस भी आ गया। उमती तथा अपने साथ नैन सिंह को लगातार भाइयों की भी चिंता लगी रहती थी। नैन सिंह कुछ नया करने की उधेड़ बुन में था पर उसे कुछ सूझता न था।

## नैन सिंह का पंडित बनना

सन् 1857 भारतीय इतिहास का एक असाधारण साल था। उत्तरी भारत में जो हुआ उसकी चर्चा छोड़ भी दें तो स्वयं कुमाऊं में तब जबर्दस्त हलचल थी। नैनीताल, अल्मोड़ा तथा श्रीनगर में कतिपय लोगों को फांसी दी गई थी तो अल्मोड़ा छावनी में बगावत हो गई थी। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण था काली कुमाऊं के कुछ साहसी व्यक्तियों द्वारा विद्रोह में प्रत्यक्ष शामिल होना। विद्रोहियों के और विशेष रूप से नाना साहब के कुमाऊं आने की खबर ने भी हलचल बढ़ा दी थी। अभी कंपनी को उत्तराखंड में आए 40 साल पूरे हुए थे और इस तरह की स्थिति अप्रत्याशित ही कही जा सकती थी।

जब यह संग्राम दबाया जा चुका था, उत्तराखंड के भाबर-तराई क्षेत्र में लड़ रही बगावती सेनाएं असफल हो गई थीं और कुमाऊं कमिश्नर हेनरी रैमजे के तीस साल तक चलने वाले एकछत्र शासन की बुनियाद रखी जा रही थी, इस सबसे बेखबर नैन सिंह एक बार फिर अनिर्णय के चौराहे पर खड़ा था। पशुपालन, व्यापार और नौकरी, किसी भी माध्यम से वह अपनी गरीबी और गर्दिश को पराजित नहीं कर पा रहा था। शीघ्र ही उसके जीवन का नया अध्याय प्रारंभ होने वाला था। लेकिन सदा की तरह ही यह शुरूआत भी बिल्कुल अप्रत्याशित थी।

सन् 1858 की गर्मियों में नैन सिंह अपने छोटे भाई मांगा के साथ बागेश्वर जा रहा

था। उनका मार्ग नाचनी, सामा तथा कपकोट होकर था। कपकोट में उसकी कर्नल हेनरी स्ट्रैची से मुलाकात हुई। स्वयं तिब्बत की दो महत्वपूर्ण यात्राएं कर चुका यह सैनिक अधिकारी नैन सिंह की स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ की गई पिछली सर्वेक्षण यात्रा के बारे में जानता था। बात ही बात में नैन सिंह इस नए साहब का नौकर होकर यात्रा में शामिल हो गया।

स्ट्रैची के साथ वह पहले मुनस्यारी, फिर नामिक ग्लेशियर की राह पिंडारी ग्लेशियर और कत्यूर घाटी होकर अलमोड़े पहुंचा। एक दशक पहले हेनरी का भाई रिचर्ड भी इसी इलाके में यात्रा में आया था और उसकी महत्वपूर्ण रपट तब छपी थी। इसी तरह उसने कुछ हिमालयी ग्लेशियरों तथा हिमरेखा पर महत्वपूर्ण लेख लिखे थे, जो क्रमशः रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के पत्र के जुलाई-दिसंबर 1847 के तथा एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल के अप्रैल 1849 के अंक में प्रकाशित हुए थे।

अल्मोड़ा में कर्नल हेनरी स्ट्रैची ने नैन सिंह को अल्मोड़ा के डिप्टी कमिश्नर कालविन तथा वाइवट, जो नव स्थापित शिक्षा विभाग में इंसपेक्टर था, से मिलाया। कंपनी शासन के समाप्त होने के बाद पहली बार कुमाऊं में तहसील के स्तर तक प्राइमरी स्कूल खुल रहे थे। इनके लिए अध्यापकों की जरूरत थी। परिणामस्वरूप नैन सिंह को मुदर्रिसी मिली। वह विधिवत शिक्षित न था पर तब ऐसा व्यक्ति मिलना संभव नहीं था।

मिलम के नव स्थापित तहसील स्कूल में मई 1859 से उसने पढ़ाना शुरू किया। सामाजिक प्रतिष्ठा पाना उसकी अगली समस्या थी। मिलम के निवासी तथा उसके बिरादर उसके पिता के 'सामाजिक अपराध' को अभी तक नहीं भूले थे। नैन सिंह की कर्मठता तथा समर्पण के बावजूद कई बिरादरों तथा गांव वालों ने अपने बच्चों को सिर्फ इसलिए जोहार के इस पहले स्कूल में नहीं भेजा कि यहां नैन सिंह अध्यापक बनाया गया था। यही नहीं उन्होंने किसी अन्य नए अध्यापक की नियुक्ति की मांग तक कर डाली।

नैन सिंह को कोई न कोई विपत्ति सदैव घेर लेती थी। उसे भय बना रहा कि यह नौकरी भी चली जाएगी। सौभाग्य से जिले का डिप्टी कमिश्नर उसका पक्षधर था। इस तरह जिला प्रशासन ने मिलम वालों की बात नहीं सुनी। धीरे-धीरे नैन सिंह ने स्थानीय समाज से यानी अपने ही बिरादरों से एक मेहनती अध्यापक के रूप में स्थान तथा सम्मान अर्जित किया। सन् 1861 तक वह इसी स्कूल में पढ़ाता रहा। इस तरह नैन सिंह 'पंडित' बना और जोहार की पहली पीढ़ी को शिक्षित करने के श्रेय का भागीदार भी।

इस अवधि में डिप्टी कमिश्नर कालविन और नए स्कूल इंसपेक्टर कर्नल एडमंड स्मिथ ने कुछेक बार नैन सिंह के स्कूल का निरीक्षण किया था और लगन तथा मेहनत से काम करने के कारण उसे इनाम भी दिया था। मेजर एडमंड स्मिथ, जो पहले सैनिक अधिकारी था और सन् 1861 में शिक्षा विभाग का इंसपेक्टर बनने वाला था, भी अपनी तरह का दुस्साहसी और खोजी था।



सन् 1861 में एडमंड स्मिथ कुमाऊं में नवगठित इंसपेक्टर आव द पब्लिक इंसट्रक्शन डिपार्टमैंट के पद पर नियुक्त हुआ। यह नव स्थापित शिक्षा विभाग से संबंधित पद था। सन् 1864 में स्मिथ, ड्रमंड, थॉमस वेबर, हौगसन तथा कुछ अन्य पश्चिमी तिब्बत में करनाली घाटी से डाकियो दर्रा पार कर सांगपो (ब्रह्मपुत्र) के एक स्रोत तक हो आए थे और उनमें से कुछ ने किसी एक धार से मानसरोवर के दर्शन भी किए थे। डोनाल्ड मैकंटायर तथा वेबर की किताबों में इन यात्राओं की कुछ चर्चा जरूर हुई। स्मिथ ने न कभी कुछ लिखा और न कभी अपनी यात्राओं की चर्चा ही की। हां, सन् 1882 में नैन सिंह के हैजे से मरने की झूठी खबर मिलने पर उसने अवश्य एक आलेख रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की प्रोसीडिंग्स के लिए लिखा था, जिसमें उसने बताया था कि किस तरह उसने नैन सिंह तथा मानी सिंह के नाम कैप्टन मांटगोमरी को सुझाए थे।

जब दारमा पट्टी यानी वर्तमान धारचूला तहसील क्षेत्र में पहला स्कूल खुला तो एक योग्य स्थानीय अध्यापक के अभाव में नैन सिंह को ही जनवरी 1862 में धारचूला जाकर स्कूल का शुभारंभ करना पड़ा।

> **"इस जमाने में सारा जिलअ़ कुमाऊं व गढ़वाल में जनाव इन्स्पेक्टर स्मिथ साहव वहादर ने हरयेक दिहात और पर्गनों में वहुत से मदर्से वैठा लिये थे लोग वड़ी राव़चाव़ से अपने लड़कों को पढ़ाया करते थे लेकिन पर्गने दार्मा व्यास के लोगों को लिखना पढ़ना तो दरकिनार उनका वोली समजना लोगों को मुशकल होता यहां तक कि हरयेक मुकद्मे में की फैसला कर्नी मुशकल होती इस कारण सर्कार को पर्गने दार्मा में मदर्सा रखना पड़ा साहव इन्स्पेक्टर ने मुझे कहा कि वगैर तुम्हारे गए किसी मुदर्रिस से दार्मा के मदर्से का इन्तिजाम न हो सकेगा गरज साहव ने मेरा फर्मान दार्मा कि कर दिया सन् 1862 इस्वी के जनव़री महीने में मैं दार्मा गया मुकाम धारचूला में पाठशाला का छप्पर वनव़ाकर लड़कों को पढ़ाना शुरू किया लेकिन पहिले पहल दो तीन महीने तक दरमियों के लड़कों को वर्णमाला के हरुफों का तल़फुज सिखाना निहायत मुशकली पड़ी चुनार्चे ग घ को घ घ और ज झ को झ झ द ध को ध ध और य भ को भ भ उच्चार्ण करते वहुतेरा मगज मार कर मुशकिलों वर्णमाला के हरुफों का तलफुज सिखा कर पढ़ाना शुरु किया"**

इस समय उसके साथ उसकी छः माह की बेटी गोबिंदी तथा पत्नी उमती के अलावा देबू ताऊ का सबसे छोटा लड़का कृष्णा (भविष्य का पंडित किशन सिंह) भी था।

इस नौकरी से उसे 15 रुपए माहवार मिलता था और प्रति छात्र दो आने के हिसाब से 10-12 रुपए फीस मिलती थी। पर इस धन राशि से उसके पुराने कर्ज का ब्याज भी चुकाया जाना संभव नहीं था। यदि इस राशि की तुलना स्लागेंटवाइट भाइयों

के साथ काम करने के दौर में मिलने वाली राशि से की जाए तो यह दो तिहाई थी। इससे वास्तव में उसका गुजारा नहीं हो पाता था।

नैन सिंह ने अपने इस आर्थिक संकट के संबंध में कर्नल एडमंड स्मिथ से निवेदन किया। स्मिथ ने बताया कि शिक्षा विभाग में इससे बड़ा न पद है और न इससे अधिक वेतन। पर उसने नैन सिंह की जिंदगी का नया द्वार यह सलाह देकर खोल दिया कि यदि वह चाहे तो देहरादून के ग्रेट ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे कार्यालय में नौकरी कर सकता है। जहां उसे फिलहाल 40 रुपए माहवार तक वेतन मिलेगा और प्रशिक्षण के बाद हिमालय पार के 'तिब्बत वगैरह गैर बादशाही मुल्कों' में अंवेषण के लिए जाना पड़ेगा। नैन सिंह ने इस नई राह से अनजाने भविष्य की ओर जाने का निर्णय लिया। यह निर्णय कम कठिन नहीं रहा होगा लेकिन अपने कर्ज के बोझ से मुक्त होने या उसे कम करने का कोई और उपाय उसके सामने था भी नहीं। निश्चय ही तब उसे उस आगामी इतिहास का अंदाजा नहीं था, जो वह अगले 10-15 सालों में बनाने वाला था।

अप्रत्याशित घटनाओं का होना नैन सिंह के कठिन जीवन की विशेषता रही थी। कभी कभी ये अप्रत्याशित घटनाएं दुखांत भी होती थी पर इस बार पहली बार ये घटनाएं सुखांत की ओर जाने वाली थी। नैन सिंह के सामने कोई और विकल्प भी नहीं थे कि वह उनमें से चयन करता।

जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है कि ईस्ट इंडिया कंपनी की नई सर्वेक्षण नीति के अंतर्गत कैप्टन मांटगोमरी और कर्नल जेम्स वाकर ने तय किया था कि तिब्बत तथा मध्य एशिया के क्षेत्रों के सर्वे के लिए भारतीय सर्वेयरों/अंवेषकों को प्रशिक्षण दिया जाए। इस शुरूआत के पीछे कूटनीतिक लाभ के साथ-साथ व्यापारिक, सामरिक और भूगर्भीय जानकारी पाने की आकांक्षा थी। इन क्षेत्रों में फिरंगियों के प्रवेश पर कठोर प्रतिबंध था। यह कार्य तिब्बती भाषा तथा व्यवहार के अनुभवी और तिब्बती चेहरों से साम्य रखने के कारण भोटांतिक या भारत तिब्बत सीमांत के लोग, जिन्हें 'एशियाटिक्स' कहा गया था, अधिक कुशलता से कर सकते थे। मांटगोमरी यह भी चाहता था कि मध्य एशिया में अंवेषण के लिए उत्तर-पश्चिमी प्रांत के मुस्लिमों में से बेहतरीन रंगरूट/सर्वेयर छांटे जाने चाहिए।

दिसंबर 1862 में सर्वे विभाग से पत्र पाकर 12 जनवरी 1863 को नैन सिंह बागेश्वर में इंसपेक्टर स्मिथ के पास आया। उत्तरायणी मेले के मौके पर स्मिथ सरयू तथा गोमती नदी के संगम पर स्थित बागेश्वर कस्बे में आया था। इस समय मानी सिंह तथा नैन सिंह को 100-100 रुपए सर्वे विभाग की ओर से दिए गए थे तथा यह बताया गया था कि मानी को प्रतिमाह 50 रुपए तथा नैन सिंह को 40 रुपए दिए जाएंगे। एक और लंबी यात्रा करके फरवरी 1863 में नैन सिंह और मानी सिंह देहरादून में सर्वे मुख्यालय में पहुंचे।



कर्नल वाकर दौरे में थे तो उन्हें कप्तान हर्सल के पास प्रशिक्षण में लगाया गया। उनके साथ कलियान सिंह भी था। हर्सल ने उन्हें कंपास का काम सिखाने के लिए जॉनसन के सुपुर्द किया। फिर उन्हें रूट सर्वे, थाडूलेट तथा सैक्सटैंट ग्रहों का अल्टीटयूड लेकर जमीन का अक्षांश जानना तथा बैरोमीटर और थर्मामीटर से जमीन की ऊंचाई तथा निचाई जानना सिखाया। इसी बीच जब वाकर इंग्लैंड को गया तो प्रशिक्षण का कार्य मांटगोमरी को दिया गया :

**''उस वक्त कर्नेल वाकर साहब वहादर सुप्रेनटेनडन्ट जी टी सर्वे आफ इन्डिया का दौरे में था उनके जगह पर काप्तान हर्सल साहव काम देते थे उनही के पाश हाजिर हुए जनाव हर्सल साहव वहादर ने कम्पाश का काम सिखाने के लिए मुझे और माणी को जनाव जहानसेन साहव वहादर सिपुर्द किया अलगरज कि जहानसेन साहव वहादर ने मुझे और माणी को रूट सर्वे करना और थाडूलेट और सिक्सटेन्ट में आल्टिट्यूड ग्रहों का लेकर लाटीट्यूड अर्थात अक्षांश जमीन का जानना और वारोमेटर और थर्मामेटर यन्त्र से भूमि की उचाई नीचाई जानना और पश्जमेटिक कम्पाश और तूरीवनल अर्थात सिक्सटेन्ट यंत्र से भूमि की दूरी दरियाफत कर्ना जो कुछ कि यक्सपलोरर लोगों को सीखना चाहिए इसी सन 1863 इस्वी में सिखाया''**

मानी तथा नैन सिंह को देहरादून में विधिवत् प्रशिक्षण दिया गया। कंपास, बैरोमीटर तथा मार्ग सर्वे के सभी उपकरणों का प्रयोग करना सिखाया गया। अनेक बातें नैन सिंह पिछली यात्रा में ही सीख चुका था। अतः नए पाठ सीखने में वह सबसे प्रखर प्रमाणित हुआ। मांटगोमरी ने बाद में स्वयं लिखा था कि ये प्रशिक्षार्थी होशियार पाए गए थे और इन्होंने कंपास तथा सेक्सटैंट आदि मुख्य उपकरणों का प्रयोग करना जल्दी ही सीख लिया। कुछ ही समय बाद वे तारों की पहचान भी बड़ी सरलता से करने लगे। इस तरह सर्वेक्षण के बुनियादी सिद्धांतों तथा उनके कार्यान्वयन से वे अच्छी तरह परिचित हो गए। अब वे विधिवत तिब्बत तथा हिमालय पार के अन्य क्षेत्रों में जाने को पूरी तरह तैयार थे।

# 4

# पहली बार ल्हासा

## देहरादून से काठमांडू से ल्हासा से कैलास

एक साल तक मानी सिंह तथा नैन सिंह आदि का लगातार गहन प्रशिक्षण चलता रहा। इसके बाद मार्च 1864 में मांटगोमरी ने नैन सिंह और मानी सिंह को तिब्बत जाने तथा मिलम से मानसरोवर होकर ल्हासा तक का नक्शा बनाने का आदेश दिया। यह नैन सिंह का अंवेषण की अपने ही द्वारा निर्मित होने वाली दुनिया में विधिवत प्रवेश था। इस समय नैन सिंह मानी बुढ़ा की सिफारिश तथा मानी सिंह 'कंपासी' की कृपा से किसी अभियान में जा रहा व्यक्ति न था बल्कि अबकी बार यह निमंत्रण उसने अपनी प्रतिभा तथा लगन से अर्जित किया था। यह नैन सिंह के एक स्वतंत्र प्रतिभा में रूपांतरण की शुरूआत थी तथा यह एक प्राथमिक शिक्षक का सर्वे विभाग में सर्वेक्षक-प्रशिक्षक बनना भी था। अब पहली बार नैन सिंह के जीवन में कुछ सुखद होने जा रहा था। हालांकि कष्ट इस कार्य में भी कम नहीं थे।

### दूसरी अंवेषण यात्रा

तिब्बत की आगामी यात्रा दरअसल नैन सिंह की दूसरी अंवेषण-यात्रा थी। पहली अंवेषण यात्रा स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ हो चुकी थी। यात्रा के रूप में इसे चौथी कहा जा सकता था। लेकिन निश्चय ही इस बार नैन सिंह की स्वतंत्र हैसियत थी। कुमाऊं से मानसरोवर होकर ल्हासा जाने के लिए वे दोनों पहले अपने इलाके जोहार आए। पर इस मार्ग से इस समय तिब्बत जाना संभव नहीं हो सका। अतः नेपाल होकर तिब्बत जाने का प्रयास करने का निश्चय हुआ। इस तरह एक साल और निकल गया। वे फिर वापस देहरादून चले आए और प्रशिक्षण कार्य जारी रहा।

इस समय इनके पास दो बड़े सेक्सटैंट, दो बाक्स सेक्सटैंट, प्रिज्मैटिक तथा पाकेट कंपास, थर्मामीटर, पाकेट क्रोमोमीटर, एक घड़ी तथा अन्य सामग्री थी। बाद में दो में से एक ही बड़ा सेक्सटैंट ल्हासा को ले जाया गया। जनवरी 1865 के पहले सप्ताह में दोनों सर्वेयरों ने देहरादून से अपना अभियान शुरू किया। कुछ दिन बाद 12 जनवरी 1865



को मुरादाबाद से वे विधिवत अंकन लेने लगे। रुहेलखंड के बरेली, शाहजहांपुर तथा अवध के सीतापुर तथा नानपारा आदि से होकर उन्होंने नेपालगंज से नेपाल में प्रवेश किया। यहां से वे भगवानपुर, पाटन, रुवानी तथा हैटोना आदि स्थानों के अलावा चीसापानी से होकर 13 मार्च 1865 को नेपाल की राजधानी काठमांडू पहुंचे। नेपालगंज से काठमांडू तक यह दल कर्नल सिद्धमान सिंह नामक सैनिक अधिकारी के कारवां के साथ चला। नैन सिंह ने सिद्धमान सिंह को प्रभावशाली जानकर भगवानपुर में ही उसे एक मुश्कनाफा नजराने में पेश कर उसे मित्र बना लिया।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि तब न सिर्फ तिब्बत बल्कि नेपाल भी फिरंगियों यानी गौरांगों के प्रवेश के लिए पूरी तरह बंद था :

**"क्योंकि येशिया के बादशाह व राजा लोग अंगरेजों या उन्के नौकरों को अपने मुल्कों में आना पसंद नहीं करते है तिसपर भी पैमायश के नाम ही से जलते है इसलिए मुझको कुछ वहाना वतलाना पड़ा मैंने अपना डेरा काठमांडू शहर के पश्चिम तर्फ व राजपुल के पास विहनुमति नदी के दाहिने कनारे धर्मशाला में की।"**

काठमांडू से ल्हासा जाने के लिए बेहतर रास्ते की खोजबीन शुरू हुई। किसी को असली मकसद पर शक न हो इसलिए यह प्रचारित किया गया कि कुमाऊं के जिन शौका व्यापारियों को पिछले साल गरतोक में डाकुओं ने लूट लिया था, ल्हासा के हाकिमान से मांगे जा रहे उनके हर्जाने के रुपयों को लाने के लिए वे जा रहे हैं। नेपाली सैनिक अधिकारी सिद्धमान सिंह को नैन सिंह ने पहले ही बात करके इस मामले में अपने पक्ष में कर लिया था। यही नहीं, नैन सिंह ने महाराजा जंग बहादुर सिंह के दर्शन भी कर लिए। दरअसल सिद्धमान सिंह ने ही नैन सिंह तथा मानी सिंह को थापाथली ले जाकर महाराजा जंगबहादुर से मिलाया था।

जंग बहादुर ने एक फर्मान चंद्रभान कार्की वकील के नाम बना दिया, जो महाराजा के प्रतिनिधि के रूप में ल्हासा में नियुक्त था। साथ ही एक राहदारी कप्तान कृतधवल थापा से मिला दिया। महाराजा को नैन सिंह ने दो अशरफी नजर पेश की लेकिल महाराजा ने छूकर इन्हें यह कह कर वापस कर दिया कि तुम्हारा नजराना हमें कबूल हो चुका :

**"वाद इसके एक लफटेन को इसारे से फरमाया कि इन जुहारियों को हमारे तुहफेखाने और वैठक जितने हैं दिखा दो तव उस लफटेन ने हमें साथ लेकर गोल कमरे वगैरह कई अजायव घर और वैठकों का सैर कराया चुनांचे एक घर में तो मैंने तमान दुनिया के जानवरों का खाल देखा दूसरे में वाजे वगैरह अंग्रेजी किमाम अनेक प्रकार के देखने में आई तीसरे में तस्वीर देखी ॥"**

इस तरह जनसंपर्क तथा अपनी राह की दिक्कतें हल करने की नैन सिंह की क्षमता धीरे-धीरे विकसित हो रही थी।

उसे नेपाल की राजधानी काठमांडू को विस्तार से देखने का मौका मिला। उसने गलियों-बाजारों, मंदिरों तथा नदी के किनारों में जाकर इस शहर का और गहरा जायजा लिया था :

''यह काठमांडू शहर 27° अंश 40' कल और 28"विकल उत्तर अक्षांश और 85° डिग्री अंश पूर्व देशान्तर में एक इनकी दरमियान जो अनूमान से वीश मील चौड़ी पचीश मील लम्वी होवेगी और जिसका किसी समय में झील होना वहां वालों की पोथियों से सावित है समुद्र के धरातल से प्रायः चार हजार पचाश फुट ऊंचा विहनूमति नदी के दाहिनी पूर्व तट पर जहां वह वागमती नदी से मिली वसा है घर ईट और लकड़ियों के और राजा के रहने का महल वीच शहर इन्द्र चौक मुहल्ले में वना है पाश ही उसके तुल्सी भवानी का मन्दर है शहर लम्वा उत्तर दक्षिण कुछ ऊपर ऐक मील तक चौड़ा अनुमान पौन मील होवेगा शहर के उत्तर में पास ही सर्कार अंग्रेज की तर्फ से रेजीडेंट साहव का वंगला है काठमाडू से अग्निकोन को झुकता अनदाजन मील के फासले वाघमती नदी के वाई कनारे ललि तपाटन नाम वड़ा शहर है और साम्हने वार वाघमती नदी के दाहिने उत्तर तट पर वापावली में महाराज जंगवहादुर का कियामगाह और दरवार है काठमाडू से दस मील अग्निकोण को झुकता हुआ भातगाउ नाम एक शहर है जिस्का पुराना नाम धर्मपतन था जिसमें नेवार लोगों के अपेक्षा ब्रहामण वहुत हैं और महाराज के महलात भी वने हैं''

आगे नैन सिंह लिखता है :

''काठमांडू से प्रायः ढाई मील पूर्व में वाघमती नदी के दाहने कनारे पर पशुपतिनाथ महादेव का मन्दिर वना है... वाघमती नदी के वाई कनारे मृगस्थली नाम एक छोटी टीले पर एक छोटा मन्दर गुरु गोरखनाथ का और इसी टीले के उत्तर पास ही गुह्यकाली का मन्दिर सुहावना वना है जिस्के छतों पर सोने के कलश लगे हुए हैं काठमाडू से अनूमान पौन मील पस्चिम एक छोटे टीले पर वुद्ध का मन्दिर है जिसे तिव्वती लोग फाकपाशिंकुन कहते हैं और नेवार लोग सिम्वु कहते हैं वना है इस मन्दिर के पुजारी तिव्वती लामा लोग होते हैं काठमाडू से अनुमान डेड मील नैरत्यकोण को झुकता हुआ कृत्यपूर एक वड़ा शहर है जिसमें एक काली का मंदिर मशहूर है कहते हैं कि इस मन्दिर को शंकर स्वामी ने वनवाया था कहते हैं कि जमाने सावित में काठमाडू, कृत्यपुर, ललितपाटन भातगाऊ इन चार शहरों में चार राजे नेवार कौम के राज्य करते थे गोरखा के राजा महाराज पृथीनारायण जो वड़ा प्रतापी हो गुजरा उसी ने आकर नेवार राजाओं को जेर करके अपना राज्य कायम किया''

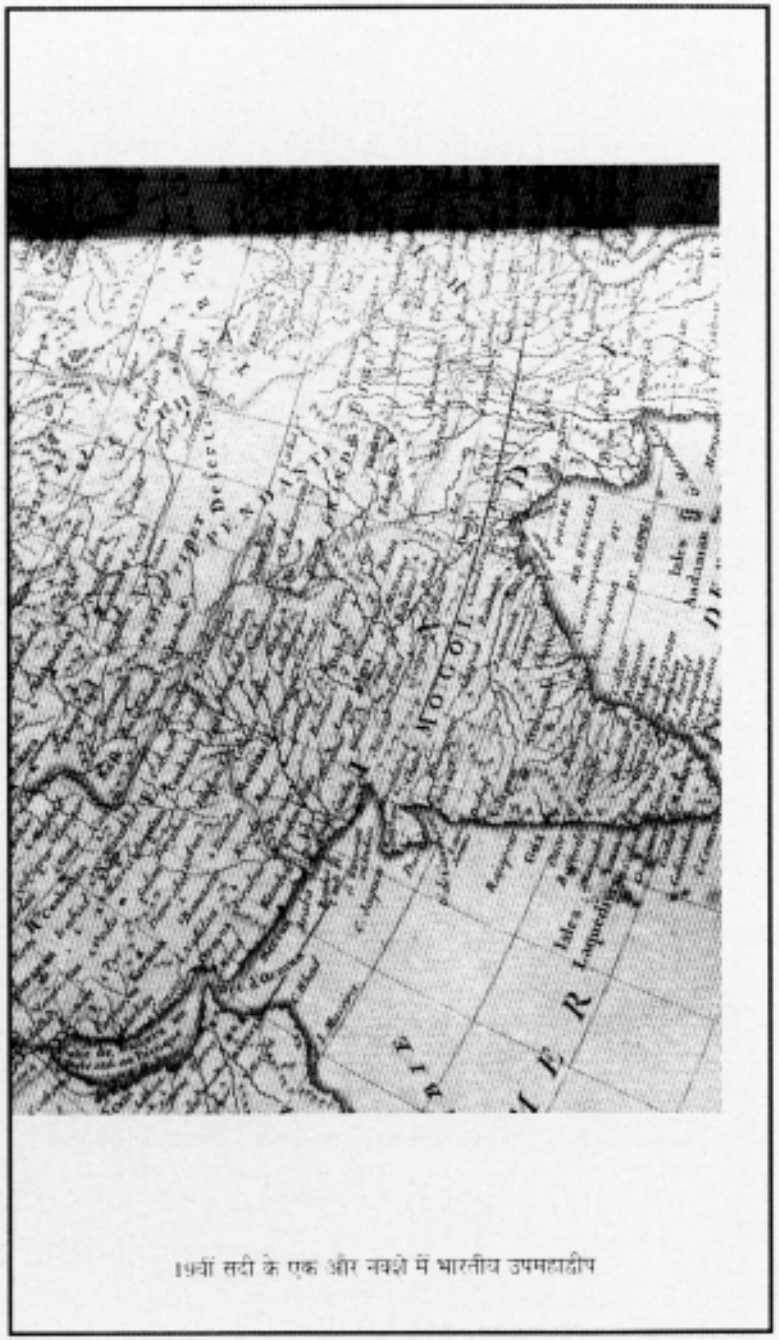

19वीं सदी के एक और नक्शे में भारतीय उपमहाद्वीप

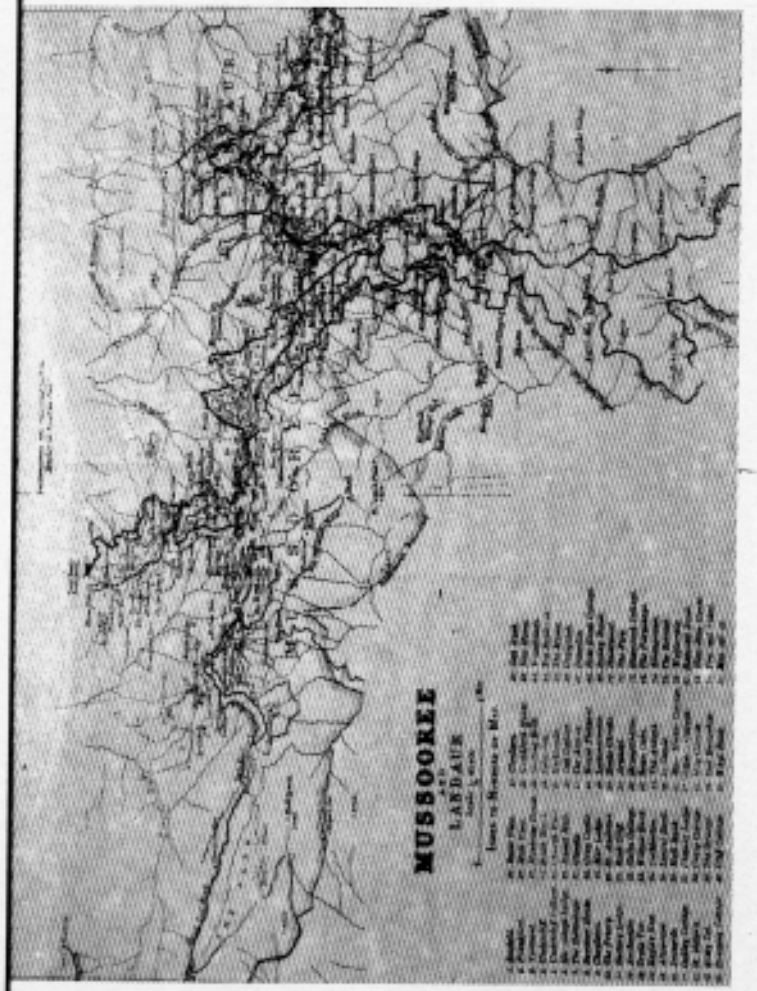


मसूरी का पुराना नक्शा

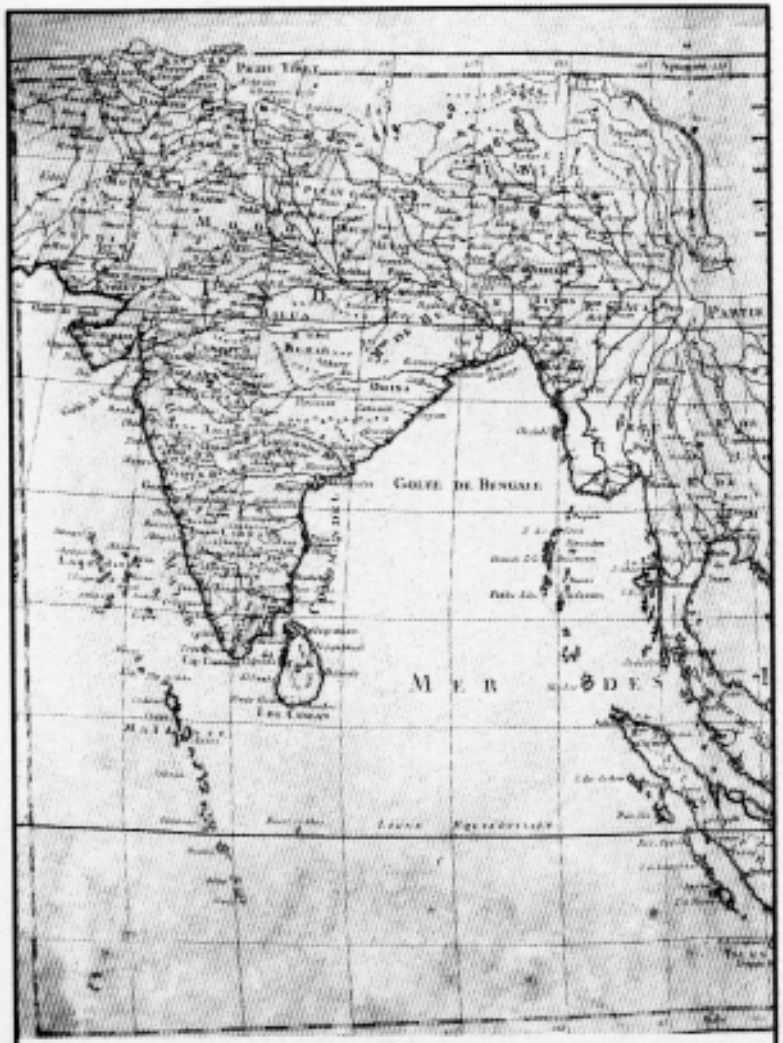


1762 के फ्रांसीसी एटलस में भारतीय उपमहाद्वीप : गंगा उद्गम तिब्बत में

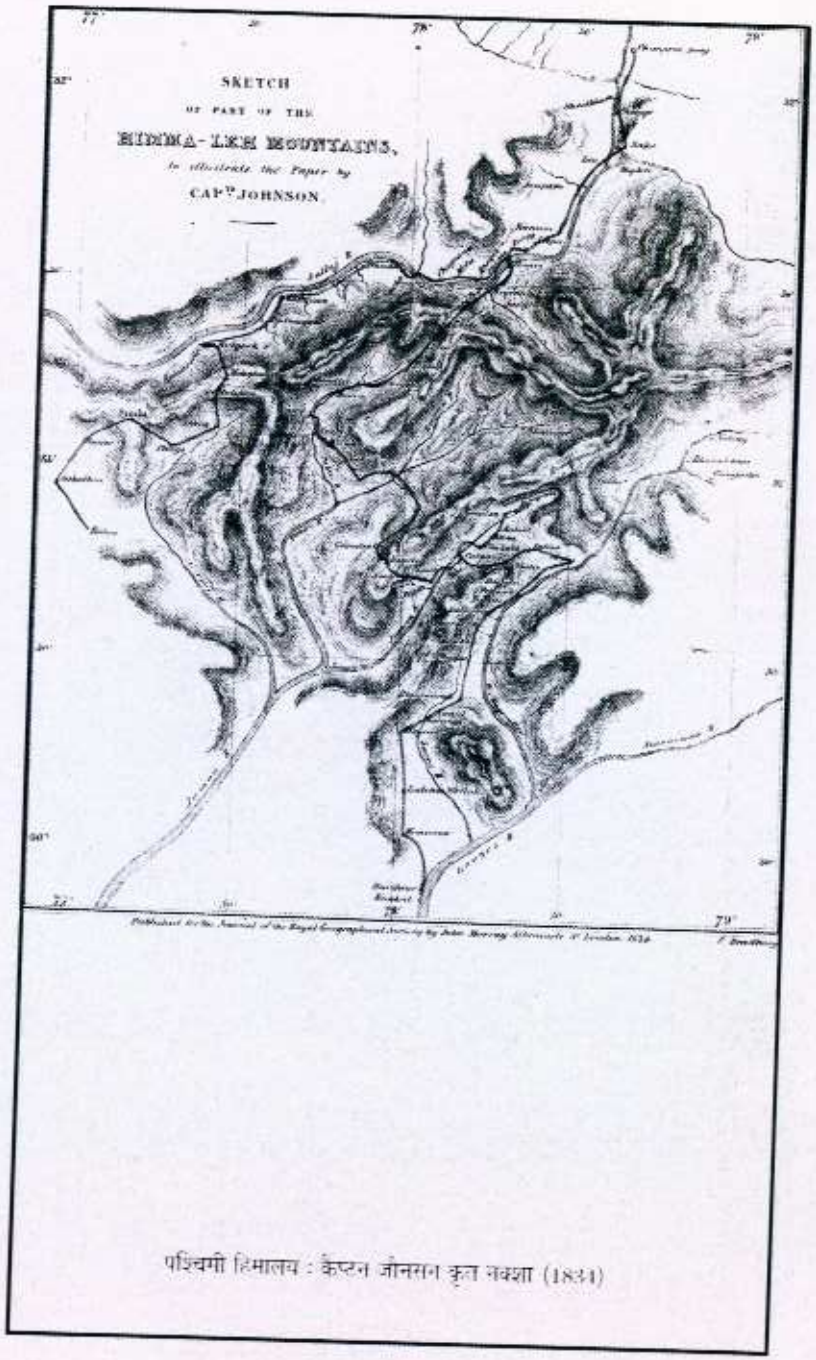


पश्चिमी हिमालय : कैप्टन जॉनसन कृत नक्शा (1834)

ग्यान्त्से गोम्पा में एक प्रतिमा

ग्यान्त्से गोम्पा में अवलोकितेश्वर

माणा दर्रा

उच्च हिमालय : बर्फ में दरार

टिंगरी (तिब्बत) : यहां से गुजरे थे नैन सिंह (1866)

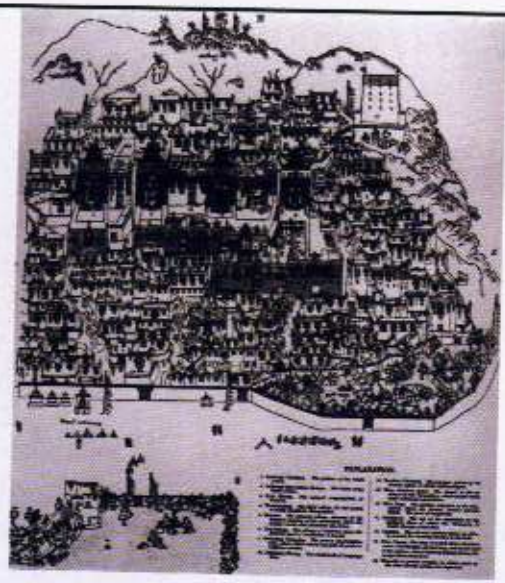

एक पंडित द्वारा बनाया गया सिगात्से गोम्पा

घसतोली (माणा-छपराङ मार्ग से)

मिलम : नैन सिंह का पैतृक गांव

किशन सिंह

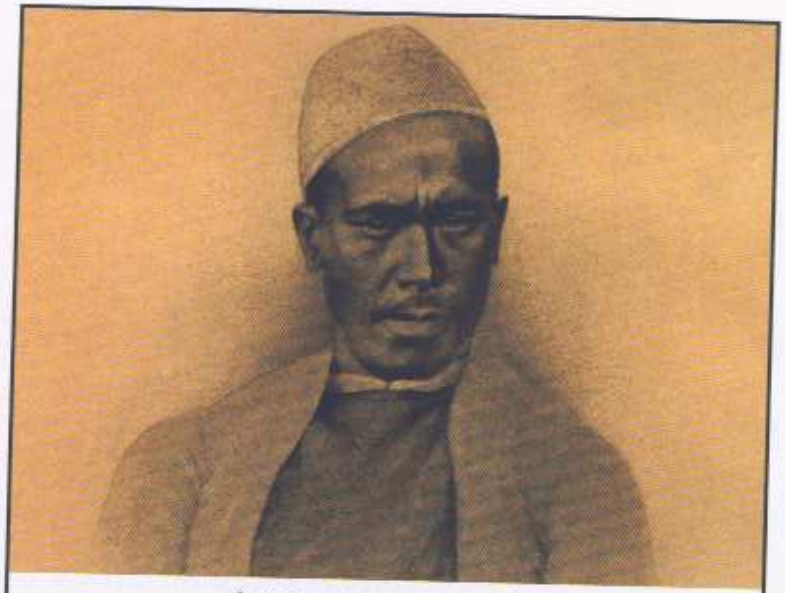

नैन सिंह : एक मात्र उपलब्ध फोटो

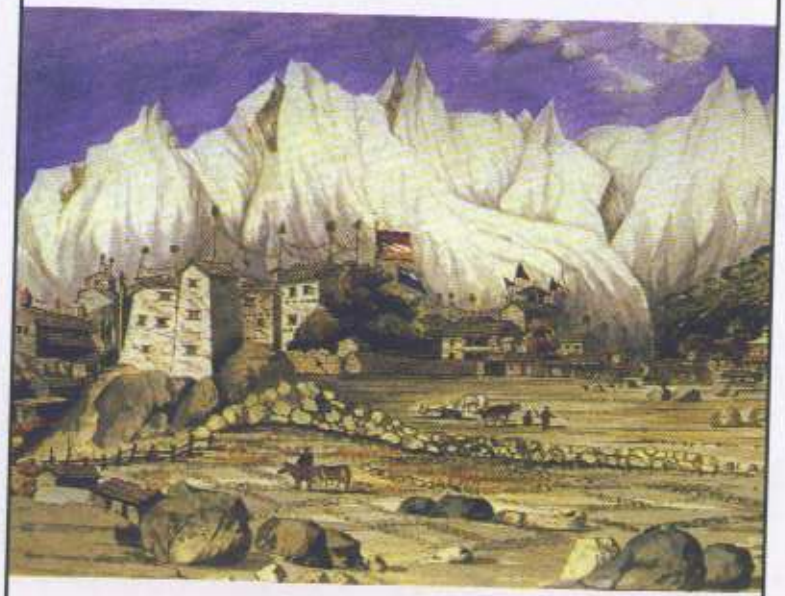

तिब्बत की बसासत किरोंग

ब्रह्मपुत्र नदी

यमडोकत्सो झील

सिगात्से गोम्पा परिसर

ग्यान्त्से गोम्पा

तवांग गोम्पा

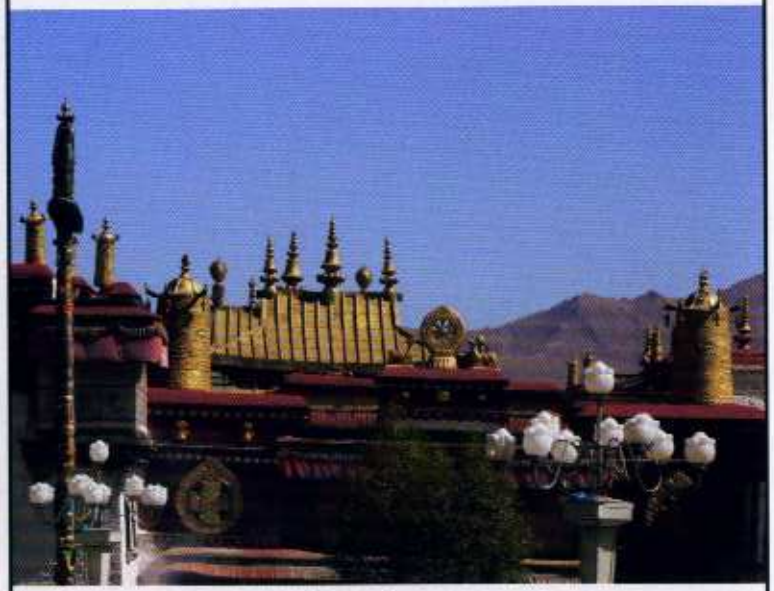

जोखांग परिसर, ल्हासा

तिब्बत का एक दर्रा

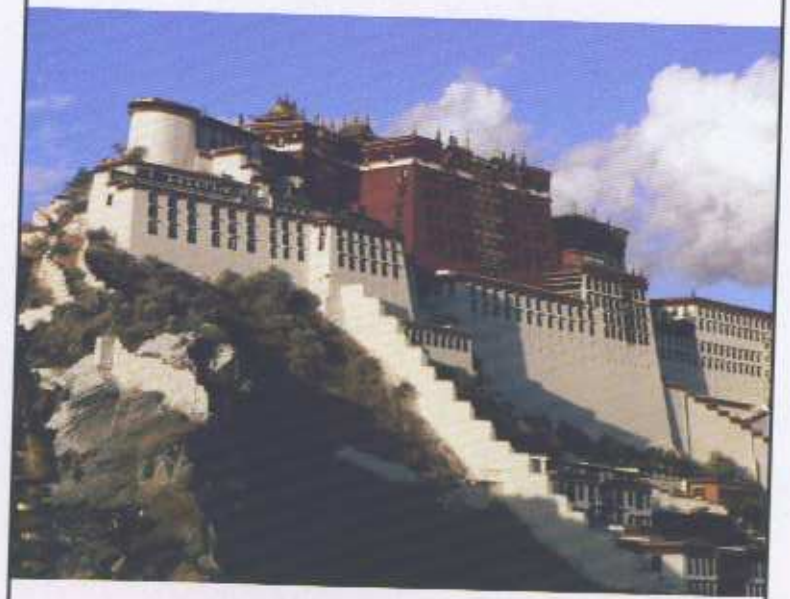

पोटाला महल

वर्तमान में उदालगुडी की एक झोपड़ी

पांचवें दलाईलामा द्वारा चीन के राजा को दिया गया उपहार

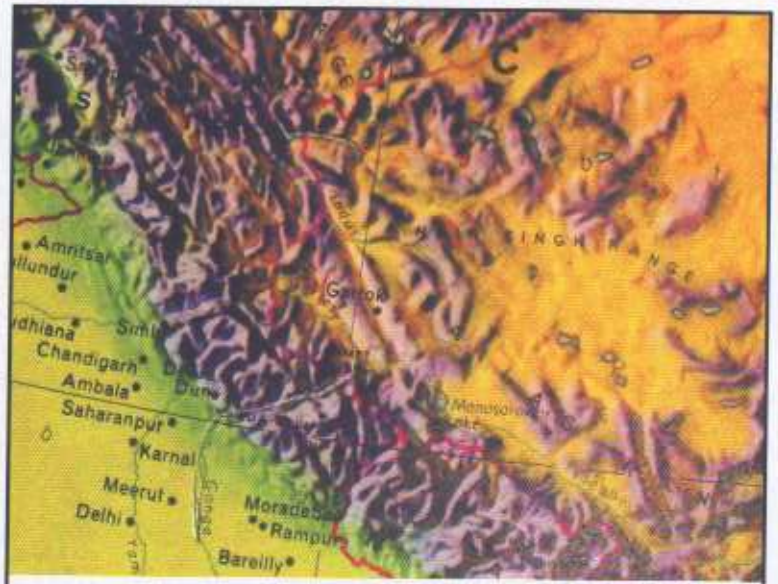


नैन सिंह रेन्ज

काठमांडू का असनटोल मुहल्ला जहां नैन सिंह अगस्त 1865 में रहा

पेंगगोंक झील

नाम्त्सो या टैन्ग्रीनूर झील

पोटाला महल : आज

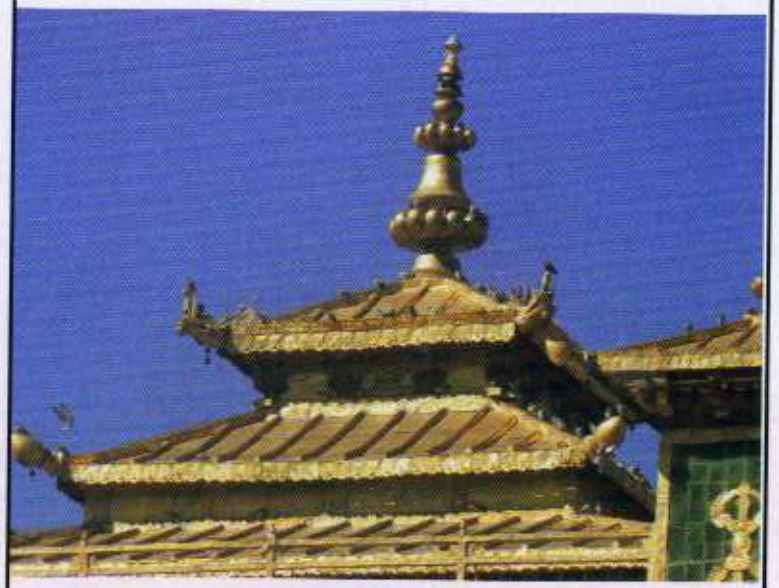

सामये गोम्पा (1874) : शिखर

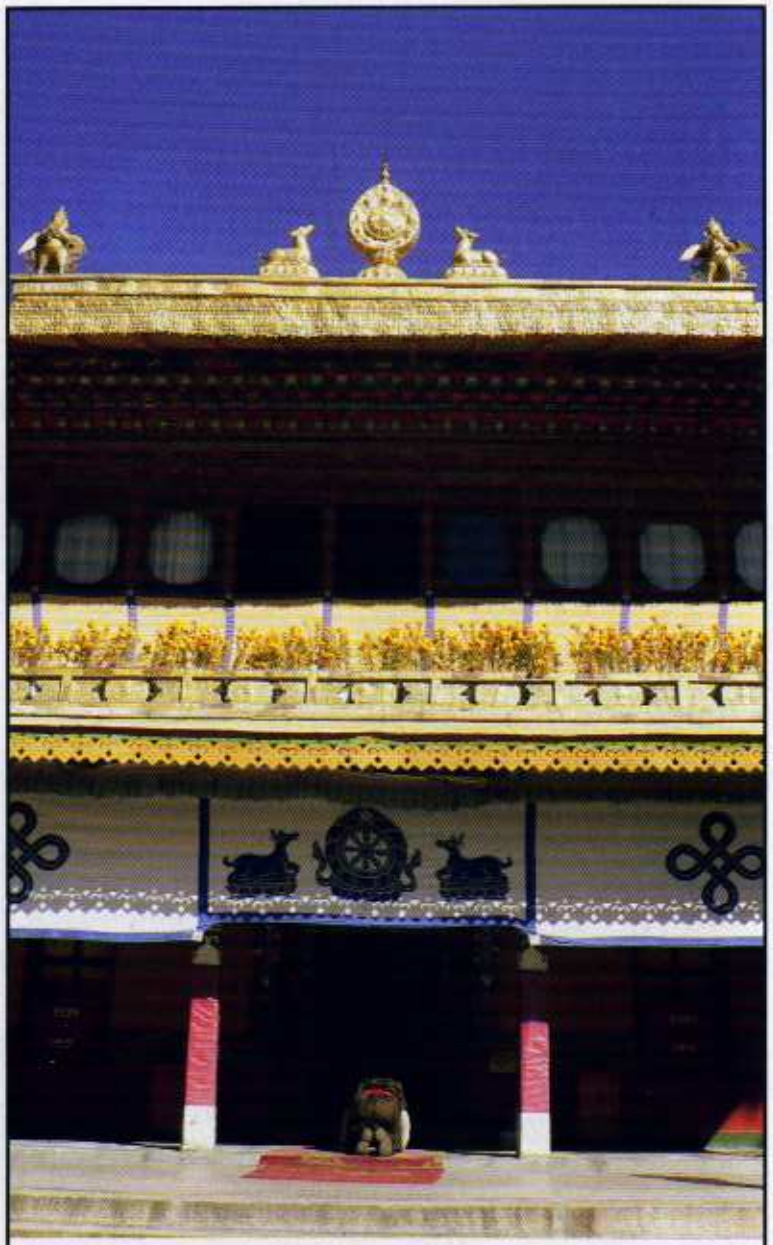

दलाई लामा का निवास, ल्हासा

जोखांग गोम्पा

तवांग नदी



ऊपर कहे हुए काठमांडू वगैराह चार शहरों के वाशन्दे नेवार वगैराह लोग राजा समेत गोरखियों को परवति के नाम से वोलते हैं पर्वतिये लोगों में कारकी, राना, थापा, पांडे, साई, कुंवर, चन्दमल वगैरह कई जाति के लोग क्षेत्री कौम के वैदिक मतालम्वी हैं और नेवार, गुरंग, मंगर सौन वगैरह कई जाति के लोग अक्सर वोध मतालम्वी हैं इन नेवार वगैरह कौमों में सिर्फ वाजे ही शैव मतालम्वी हैं कारण यह वतलाते हैं शंकर स्वामी वौध मत का तोड़ने वाला कृतपूर तक आया वौधों से वड़ी लड़ाईयां हुईं थोड़े से वौधों ने तो शंकर स्वामी का मत कवूल कर ली वहुत से वौधों को शंकर स्वामी जीत न सका इसी से नैपाल में अव तक वौध वहुतायत से हैं लेकन नैपाल के नेवार वगैरह वौध लोग वड़े माशांहारी हैं यहां तक कि भैंस और मुर्गी, अंडे मछली सुरापान तो इनकी असली खराक है तमाशा यह है कि नैपाल के क्षत्री रजपूत ब्राह्मनों के रसोई के टहल के लिए चौकों में पानी सारने वाला कहार से लेकर कुल कार घर निवारों के हाथ है मैंने वचशम देखा यह वात नैपाल में मशहूर और मारूफ है कि तिव्वती लामा और भोटीयो भुटीयानी तो निवार लोगों के वास्ते गोया कि सरौले ब्राह्मन हैं क्या खूव हमारे कुमाऊं देश के पन्त, पांडे, जोशी लोग अपनी शेखी और वड़पन के मारे जव वाजार से भीतर जाते हैं तो पानी का छीटा लेते हैं जव वही लोग नैपाल को जाते हैं तो इनके रसोई चौके के टहल में नेवार जाती के भैंस और मुर्गी अन्डे खोर नजर आते हैं मैंने वचश्म देखा कि हजारहा नेवार लोग व्योपारी जिनकी कोठी, ल्हासा, डिगर्चा व्रगैरह मुल्क तिव्वत में है व्याह खान पान सम्वन्ध चालचलन दीनधर्म वरावर तिव्वती लोगों के साथ वर्तते हैं खाश नैपाल के हर येक शहरों में वड़े-वड़े आला खानदान के लोगों के घरों में भुटानी यानी तिव्वती औरतें घर में रखी हैं हमारे देश के वड़े-वड़े खानदान के वामन लोग जिनकि वृति नैपाल में है या जो कोई रोजगार के तलाश इस देश से नैपाल को जाते हैं नेवार तथा भोटानी के घर नेवता जीम कर प्रतिग्रह ग्रहण ले आते हैं''।

नेपाल के तिब्बत की ओर खुलने वाले कुछ दर्रे अपेक्षाकृत ज्यादा समय तक खुले रहते थे जबकि कुछ कम समय के लिए ही खुलते थे। जो जानकारी मिल सकी उससे स्पष्ट हो गया था कि बर्फ की अधिकता के कारण नेपाल के कुटी या निलम दर्रे के रास्ते डिंगरी/टिंगरी के मैदान से होकर जाना संभव न था। अतः किरोंग दर्रे से होकर जाना तय हुआ।

20 मार्च 1865 को चार कुलियों के साथ यह छोटा सा कारवां राजधानी काठमांडू से चला और अजीतपुर में पड़ाव किया। 21 मार्च को सुंदरीफेदी, 22 को गंडक त्रिशूली के किनारे स्थित कवतरावती गांव में, तथा 23 को रायचा गांव में पहुंचे। 24 मार्च को

एक गुफा में निवास करने के बाद 25 को उन्होंने श्यावरो गांव में डेरा डाला। 26 मार्च को दांगपोछो पहुंच कर सभी ने अपने कपड़े बदले और बुशहरियों (कनावर या किन्नौरवासियों) की सी वेशभूषा बनाई ताकि उन पर शक करने की संभावना न रहे।

27 मार्च को टेसुरिया मनासर नाम के एक बड़े गांव में थानेदार ने उनसे राहदारी मांगी और तमाम सामान की जांच पड़ताल की। प्रति आदमी दो रुपया के हिसाब से चार रुपया महसूल किया। इससे दो मील आगे रसुवागढ़ी में उस दिन रहे। यह कहा जाता था कि सन् 1855 में जब महाराजा नेपाल ने सिगात्से पर चढ़ाई की थी, तब यह किला बनाया गया था। इस किले के पास लेंदीछ्यू नदी का संगम गंडक नदी से होता था। यह नेपाल-तिब्बत सीमांत था। सन् 1855 में डिगर्चा पर नेपाली हमला हुआ था। तब पंचम लामा भाग कर ल्हासा चला गया था। शहर को लूटा गया। तब चीनी सेना आई और गोरखा सैनिकों को भगाया गया। समझौते के बाद लेंदीछ्यू नदी को तिब्बत तथा नेपाल की सीमा मानते हुए एक पत्थर खड़ा किया गया।

रसुवागढ़ी से आगे नेपाली पुलिस तथा मुंशी ने कड़ी जांच पड़ताल की पर नैन सिंह के पास मौजूद कोई उपकरण पकड़े नहीं जा सके। जंगल में स्थित पैमानेशा में उन्हें फिर रोका गया और कहा गया कि जब तक किरोंग के अधिकारी नहीं कहते, उन्हें आगे बढ़ने की स्वीकृति नहीं मिल सकती। यहां पर तिब्बती थानेदार ने आगे जाने के लिए स्पष्ट रूप से यह कह कर मना कर दिया कि गैर मुल्कियों को इस रास्ते से ल्हासा जाना मना है। पुलिस के मुखिया को भेंट चढ़ाकर प्रसन्न करने का प्रयास किया गया पर यह सफल नहीं हुआ। 29 तथा 30 मार्च 1865 को वे दो दिन इंतजार करते रहे। तब किरोंग के अधिकारी ने आकर बताया कि इस राह से जाना पूरी तरह मना है। अब सिर्फ कुटी या निलम मार्ग से होकर जाने का विकल्प बचा था। अतः वे रसुवागढ़ी वापस आ गए :

**''तारीख 31 मार्च 1864 इस्वी के श्यामसावरो गांव में आकर किसी से सुना इस स्यावरो गांव में देवाखमसुम आंगड़ी भोटिया एक वड़ा आदमी जो महराज नैपाल और ल्हासा के दोनों राजाओंका मुअतिमद है जिस किसी को यह राहदारी देता है वह निकलने पाता यह खवर सुनकर मैं उस्के मकान में गया कुछ भेंट देकर उससे राहदारी हासिल की फिर किरौगही के राह जाने का वीचार किया तो फिर सुना कि जो सखस गढतोक के गरपोन मेरे भाई का मुलाकाती था वही किरोंग का जोगपोन है इसलिए हमने विचार किया कि हमरे लोगों को ल्हासा जाने से मना है मानी को देखते ही किरोंगजोंगपन पहचानलेगा रास्ता कभी न देगा यह सोचकर मैंने भाई माणी से सलाह की कि मैं कुछ नौकरों को साथ लेकर किरोंग का राह जाता हूं तुम नेल्मकूटी के राह जाइओ यह नेक सलाह मेरे भाई माणी ने न मानी लाचार लौटकर तारीख 10 अप्रैल 1865 इस्वी के दिन काठमांडू वापिस पहुचा''**



इस तरह 10 दिन की यात्रा के बाद ही उन्हें फिर काठमांडू को लौटना पड़ा। 10 अप्रैल 1865 को वे पुनः काठमांडू पहुंच गए। यहां उन्होंने काली कुमाऊं के हरिराम हटवाल के आसनटोल मुहल्ले में स्थित डेरे में निवास किया। निराशा से उबर कर फिर यात्रा के प्रयास प्रारंभ हुए। नैन सिंह किसी न किसी नई सूचना को इकट्ठा करने का प्रयास करता। इस बीच उन नेवार व्यापारियों से ल्हासा पहुंचने के उपाय पूछे जाते रहे, जिनकी कोठी ल्हासा या दिगर्चा में थी। तुरंत कोई बात बनती नजर नहीं आ रही थी।

नैन सिंह ने प्रयास करना नहीं छोड़ा। पुनः जानकारियां इकट्ठी की गईं। यह भी राय मिली कि नेवारों के नौकर बन कर ल्हासा जाने में यात्रा अधिक निरापद रहेगी। छः आदमी एक साथ नहीं जा सकते थे अतः अलग अलग नौकर बनने का सुझाव दिया गया। इसी समय यह पता चल सका कि नेपाल का नया एजेंट तथा एक भोटांतिक व्यापारी दल के सदस्य ल्हासा जाने वाले थे। नेपाली एजेंट के साथ संपर्क साधा गया। बहुत कठिनाई से ही यह संभव हो सका। पर वह एजेंट उन्हें साथ ले जाने का आश्वासन देने के बावजूद अंत में अपनी बात से मुकर गया। दरअसल व्यापारी लोग भी किसी अपरिचित तथा गैर मुल्की को साथ ले जाने का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे।

फिर भी मानी सिंह इनके साथ निलम की राह में निकल गया। इस अधिक लंबे रास्ते से मानी के जाने का कारण यही था कि किरोंग का प्रशासक उसे जानता था। परंतु खराब स्वास्थ्य के कारण कुछ ही समय बाद मानी को भारत लौट जाना पड़ा। इस तरह यह अनुभवी अंवेषक इस समय मौका चूक गया और उन ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच सका, जहां भविष्य में नैन सिंह ने पहुंचकर दिखाया। हालांकि इस अभियान का कैलास से पूर्व की ओर का सर्वेक्षण करने के बाद मानी एक और अभियान में नैन सिंह के साथ गया था।

नैन सिंह ने नेपाली व्यापारी दावा नमग्याल (नैन सिंह के शब्दों में 'दावा नमगेल') के दल के साथ जाना तय किया। नैन सिंह की सरलता का लाभ उठाकर दावा नमग्याल ने उससे 100 रुपए ले लिए और उसे आगे चलने का परामर्श दे दिया। दरअसल दावा को तो नैन सिंह को दगा देनी थी। उसने नैन सिंह से 4-5 दिन बाद अगले पड़ावों में मिलने को कहा। अबकी बार लद्दाखी वेशभूषा में नैन सिंह आगे बढ़ा ताकि किरोंग के अधिकारी उसे पहचान न पाएं।

3 जून 1865 को नैन सिंह काठमांडू से स्यावरो को चल दिया। 13 जून को वह दोगेलांग गांव में पहुंच कर बहुत बीमार पड़ गया। चार-पांच दिन तक वह बुखार से तपता रहा। दस्त भी उसे लग गए थे। एकाएक बीमार हो जाने के बावजूद उसने यात्रा पुनः आरंभ कर दी। 20 जून को जब वह दावा के घर पहुंचा तब तक दावा नमग्याल

नहीं आया था। एक पुराने दस्तूर के अनुसार जब नैन सिंह की भी खातिर की जाने लगी तो उसके होश हवास उड़ गए। वह लिखता है :

**"इस इलाके में एक यह खराब दस्तूर है कि जब कोई मिहवान घर में आवे तो अपनी औरत सौंप कर उसकी पूरी मिहमानदारी का अदाय हक समझते हैं इसी दस्तूर मुताबक मुझे दावानमगेल का दोस्त और मिहमान समझकर दावानमगेल के घरवालों ने मेरा तवाजा खातिर करना चाहा सुनकर मारे डर के मेरे हवाश होश उड़ गया अपना डेरा अलग जगह कर ली ॥"**

कई दिनों तक वह दावा नमगेल का इंतजार करता हुआ स्यावरो में रहा। कई दफे दावा को बुलाने आदमी काठमांडू भेजे गए 'पर वह बेइमान नहीं आया'। आखिरकार वह दावा नमग्याल के मामा के पास गया।

## तिब्बत में प्रवेश

दावा नमग्याल के मामा देवा खमसुम आंगड़ी ने हाल में ल्हासा से लौटकर किरोंग आए दावा नमग्याल के भाई छ्यांगचू को नैन सिंह की मदद हेतु पत्र लिखा। इसके बाद वे 6 जुलाई को टेमूरिया भनसार आदि स्थानों से होकर 7 जुलाई 1865 को किरोंग पहुंचे। 3 हजार से अधिक जनसंख्या वाला यह कस्बा ल्हासा मार्ग का मुख्य पड़ाव होने के साथ-साथ छोटा व्यापारिक केंद्र भी था। यहां नैन सिंह ने दावा नमग्याल के भाई छ्यांगचू से भेंट की। छ्यांगचू, जो कि गोंपा के लामा पुजारियों का अधिकारी था, ने न सिर्फ उसे ल्हासा पहुंचने में सहायता का आश्वासन दिया, बल्कि अपने घर में टिकने की जगह भी दी। लेकिन वह अपने भाई दावा नमग्याल द्वारा हड़पे गए सौ रुपयों को लौटाने के लिए तैयार नहीं हुआ।

छ्यांगचू ने कहा कि वह किरोंग के जोंगपन से उसकी सिफारिश करके उसे आगे जाने में मदद दिलाएगा। पर इस जोंगपन ने यह कह कर एक पत्र टिंगरी मैदान के दैवोन को लिख दिया कि उसे राहदारी देने का अधिकार नहीं है। टिंगरी (धिंगरी) के दैवोन ने जब आगे जाने की मनाही की तो नैन सिंह ने ग्याल्हा चुमन मरी होकर वतन वापसी को अर्जी दी। इस पर यह कहा गया कि क्योंकि नैन सिंह 'गैर बादशाही का आदमी' है, अतः हम अपने इलाके से नहीं जाने देंगे। बहुत मिन्नत और छ्यांगचू द्वारा जमानत देने के बाद नैन सिंह को नुवरी जाने की अनुमति मिल सकी।

9100 फीट की उंचाई पर स्थित किरोंग में ठंडे मौसम वाली और तिब्बती सीमांत की वसासत होने के बावजूद साल में तीन फसलें होती थी। सब्जियां भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। यहां की अनेक दुकानें भोटिया तथा नेवार लोगों की थी। शहर के पूर्वी छोर पर एक छोटा किला था, जिसे स्यार जोंग कहा जाता था। पश्चिमी कोने पर दूसरा किला था, जिसे नुव जोंग कहते थे। शहर के उत्तरी सिरे पर एक बड़ा बौद्ध मंदिर था,



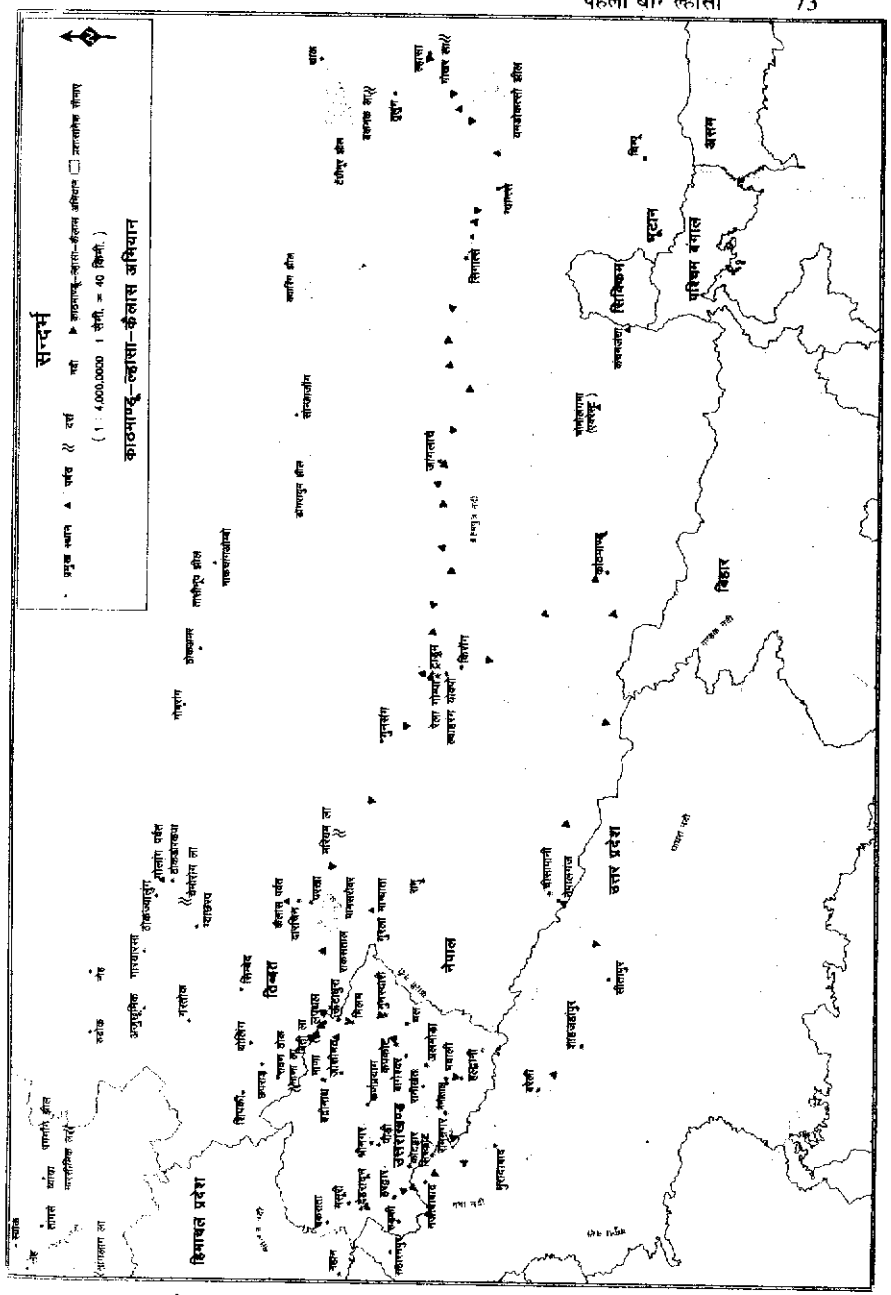


नैन सिंह का पहला अभियान : काठमांडू से ल्हासा तथा कैलास

जिसे फाकपा चेङगरा कहा जाता था। यह मंदिर बहुत सुंदर था और इसके अंदर बुद्ध की अनेक सुंदर मूर्तियां रखी हुई थी। किरोंग में साल भर व्यापार होता था। किरोंग की काठमांडू से दूरी 64 मील थी।

37 दिन तक किरोंग में अनावश्यक पर अपरिहार्य रूप से रहने के बाद 13 अगस्त 1865 को नैन सिंह का दल किरोंग से आगे बढ़ा। दरअसल किरोंग के जोंगपन ने छ्यांगचू की जमानत के कारण नैन सिंह को नुवरी की राह भारत जाने की अनुमति तो दे दी थी लेकिन कहीं नैन सिंह किरोंग के इलाके से छिपकर ल्हासा न निकल जाए इस हेतु विचित्र व्यवस्था की गई थी। उसके साथ किरोंग का मालगुजार पांसिंह गांव तक, पांसिंह का मालगुजार मागल, मागल का राकमा, राकमा का ठोथांग, ठोथांग का ल्हाजुकुटुंबा पहाड़ को पार कर चुम होता हुआ उसे नुवरी ले जाएगा और नुवरी के चिगेव यानी सरदार से नैन सिंह तथा उसके साथियों के पहुंचने की रसीद लेकर आएगा।

यह यात्रा गंडकी नदी की घाटी में हो रही थी। 13 अगस्त को माकमा गांव तथा 14 को थोटांग के बाद वे 16 अगस्त को गंडकी नदी के किनारे चल कर सांगदा गांव पहुंचे। यहां तक वे उत्तर की ओर चल रहे थे। यहां से वे उत्तर-पश्चिम की ओर चलने लगे। अब वे दूसरी घाटी में आ गए थे। 17 अगस्त को छैके छ्यू तथा बूढ़ी गंडकी नदी के संगम स्थल कोकुंग छ्युक्सा में रह कर 18 अगस्त को वे 10000 फीट की उंचाई पर स्थित चुम नामक बड़े गांव में पहुंचे। इसके सामने नदी पार वील्वे नामक बड़ा गांव था। यहां से वे बूढ़ी गंडकी की एक सहायक नदी की घाटी में आ गए।

19 अगस्त को फुखरवार गांव, 20 को चिमो फुरफुर पहाड़ की एक गुफा में रहे। इस जगह के बारे में यह कहानी प्रचलित थी कि यहां से एक चिमो (जोगिन) उड़कर आकाश को चली गई थी। अगले दिन 21 को भी नुवरीछ्यू नदी के किनारे एक गुफा में रहे। फिसलन के कारण नैन सिंह कई जगह गिरा, जिससे उसके हाथ पैर जख्मी हो गए। 22 को नुवरी छ्यू के किनारे स्थित नमंडुल गांव तथा 23 को लुवे गांव में रह कर 24 अगस्त को वे बावोक नामक मंडी में पहुंचे। नैन सिंह को ठोकांग गांव के दो आदमियों ने चिगेव ङावांग के घर पहुंचा दिया। चिगेव ङावांग क्योंकि तिब्बत को जा रहा था अतः नैन सिंह के यहां पहुंचने की रसीद उसके बड़े भाई ढेले दोर्जे से लेकर नैन सिंह को छोड़ने आए आदमियों ने किरोंग को वापसी शुरू की। यह मंडी उच्च हिमालय में स्थित थी। इसके आसपास ग्लेशियर तथा झीलें थीं। अब तक उन्हें किरोंग से चले 12 दिन हो चुके थे।

नुवरी को काठमांडू वाले अठारह सौ खोला कहते थे। यह क्षेत्र नेपाल के राजा का था, लेकिन यहां भोटिए, किन्नौरी, तिब्बती आदि सभी प्रकार के व्यापारी थे। किन्नौरी मूल का चिगेव ङावांग यहां का सबसे बड़ा हाकिम था। नैन सिंह लिखता है :



**"इस इलाके नुवरी (यानी अठारह सौ खोला) में निरवीसी वहुत इफरात से पैदा होती है ग्याल्हा, डोल्हा घाटी के राह इलाके तिव्वत के डोश्योद ल्हवरांग से नमक ऊन वगैरह तिव्वत की वस्तु इलाके नैपाल में और इलाके नैपाल से अनाज तमाकू कपड़ा वगैरह वस्तु तिव्वत को वेचते हैं लाद अकसर याकों (चवरगाय) के रखते हैं नुवरी में भोटिये लोग रहते और मजहव वुद्ध का रखते हैं अकसर याक, गाय, भेड़ वकरे, घेड़े, जो जीमो पालते खेती भी करते विशेशकरके व्योपार में नमक, ऊन, पट्टू तिव्वत से लाकर इलाके नैपाल के पोखरा वग़ैरह शहरों में वेचते यहां से चांवल वग़ैरह अनाज, गुड़, कपड़ा, वर्तन, तमाकू, निरविसी चीजें तिव्वत को ले जाते हैं तहरीर आपसी तिव्वती हरूफ उजेन उमेद व्यवहार में लाते और सरकार नैपाल के काररवाई के वास्ते चिगेव ङावांग सरीके हाकिमान वाजे लोग हिन्दी भी पढ़े हुए होते हैं ॥**

**इस मुकाम वावोक छ्युक्सा नुवरी के लोगों का मौशिम गर्मी का कयामगाह है वरसात में भेड़ वकरे, याक, घोड़े चुगाने को यहां ले आते और मौसिम सरदी में नमडुल वगैरह गांवों में जा वैठते हैं इस मुकाम वावोक में एक रास्ता पूर्व ओर हिमालिया पहाड़ नांघकर जोंकाजोंग को जाता और दूसरा पांच दिन का राह पश्चिम की ओर एक हिमालिया नांघकर मुक्तिनाथ (या मुश्तांग) को जाता है इस वावोक से आगे पेड़ों का जंगल नहीं है ॥"**

नैन सिंह अब किरोंग के जोंगपन द्वारा भेजे गए आदमियों से मुक्त था। यहीं उसे पता चला कि 25 अगस्त 1865 को एक व्यापारिक दल तिब्बत की ओर जाने वाला है। इस दल में मुख्यतः नुवरी व्यापारी थे। नैन सिंह ने अपनी चतुराई तथा समझदारी का इस्तेमाल करते हुए यह ज्यादा उचित समझा कि अगर बन पड़ता है तो इनके साथ तिब्बत की ओर जाना निरापद रहेगा। इस तरह उसने आगे की योजना बनाई।

नैन सिंह की परीक्षा का समय आ रहा था। उसे सिद्ध करना था कि वह बुशहर इलाके का रहने वाला है। उसके पहनावे तथा भाषा की भी परीक्षा होनी थी। अपने को बुशहरी बताकर नैन सिंह ने इस दल का विश्वास प्राप्त करने में कामयाबी पाई और इसी दल के साथ वह आगे चल निकला। सबसे पहले उसने रूवे गांव के व्यापारी वारो ठेले दोर्जे के दो याकों को किराये पर लिया। उनमें अनाज तथा अन्य जरूरी सामान लादकर वह इस व्यापारी दल के साथ अगले ही दिन तिब्बत को रवाना हो गया। पहली रात वे ग्याल्हासाथांग नामक स्थान पर रहे।

26 अगस्त 1865 को 16680 फीट ऊंचे ग्याल्हा पहाड़, जो नेपाल-तिब्बत की सीमा पर स्थित है, को पार कर सुमनाथ नामक जगह पर डेरा किया। यह स्थान 14000 फीट की ऊंचाई पर था। 27 अगस्त को चढ़ाई चढ़ कर वे डोल्हा नामक पहाड़ की 16623 फीट ऊंची धार को पार करने लगे। इस पहाड़ में नैन सिंह लगातार सिर दर्द

से परेशान रहा। फिर वह बीमार पड़ गया। सिर दर्द के कारण वह रात भर सो नहीं सका। 28 अगस्त को वह वारोटुकसुम में रहा और 29 को तिब्बत में प्रवेश कर उसने डोश्योद के 'जारा नाम रेवों' (स्थानीय पशुचारकों) के बीच डेरा किया। यहां का जोंगपोन सर्काजोंग में रहता था। यहां से जन्म लेने वाली श्योरता सांपो नामक नदी उत्तर की ओर बह कर ब्रह्मपुत्र में मिलती थी।

30 अगस्त 1865 को नैन सिंह को 14617 फीट की ऊंचाई पर स्थित ल्हवरांग योकमा पहुंच कर वहां के देशांतर तथा अक्षांश की स्थिति जानने के लिए रात भर जाग कर दूरबीन से तारों की पड़ताल करनी पड़ी। इस कारण वह बीमार भी पड़ गया और उसे 31 अगस्त को वहीं रुकना पड़ा। यहां के निवासियों को नैन सिंह ने 'हुनिया' बताया था। ये बौद्ध थे। इनमें हिंदुओं की तरह जाति का बखेड़ा नहीं था। ये हर किसी के हाथ का खा लेते थे। यह सब जातीय समाज देखे हुए नैन सिंह के लिए आश्चर्य जनक था।

यहीं उसने तिब्बत की सबसे बड़ी सांगपो (ब्रह्मपुत्र) नदी का पहला दर्शन किया। तब उसे इस विराट नदी का नाम पता नहीं था। 1 सितंबर 1865 को ब्रह्मपुत्र नदी के दाएं किनारे स्थित तिब्बतियों के एक खेमे में वह रुका। 2 सितंबर को लगातार 10 से अधिक मील तक ब्रह्मपुत्र के किनारे उत्तर की ओर चल कर रेला गोंपा (मठ) में डेरा डाला। रेला गोंपा ब्रह्मपुत्र के दाए किनारे स्थित है। यहां उसे अनेक माने तथा चोर्तन नजर आए, साथ ही कियांग (जंगली घोड़े) तथा फिया (मारमोट) आदि भी। उसकी महीन नजर से कुछ भी छिपता नहीं था। यह मार्ग लगातार उत्तर या उत्तर पश्चिम की ओर जा रहा था।

3 सितंबर 1865 को वे क्यू नामक स्थान से होकर मूना डुंगा (घाट) पहुंचे। इसी स्थान पर ब्रह्मपुत्र को नाव से पार किया जाता था। यहां पर उसने किश्तियों में सवार तीन आदमियों को ब्रह्मपुत्र में डूबते हुए देखा था। या तो नदी का प्रवाह अत्यंत तीव्र था या किश्ती में कुछ गड़बड़ी रही होगी। एकमात्र किश्ती के डूब जाने से घाट बंद हो गया था यानी नदी को अब पार नहीं किया जा सकता था। जो डूबी वह वहां उपलब्ध एक मात्र किश्ती थी। इस तरह नैन सिंह को क्यू डोंग पड़ाव को वापस लौटना पड़ा। मूना डुंगा में उसे नूवरी का हाकिम चिगेव डावांग भी मिला था। चिगेव डावांग की मदद से नैन सिंह की यहां के एक प्रभावशाली व्यक्ति रेला गोवा से मुलाकात हो सकी। नैन सिंह ने रेला गोवा को एक चश्मा भेंट किया और इस तरह उसके ट्राडम जाने का मार्ग खुल सका।

## ट्राडम और उससे आगे

अब ट्राडम तक उन्हें ब्रह्मपुत्र के दाएं किनारे जाना था और फिर ब्रह्मपुत्र को पार कर ट्राडम पहुंचना था। 4 सितंबर को नैन सिंह ज्यांगथा नामक स्थान पर तिब्बतियों के



खेमे में रहा। 5 सितंबर को इस दल के सदस्य लिकचे गोंपा में रहे। ब्रह्मपुत्र के दाएं किनारे पर स्थित इस मठ में कई लामा रहते थे और यहां बुद्ध की बहुत सारी मूर्तियां थी। मठ के दक्षिण में एक बड़ी झील भी थी। यहां पर याक के खाल की बनी किश्तियों से ब्रह्मपुत्र पार की जाती थी। किश्तियों के भीतर से लकड़ी के बत्ते लगे रहते थे। एक किश्ती में 15-20 आदमी नदी पार कर लेते थे। नैन सिंह के अनुसार यहां पर ब्रह्मपुत्र का घाट 500 कदम यानी चौथाई मील चौड़ा था। इन किश्तियों में जानवर नहीं ले जाए जा सकते थे।

यहीं से एक मार्ग दक्षिण में स्थित ल्होछ्युमिक गोरसा यानी मुश्तांग (नेपाल) को जाता था। यह इस क्षेत्र का नेपाल से जुड़ा हुआ मुख्य व्यापारिक मार्ग था। मुश्तांग में स्थित मुक्तिनाथ भी यहां से 5 दिन में पहुंचा जा सकता था। यहां से तिब्बती लोग नमक, ऊन, पट्टू, भेड़ तथा बकरी लेकर मुश्तांग जाते थे और वहां से अनाज, कपड़ा, तंबाकू, गुड़ तथा बर्तन आदि लाते थे। इसी तरह मुश्तांग वाले यहां आते थे। यहां खेती भी होती थी।

इस प्रकार यह कारवां ग्याल्हा पहाड़, नोल्हा दर्रे, जांग्रादंग, रेलामठ (जो ब्रह्मपुत्र नदी के दाएं किनारे पर स्थित था), मूनाघाट तथा लिकचे गोंपा होकर 6 सितंबर 1865 को फेरी से ब्रह्मपुत्र नदी पार कर इसी दिन ट्राडम पहुंचा। ट्राडम नैन सिंह के अनुसार 14187 फीट की ऊंचाई पर स्थित था। इसके दोनों ओर मीलों तक मैदान पसरा हुआ था। जानवरों की चराई के लिए यहां पर्याप्त घास थी। याक और गाय का सूखा गोबर यहां रसोई का ईंधन था।

इस व्यापारिक कारवां का अंतिम पड़ाव ट्राडम ही था। ट्राडम, जहां बुद्ध की मूर्तियों और ग्रंथों से भरा एक बड़ा मठ था, लद्दाख से मानसरोवर होकर ल्हासा जाने वाले मार्ग के मुख्य पड़ाव के साथ महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र भी था। यहां एक तारजंपा भी नियुक्त था। नैन सिंह ट्राडम में इस ताक में था कि कोई लद्दाख या किन्नौर का व्यापारी मिले तो उसके साथ ल्हासा को चल निकले। संयोग से 8 सितंबर 1865 को उसे पता चला कि कश्मीर के डोगरा शासक का ल्हासा की सरकार के लिए उपहार लाने वाला लद्दाखी कारवां लोपचक (नैन सिंह के अनुसार 'ल्हापचक') आ रहा है। तब यह कारवां गढ़तोक पहुंचा था। इसका मुखिया कलन छयांग गोंवा था। उसका प्रमुख नौकर छिरंग नोरफेल 20-25 दिन में ट्राडम में पहुंचने वाला था।

इस कारवां के सदस्यों से बढ़िया हमराही कौन मिल सकते थे? नैन सिंह ने ट्राडम में एक मकान किराए पर लिया और बहुत उम्मीद के साथ उस दिन का इंतजार करने लगा, जब वह इस कारवां के साथ आगे ल्हासा की ओर बढ़ेगा। 25 से अधिक दिन तक उसे ट्राडम में इंतजार करना पड़ा। इस कारण उसे आराम करने के साथ-साथ तिब्बती भाषा तथा संस्कृति को सीखने-समझने का अवसर मिला। ऐसे मौकों का

अधिकतम सदुपयोग करने में वह कभी नहीं चूकता था। यद्यपि यह सब वह अपनी डायरी में अंकित नहीं कर सका परंतु निश्चय ही तिब्बत संबंधी उसकी समझ और गहरी हुई होगी।

2 अक्टूबर 1865 को जब लोपचक (सदियों से हर तीन साल में लद्दाख की ओर से ल्हासा सरकार के लिए जाने वाला उपहार लोपचक कहलाता था। लद्दाख के लिए हर साल ल्हासा से आने वाला मिशन च्हावा–ब्रिक टी के कारण–कहलाता था। इससे तिब्बत तथा लद्दाख दोनों की स्वायत्तता तथा मधुर संबंधों का भी पता चलता है। डोगरा काल में भी यह क्रम चलता रहा। लोपचक का सामान एक तर्जुम से दूसरे तर्जुम तक बेगारी के अंतर्गत पहुंचाया जाता था) के प्रमुख का एक सहायक छिरंग नोरफेल (नोर यानी दौलत और फेल यानी बढ़ना) सामान से लदे 70 याकों तथा 12 आदमियों को लेकर ट्राडम पहुंचा तो नैन सिंह ने उससे दोस्ती करने में देर नहीं की। नैन सिंह ने छिरंग नोरफेल को अपने डेरे में आमंत्रित कर बड़ी खातिर के साथ उसे खाना खिलाया। अपने को खुनू यानी किन्नौरी बताकर नैन सिंह ने अपनी ल्हासा जाने की इच्छा उसे बताई।

छिरंग नोरफेल ने वादा किया कि वह न सिर्फ नैन सिंह को अपने साथ ले जाएगा बल्कि गर्दिश के मौकों पर वह नैन सिंह को अपना नौकर भी बता देगा। नैन सिंह को इतना ही तो चाहिए था। अगले दिन 3 अक्टूबर 1865 को कारवां ल्हासा को चला। यहां पर 70 याक तथा कुलियों को बदला जा चुका था। नैन सिंह का सामान भी याकों पर लाद दिया गया था। पहले रास्ता विशाल सांगपो (ब्रह्मपुत्र) नदी के अगल-बगल यानी बाईं ओर था। फिर सरकाजोंङ तक नदी दक्षिण पूर्व को घूमकर रास्ते से दूर हो गई थी।

3 अक्टूबर को थुक्यू, 4 को श्रीकार्पो, 5 को नीकू तरजुम में डेरा डाला गया। यहां पर मिंछयू नदी ब्रह्मपुत्र में मिलती थी। यहां से नए याक और कुली आ गए थे। 6 अक्टूबर को जंगुग तथा 7 अक्टूबर को ज्यालुंग नामक स्थान पर डेरा डाला गया। 8 अक्टूबर को यह लद्दाखी कारवां सरकाजोंङ पहुंचा। यहां तिब्बती अधिकारियों द्वारा नैन सिंह तथा उसके नौकर से पर्याप्त पूछताछ की गयी। लेकिन किसी के द्वारा भी उसे या उसके नौकर को पहचाना नहीं जा सका। छिरंग नोरफेल ने यहां यह कह दिया कि नैन सिंह तथा उसका नौकर दोनों उसके किन्नौरी नौकर हैं। तब हाकिम ने कुछ नहीं पूछा। यह नैन सिंह की एक और सफलता थी।

इससे अधिक दिक्कत यह थी कि लंबे इंतजार के कारण उसकी जमा पूंजी घटती गई थी। पर इन सभी को नैन सिंह स्वाभाविक दिक्कतें मानता था। 9 अक्टूबर को साछयू सांगपो के किनारे नागलिंग में, 10 को ग्याल्हा पहाड़ पार कर उपशी गांव होकर चमोकुला तरजुम में डेरा डाला। आगे के लिए नए याक तथा कुलियों के तैयार न हो पाने से अगले दिन भी वहीं रुकना पड़ा। 12 अक्टूबर को गुरल्हा पहाड़ चढ़कर तरच्युंग



नामक वीरान मुकाम में रहे। यहां उसे 40 मील पूर्व-पश्चिम को फैली बर्फानी पर्वतमाला दिखी। यह स्थान 15000 फीट ऊंचा था और नैन सिंह को यहां हजारों कियांग दिखाई दिए।

13 अक्टूबर को राकाठाजांग होकर लगातार मैदानी क्षेत्र में चलकर डाङवाचा में पहुंचे। यहां उन्हें काले रंग का एक आकर्षक पहाड़ दिखा था। 14 अक्टूबर को डाङल्हा तथा सांगवील्हा नामक पहाड़ को चढ़कर रूयन नामक जगह पर पड़ाव डाला। यहां से दक्षिण में हिमालय पर्वत नजर आते थे। 15 अक्टूबर को सांगसांगग्यादो तरजुम में डेरा पड़ा। यह स्थान 14000 फीट ऊंचा था। दो तालाब तथा बर्फीले पहाड़ यहां पर थे। तरजुंपा के एक पक्के घर के अलावा यहां सिर्फ दो छोलदारियां लगी थी। जब इस पड़ाव में छिरंग नोरफेल सो गया तो नैन सिंह आहिस्ते से उठकर तारों की पड़ताल करने निकल गया। 16 अक्टूबर को साढ़े चौदह मील चलकर गेनाम मुकाम में और 17 को बीस मील चलने के बाद सांगसांगकऊ तरजम के घर डेरा डाला गया। यह स्थान 14203 फीट की ऊंचाई पर स्थित था। यहां पर कच्चे ईटों का बड़ा मकान बना था। राका सांगपो नदी यहां से उत्तर की ओर थी। 18 अक्टूबर को कुछ पहाड़ों को पार कर कुल बारह मील चल कर यह कारवां कुकेव नामक स्थान पर रुका। यहां पर पशुचारक तिब्बती कबीलों के खेमे थे।

इस प्रकार ब्रह्मपुत्र की सहायक चारता सांगपो तथा चाका नदियों को पार कर और अनेक स्थानों जैसे सरकाजोंग, चोमूकुला, संगसंगग्याडो, संगसंगकाउ होकर यह दल 19 अक्टूबर को राटुंग, 20 को डावरिंगखाखा, 21 को बरखा, 22 अक्टूबर को किले तथा मठ वाले जाङलाचे नामक स्थान पर पहुंचा। इनमें से संगसंगकाउ 14200 फीट, राटुंग 14000 फीट तथा जाङलाचे 13580 फीट की ऊंचाई पर स्थित थे। राटुंग में गर्म पानी के स्रोत थे। ट्राडम से राटुंग तक 16 पड़ाव पार किए गए थे। जाङलाचे में एक मजबूत किला मौजूद था। यहां ग्याखांग यानी बड़ा सरकारी मकान बना था। यहां नेपाल के नेवारियों की दुकानें भी थी। स्थानीय बाजार बड़े थे और इसमें हर माल मिलता था। ब्रह्मपुत्र के किनारे के खेतों पर गेहूं, जौ, मटर, मूली, शलजम आदि की अच्छी फसल होती थी। यहीं पर नेपाल से टिगरी होकर आने वाला मार्ग भी ल्हासा मार्ग में मिलता था।

जाङलाचे से सिगात्से को माल तथा मनुष्य सांगपो नदी के मार्ग से भी ले जाए जाते थे। यह दूरी लगभग 85 मील की थी। नैन सिंह के अधिकांश साथी किश्तियों से आगे निकल गए लेकिन वह इनके साथ नहीं गया। कारण स्पष्ट था कि उसे मार्ग का अंकन करना था तथा अक्षांश, देशांतर तथा ऊंचाई आदि पता करनी थी। जाङलाचे में ही उन्हें ब्रह्मपुत्र नदी का पुनः दर्शन हुआ। यहां वे नदी को पार कर इसके दाएं किनारे आ गए।

जाङ्लाचे की औरतों का जिक्र करते हुए नैन सिंह ने लिखा था :

**''मर्दों की अपेक्षा औरतें यहां की बड़ी मिहनती होती तमाम घर की कारोवार दुकानदारी खेती वग़ैरह हल चलाने और नाव खेवने की काम तक औरतें करती मर्द लोग बड़े आरामतलव होते हुक्का पीने से सिवाय मर्द लोग और काम वहुत कम करते हैं तिस पर भी औरतें मर्दों के टहल खिदमत में ऐसी तत्पर रहती हैं कि अगर मुंह या नाक से मर्द का पानी जारी हो रहा हो तो रुमाल से पोछ देती अगर मर्द किसी दूसरे के घर में शराव पीकर वेहोश पड़ा हो तो अपने पीठ पर उठा लाती ॥''**

23 अक्टूबर को वे ज्यांल्हार्चे में रहे। 24 को कुछ और दल इनसे मिले। 25 को लगभग सवा सौ गधों में सामान लादकर वे आगे बढ़े। इस रास्ते में टसीलिंग गोंपा में रहे। 26 को ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे फुंचोलिंग शहर पड़ा। इस शहर का गोंपा बहुत सुंदर था। ब्रह्मपुत्र में लोहे का पुल था, जिसे यहां 'च्याकसम' कहा जाता था। इस पुल में जानवर नहीं जा सकते थे। 27 को घनी बस्तियों से होकर 20 मील चलने के बाद जिलुंग गांव में डेरा पड़ा। यह गांव 12800 फीट की ऊंचाई पर था। 28 को सबगेदिंग नामक बड़ा गांव मिला। यहां 400 तक घर थे। इस स्थान पर सिक्किम के उत्तर की ओर से एक नदी आकर ब्रह्मपुत्र में मिलती थी। इस दिन 26 मील चलकर च्याकरी गांव में डेरा किया।

फिर फुंचोलिंग, जहां ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी राका सांगपो ब्रह्मपुत्र में मिलती थी, तथा सालीगेडिंग होकर वे ब्रह्मपुत्र के दाएं किनारे से 29 अक्टूबर 1865 को पेनांगछ्यू तथा नारिछ्यू (सांगपो का यहां यही नाम प्रचलित था) नदियों के संगम पर बसे सिगात्से शहर, जिसे दिगर्चा भी कहा जाता था, पहुंचे। यहां नोरपेल को अपने मालिक यानी लोपचक के प्रमुख का इंतजार करना था। यह इंतजार 15 से भी अधिक दिन तक चलता रहा। नैन सिंह के लिए यह फिर तिब्बत को समझने का सुअवसर था।

## सिगास्ते में पड़ाव

11822 फीट की ऊंचाई पर स्थित सिगास्ते की एक सराय में नैन सिंह रुका। यह शहर एक मील लंबा और पौने मील चौड़ा बताया गया था। यह पेनांगछ्यू नदी के पश्चिमी तट पर तथा एक पहाड़ की जड़ पर बसा था। पास के पहाड़ में ज्यांगमार जोंग नामक एक बड़ा किला था। पहाड़ की जड़ पर ताशील्हुंपो नामक बड़ा गोंपा था। इस 'चमत्कारपूर्ण' गोंपा का घेरा एक मील में फैला था। इसके भीतर तीन प्रमुख मंदिर थे। लामाओं के आश्रम तथा धर्मशालाएं भी। इनमें तीर्थयात्री टिकते थे।

शहर के चारों ओर एक दीवार बनी हुई थी। अनेक मणिचक्र यहां लगे थे, जिन्हें लामा तथा तीर्थयात्री रोज घुमाते थे। दीवार के भीतर की ओर रेशमी कपड़े चिपकाए



गए थे। एक से दशमुखी तक मूर्तियां लगी थी। कुछ मूर्तियां नैन सिंह को अजीब तरह की लगी थी। मूर्तियों में हीरा, पन्ना, पुखराज, नीलम, लाल पिरोजा आदि नाना प्रकार के जवाहरात जड़े हुए थे। कांसे के कटोरों में डबाडब पानी भरा रहता था तथा कुछ थालों में अनाज के ढेर लगे थे। चरागदान इतने बड़े थे कि पांच सेर से लेकर दो मन तक घी उनमें समा सकता था। दीए रात और दिन लगातार जलते रहते थे। लामा लोग बड़े बड़े आसनों में बैठकर पोथी पढ़ते हुए पूजा करते थे। पूजा के साथ चाय पीते थे पर मांस नहीं खाते थे। वह लिखता है :

**''तमाशा यह है कि पूजा के समय चाय आदि खाते रहते पूजा भी करते जाते हैं लेकिन पूजा के समय मांस कोई नहीं खाता वल्के यहां तक गांस का मुमानियत है कि जिस किसी लामा ने अपने रहने की मकान में मांस खाई हो तो पूजा के समय जव तक थोड़ी सी सत्तू न फांक लेवे पूजा की पोथियों को पढ़ने न लगें सत्तू का फांक लेना कि इन लोगों का दातून और कुल्ली करना है ॥''**

उसे आकर्षक मठों और मकानों वाले तिब्बत के इस महत्वपूर्ण शहर में घूमने का मौका मिला। बाहर-बाहर शहर का दर्शन हुआ और भीतर-भीतर सर्वे कार्य। यहां पश्चिम-दक्षिण में एक किला था और चारों ओर से दीवारों से घिरे ताशील्हुनपो नामक मठ में 3300 भिक्षुओं के साथ पंजन रिंगबोचे यानी पंचम लामा, जिन्हें टर्नर ने 'ताशी लामा' कहा था, निवास करते थे। दलाई लामा के अतिरिक्त सिर्फ पंचम लामा को ही तिब्बत में बुद्ध का अवतार माना जाता था। पंचम लामा की तिब्बत में नंबर दो की हैसियत थी और उसे भी करामाती तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने वाला माना जाता था। वह किसी को वर या श्राप दे सकता था।

नैन सिंह ने लद्दाखी दल के सदस्यों के साथ 1 नवंबर 1865 को पंचम लामा के दर्शन किए। यद्यपि इस दर्शन के लिए वह बहुत उत्साहित न था। इसका स्पष्ट कारण था। जब उसने सुना कि पंचम लामा मठ में आने वाले सभी लोगों के मन की बात जान लेते हैं तब वह कुछ घबड़ाया और सकपकाया भी। पर जब 11-12 साल के खूबसूरत और नन्हे पंचम लामा को देखा तो नैन सिंह को चैन मिला। पंचम लामा तब एक ऊंचे सिंहासन पर बैठा था। उसके दाएं तथा बाएं कई लामा खड़े थे। सबने अपनी आंखें नीची की थी। नैन सिंह तथा साथियों ने भेंट सामने रखकर लामा को प्रणाम किया। लामा ने सिर पर हाथ रखकर बैठने का इशारा किया। पंचम लामा ने तीन सवाल पूछे :

क्या आपका राजा सानंद है?
क्या आपका देश सुसंपन्न है?
क्या आपका स्वास्थ्य ठीक है?

फिर एक भिक्षु ने परंपरानुसार दर्शनार्थियों के गले में खाता (रेशम का 2 फीट

लंबा तथा एक इंच चौड़ा लाल टुकड़ा) बांधा और चांदी की केतली से प्यालों में थोड़ी-थोड़ी चाय सबको दी।

सिगात्से तिब्बत का बड़ा शहर तथा व्यापारिक केंद्र था। इस शहर की जनसंख्या 3300 भिक्षुओं (नैन सिंह की पहली डायरी में यह संख्या गलती से 33000 हो गयी थी) और 100 चीनी तथा 400 तिब्बती ('हुनियों') सैनिकों सहित 20000 के लगभग थी। पास के माउरी पहाड़ से सोना निकाला जाता था। तब इस पहाड़ को खोदने की या यहां खेती करने की मनाही थी। सिगास्ते शहर तथा ताशील्हुनपो गोंपा के बीच एक विस्तृत खुला मैदान था, जिसे 'ठोम' कहा जाता था। इस मैदान में बाजार लगती थी। सुबह से शाम तक यहां चीजें बेची-खरीदी जाती थी। इसके पूर्व में अनेक माने तथा चोर्तन थे। यह मैदान हल्की ढाल के साथ 10-11 मील तक फैला था। इसमें बसासतें तथा खेत थे। पश्चिम की तरफ 16 मील लंबा मैदान था और उत्तर की तरफ 6-7 मील लंबा मैदान ब्रह्मपुत्र नदी तक चला जाता था। पेनांगछयू नदी शहर के पूर्वी सिरे पर ब्रह्मपुत्र में मिलती थी। सिगास्ते में दो दोवान (सेनापति) तथा दो जोंगपन रहते थे।

सिगात्से से नेपाल को दो रास्ते जाते थे। यहां के लोग गर्मी में नेपाल वालों से तथा सर्दियों में होर के होरपा समुदाय से व्यापार करते थे। होरपा लोग सोना, घी, नमक, ऊन, 'बुलफुली भेड़', बकरे आदि लेकर यहां आते और इसके बदले अनाज, चाय तथा कपड़ा आदि ले जाते। शहर के ज्यादातर दुकानदार बोतपा यानी सिगात्से से ल्हासा के बीच के इलाके के निवासी थे। इनके अलावा नेपाल के नेवार, खमदेश के खंपा और 'ग्यामी' (चीनी) लोगों की दुकानें भी बहुत थी।

नैन सिंह का डेरा शहर के दक्षिण में कुनसांग (सरकारी सराय की जगह) में लद्दाखियों के साथ था। नैन सिंह ने 13 बार सूरज तथा ध्रुव तारे और दो अन्य तारों के साथ अक्षांश नापा तो वह 29 अंश, 16' कला, 32'' बिकला निकला। वह बार बार इसे टर्नर द्वारा लिए गए अक्षांश से मिलाता जो 29 अंश, 4' बताया गया था :

> **''मेरा डेरा शिकाचे शहर के दक्षिण सिरे कुनखांग (सराय) नाम एक मकाम में लदाखियों के साथ था इसी मकान में मैंने सिक्सटैण्ट कम्पास से 13 दफे सूरज और ध्रुव तारा और 2 तारों से आक्षांश लिया तो बराबर 29° अंश, 16' कला, 32'' बिकला दरियाफ्त हुवा लेकिन कप्तान टर्नर साहब बहादुर ने 29° अंश 4' कला ठहराया है इसमें सन्देह नहीं कि साहब ने एकही सूरज से आक्षांश ली थी क्योंकि एकही दफे एकही ग्रह से लिया हुआ काम अक्सर लायक यकीन के नहीं हो सकता ॥''**

नैन सिंह ने सभी स्थानों की तरह यहां भी कई बार तापमान, अक्षांश, देशांतर, ऊंचाई आदि का अंकन किया। फुरसत मिलने के कारण यहां उसने नेपाली व्यापारियों को हिसाब-किताब का हिंदुस्तानी तरीका सिखा कर कुछ धन भी कमाया। इस तरह नैन



सिंह एक ओर अपनी प्रतिभा का विस्तार कर रहा था और दूसरी ओर इस प्रतिभा का इस्तेमाल भी कर रहा था।

लोपचक के मुखिया कलनछ्यांगोंबो को, जो 19 नवंबर 1865 को सिगात्से शहर में पहुंचा, नैन सिंह ने प्रभावित किया। उसने नैन सिंह को न सिर्फ अपने कारवां में रहने की स्वीकृति दी बल्कि आगे के मार्ग तथा ल्हासा में भी सहयोग का आश्वासन दिया। 29 अक्टूबर से 21 दिसम्बर 1865 तक का 54 दिन का लंबा समय नैन सिंह को सिगात्से में बिताना पड़ा। इससे उसे आराम करने के साथ तिब्बती समाज तथा तमाम आगंतुकों के मिजाज तथा मंतव्यों को समझने का मौका मिला। इसी बीच 28 नवंबर 1865 को पुराना नेपाली ऐजेंट भी सिगात्से वापस पहुंचा क्योंकि नया ऐजेंट ल्हासा पहुंच गया था पर उस दल में मानी सिंह नहीं था। जैसा पहले कहा जा चुका है, वह अस्वस्थता के कारण वापस घर लौट गया था। नैन सिंह को इससे निराशा हुई। 13 दिसंबर को वह कलन के साथ फिर पंचम लामा के दर्शन को गया और गोंपा को देखा।

यह बताना उचित होगा कि जांन कैबराल नामक जैसुइट पादरी जनवरी 1628 तथा मध्य 1631 में सिगात्से आया था। उसके साथी स्टीफन सेसिला की 6 अगस्त 1631 को यहीं मृत्यु हुई थी। सन् 1635 में सिगात्से मिशन की शुरूआत हुई। इसके बाद नवंबर 1774 में जॉर्ज बोगले यहां पहुंचा था, जो अप्रैल 1775 तक वहां रहा। 1883-84 में सेमुअल टर्नर भी यहां पहुंचा।

अंततः 22 दिसंबर 1865 को सौ गधों में लदे सामान वाला यह कारवां सिगात्से से चला। 23 दिसंबर को वे पेनांगछयू नदी के दाएं किनारे स्थित पेनाजोंग कस्बे में रहे। यहां भी एक पहाड़ पर किला था जिसमें जोंगपन रहता था। 24 दिसंबर को अनेक बसासतों से होकर एक बड़े गांव ताकचे में वे रुके। 25 दिसंबर को कई गांवों से होकर और 14 मील चलकर वे ग्यानत्से शहर की ग्यारनांग बस्ती में पहुंचे। ग्यानत्से तिब्बत का बड़ा शहर था। 12900 फीट की ऊंचाई पर स्थित ग्यानत्से की जनसंख्या नैन सिंह ने 20000 बताई थी। तिब्बत के अन्य स्थानों की तरह यहां भी किला और मठ दोनों थे। 2 जोंगपन, दो देवोन, 50 चीनी तथा 200 तिब्बती सैनिक यहां पर तैनात थे। यहां की जमीन उपजाऊ तथा चीजें सस्ती थी।

यहां से फरीजौंग होकर दक्षिण में भूटान तथा दार्जिलिंग को रास्ता जाता था। इस शहर के किनारे बहने वाली पेनांगछयू नदी तब तक जम गयी थी और इसे पैदल चलकर पार किया जा सकता था। 26 तथा 27 दिसंबर को पेनाजोंग कस्बे में विश्राम कर वे 28 को गोवजी गांव में पहुंचे। यह स्थान 13780 फीट पर स्थित था। 29 दिसंबर को साढ़े तेरह मील चल कर रलुंग गांव के पास ग्याखांग में डेरा पड़ा, जो 14000 फीट की ऊंचाई पर स्थित था। यहां खेती नहीं होती थी और पहाड़ बर्फीले थे। 30 दिसंबर को

16700 फीट ऊंचे खरोला दर्रे को पारकर जारा में निवास किया। ठंड तथा तेज हवा के कारण सबके हाथ पैर अकड़ गए थे।

31 दिसंबर 1865 यानी साल के अंतिम दिन साढ़े चौदह मील चल कर यह दल यमडौक त्सो पहुंचा। इस झील के पश्चिमी किनारे पर नांगाचेजोंग गांव में डेरा किया। इस गांव में भी किला था। यह क्षेत्र 'डोंगठल' यानी शुद्ध पशुचारकों का इलाका था। 1 जनवरी 1866 को इस झील के किनारे किनारे 18 मील चलकर नैन सिंह झील के उत्तरी तट पर स्थित प्यातेजोंग गांव में पहुंचा। यह स्थान 13700 फीट पर था। यहां भी एक किला था, जिसकी बुनियाद झील के एकदम किनारे से लगी थी।

आंशिक रूप से जमी हुई यमडौक त्सो झील का सर्वे करते समय नैन सिंह एक डाकू के हाथ पड़ गया पर लद्दाखी दल के सदस्यों के साथ ल्हासा को भाग रहे सन् 1857 के संग्राम के एक बागी मुहम्मद शाह के हस्तक्षेप के कारण उसने घोड़ा दौड़ाकर अपने को बड़ी चतुराई से बचा लिया। डाकुओं के घोड़े उस समय चर रहे थे और उनकी जीन उतरी हुई थी। वर्ना नैन सिंह के अनुसार उन दोनों का डाकुओं से बचना कठिन होता और उन्हें मार डाला गया होता। हालांकि डाकुओं ने अपने कुत्ते उनके पीछे छोड़ दिए तथा उन पर गोलियां भी चलाई। घोड़े में भागने के कारण जिस मार्ग में वह अपने कदमों की गिनती नहीं कर सका था, वह कार्य उसने वापसी में पूरा किया। नैन सिंह के शब्दों में :

**"ता. 2 के रोज सवेरे प्यातेजोंग से 11 मील ईशान कोण की ओर यामडोकछो झील के किनारे 2 चलकर डैमालुंग गांव पर डेरा पड़ा लेकिन इस रोज रास्ते में झेकपा (गारतगरो) लोगों के हाथ से मुझे परमेश्वर ही ने बचाया क्योंकि रास्ते में मैं अपने साथी लदाखियों के साथ कम चलता छिपछिपकर दूर्बीन से काम हासिल करने को अक्सर अकेला चलता उस रोज मेरे रानों में दर्द हो जाने के वाइस मैंने सवारी के वास्ते घोड़ा किराय ले रक्खी थी रास्ता नापने वावत समझाकर नौकरको आगे लदाखियों के हमराह भेज दिया इतिफाकन था कहीं यामडोकछो झील के किनारे गारतगरों की डेरा जो पड़ी थी एक ने आकर मेरे घोड़े की वागडोर पकड़कर मुझसे कहने लगा कि घोड़े से उतरो दैवयोग से इतने में मुहम्मद शाह मुसलमान सन् 57 का वागी जो लदाखियों के साथ ल्हासा भागे जाता था मेरे पीछे से पहुंच गया वह शख़्स वोत की वोली नहीं जानता था उसने मुझसे पूछा कि इस शख़्स ने तुम्हारे घोड़े की लगाम क्यों पकड़ रक्खी है मैंने कहा कि यह गारतगर हैं मुझको लूटने को तय्यार हैं मुहम्मद शाह ने चिल्ला कर गारतगर की ओर कमची उठाई तों ही उस झेकपा ने मेरे घोड़े की लगाम को तो छोड़ दिया मगर तलवार मियाने से निकालकर उसके मारने को दौड़ा मैंने फुरसत जो पाई घोड़े को कोढ़ा मारकर चल दिया मेरे पीछे 2 मुहम्मद भी**



**दौड़ आया इतने में वहुतसे गारतगर लोग दिखाई दिए वहुत से कुत्ते वड़े 2 हमारे पीछे छोड़दिए वाद दो फैर वन्दूक की भी किईं लेकिन हमको न लगा घोड़े दौड़ाते हुवे तुरंत डैमालुंग गांव में पहुंच गए। उस वक्त उन गारतगरों के घोड़ों की जीनपोश उतारी हुई थीं घोड़े घास चुगने को छोड़ रखे थे। और वे भी हमारे नाईं सवार होते तो उन्होंने हम दोनों को मार डाला होता।।"**

यमडौक त्सो नाम की यह विशाल और सुंदर झील नैन सिंह के अनुसार 30 मील लंबी और 20 मील चौड़ी थी तथा समुद्र तल से 13500 फीट की ऊंचाई पर स्थित थी। नैन सिंह ने अपनी डायरी में इस झील के बीच में स्थित पहाड़ को 20 मील लंबा कहा था। नदी नुमा इस झील की चौड़ाई 2 से 3 मील बताई गई थी। झील के दोनों किनारों पर गांव बसे थे। नैन सिंह के विवरण के आधार पर मांटगोमरी ने इसका घेरा (सरकमफरेंस) 45 मील बताया था। इसका पानी साफ था और इसमें पर्याप्त मछलियां थीं। झील के बीच में लगभग 3000 फीट ऊंचा पहाड़ था, जिसमें गांव बसे थे और मठ भी स्थापित थे। इस पहाड़ का सर्वोच्च बिंदु 16000 फीट तक की ऊंचाई का बताया गया था। नदी के इस विशाल द्वीप में नाव से ही जाना संभव था। नैन सिंह चाह कर भी इस झील या इसके बीच में स्थित पहाड़ की परिक्रमा नहीं कर सका।

2 जनवरी 1866 को ग्यारह मील चल कर वे झील के किनारे किनारे डैमालुंग गांव में पहुंचे। इसी दिन वह झेकपा डाकुओं के हाथ से बचा था। 3 जनवरी को डैमालुंग में ही आराम कर 4 जनवरी 1866 को उन्होंने खंबाला पर्वत पार कर 'चांग देश' से 'ऊ देश' यानी ल्हासा क्षेत्र में प्रवेश किया। अगले तीन दिन वे 11334 फीट की ऊंचाई पर स्थित छयुशुल गांव में डेरा डाले रहे। 8 जनवरी को कीछयू दरिया के किनारे छावोनांग गांव में रहे। 9 जनवरी को अनेक बसासतों से होकर साढ़े बारह मील चलकर वे नेतांग गांव के पार ग्याखांग गांव में पहुंचे।

10 जनवरी 1866 बुद्धवार को साढ़े दस मील चलकर कीछयू दरिया के दाएं किनारे सिंगदोंग खारजोंग में खाना खाकर और फिर पांच मील चलकर यह कारवां ल्हासा (ल्हा-देवता, सा-स्थान) शहर पहुंचा। नैन सिंह ने डोंबाखांग मुहल्ले में डेरा किया। तब नैन सिंह को देहरादून से चले ठीक एक साल पूरा हो गया था। तिब्बत के इस सर्वाधिक पवित्र, चर्चित और वर्जित राजधानी शहर में नैन सिंह तीन माह से अधिक समय तक रहा। उसकी डायरी में ल्हासा का अत्यंत रोचक तथा विस्तृत वर्णन आया है।

## ल्हासा शहर

ल्हासा शहर के विधिवत् अध्ययन तथा सर्वेक्षण के लिए यह जरूरी था कि नैन सिंह को कोई सुरक्षित आवास मिल जाए। कुछ ही दिनों में नैन सिंह ने दो कमरे का मकान

किराए पर लिया, जिसमें एक कमरा अक्षांश, देशांतर नापने तथा मौसम के परीक्षण के लिए सुरक्षित रखा गया। उसने ल्हासा की समुद्र तल से ऊंचाई 11700 फीट बताई थी। पश्चिमी पहाड़ी में स्थित पोटाला नामक मजबूत महल तथा मठ उसे अलग से नजर आ गया था, जहां मुख्य लामा गुरु यानी गेवारिंगवोछे तथा उसके नायब ग्यालबो निवास करते थे। शहर के पश्चिम में कोंत्यालिंग नामक गोंपा और च्याकपोरी नामक पहाड़ का एक टीला था। देबुंग नामक मठ में 7700 लामा रहते थे। इसी बीच वह पहाड़ी पर स्थित सेरामठ में गया, जहां आभूषणों और रत्न जटित मूर्तियों से भरे मंदिर के परिसर में कुल 5500 भिक्षु निवास करते थे। यहां अनगिनत पुस्तकें तथा अत्यंत सुंदर मूर्तियां थी।

दो और इमारतें ल्हासा की पहचान थीं। ढाई मील के घेरे में फैले ल्हासा के मध्य में स्थित मंदिर, जो मशींद्रनाथ, झियो तथा फोकपो चेंद्रा तीन नामों से जाना जाता था, को नैन सिंह ने बहुत सुंदर बताया था। इसकी छत सुनहरी थी। इसमें सोने तथा पीतल की सुंदर मूर्तियां थी। इस परिसर के साथ वास्तव में ल्हासा की पहचान ही जुड़ी थी। आज इतने परिवर्तनों के बाद भी यह ल्हासा की पहचान बनी हुई हैं। शहर के उत्तर में तक्यालिंग छूमोलिंग गोंपा तथा किले के सामने इसके पास ही चीन के अंवान का बड़ा मकान था, जिसमें ग्यामी अंवान तथा उसकी फौज रहती थी। ल्हासा से 14 मील पूर्व में एक पहाड़ की जड़ पर डाकयार्पा नामक गोंपा पहाड़ की गुफा में स्थित था और ल्हासा से 26 मील पूर्व में किछ्यू नदी के किनारे गलदन नामक पहाड़ में स्थित एक और सुंदर गोंपा में नैन सिंह गया था। इस गोंपा में अनेक मूर्तियों के साथ तलवारें, धनुष-वाण तथा बंदूकें भी थीं। गोंपा में 3300 लामा रहते थे और इनमें गलदनठिवा ओहदे का लामा सबसे बड़ा माना जाता था।

और भी अनेक बहुत सुंदर मठ वहां थे। उसने अधिकांश को देखने का प्रयास किया। नैन सिंह का अंवेषक मन ल्हासा से दक्षिण पूर्व को ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे यात्रा करने को तैयार था पर जब बताया गया कि बिना दर्जन भर सशस्त्र व्यक्तियों के उस ओर जाना खतरनाक है तो उसे इस अभियान के विचार को त्यागना पड़ा। इस कार्य को करने का मौका उसे आठ साल दस माह बाद अगली ल्हासा यात्रा में ही मिलने वाला था, जब वह यहां से तवांग होकर गुवाहाटी पहुंचा था।

7 फरवरी 1866 को नैन सिंह 13 साल के दलाई लामा, जिसे वह 'सारा हुण देश का मालिक गेवारिगपोछे' तथा 'साक्षात गुरु नागार्जुन का औतार', 'जो अमर है—जब उसका बदन बुढ़ापे में जीर्ण हो जाता है तो अपना शरीर बदल लेता है' आदि कहता है, का दर्शन करने गया। 6 फीट ऊंचे सिंहासन पर विराजमान दलाई लामा ने पंचम लामा की ही तरह उपस्थित लोगों से तीन सवाल पूछे। फिर सभी के गले में खाता (रेशम का टुकड़ा) बांधा गया और चाय प्रस्तुत की गई। सभी ने पोटाला महल को कुतूहल के साथ देखा। उससे ठीक 20 साल पहले जब एवरिस्ट रेजिस हक तथा जोसेफ गैबे



नामक फ्रांसीसी पादरी ल्हासा में थे तो तब भी वहां 9 साल का दलाई लामा था। इससे दलाई लामा के कम उम्र में ही दिवंगत हो जाने की चर्चा शुरू हुई थी। नैन सिंह ने विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया था :

**''सारा हुणदेश का मालिक गेवारिंगवोछे लामा जिसको क्योंगोनरिंगवोछे भी कहते हैं गिना जाता है जिसको साक्षात गुरु या नागाअर्जुन का औतार मानते हैं लेकिन वह सिर्फ पूजने के लिए है और कहते हैं कि वह अमर है जव उसका वदन वुड़ापे से जीर्ण हो जाता है तो अपना शरीर वदल लेता है लामा जो शरीर छोड़ता है तो लाश को सुखलाकर उसके वाहर से सोने का खोल चढ़ाकर यानि कि उस लाश को सोने के छ्योर्तन (स्तूव) के अन्दर रखकर पूजा के वास्ते मंदिर में रखते हैं ऐसे पुराने लाशों के सोने के वने हुए 9 स्तूवों को मैंने पोतोल्हा किले के अन्दर अपने आंखों से देखा जो अनुमान छः फुट ऊंचे नौ फुट घेरे के वने हैं जिनपर नीलमणि और मूंगा आदि नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए निहायत खूवसूरत दर्शनीय वने हैं—लामा गुरू यानि गवारिंवोछे लामा के नीचे उसका नायव ग्यालवो और ग्यालवो के तहत में चार कलन (वजरी) होते हैं विशेशकरके इन्तिजाम राज्य काज का वही चार वजीरों के हाथ में रहता इन चार वजीरों की पंचायत की अदालत को काश्याक ल्हक्या कहते हैं—लेकिन सिवाय लामा गुरू और राजा वजीरों के हकीकत में विलकुल इख्तियार उस सूवेदार अम्वा का है जो वादशाह चीन के ओर से ल्हासा में रहता इस अम्वान से राजा वजीर सव लोग दवे रहते हैं—ल्हासा में यह वात मशहूर और मारूफ है कि (गेवारिंगवोछे) लामा जिसका वर्णन पहिले लिख चुके हैं जव वह काल पाकर मर जाता है तो मरने से पहिले वह अपने अमीरों को कह देता है कि मैं फलाने देश में जन्म लूंगा तुम मुझे ढूंड लेना अगर मरने के समय उसने कहने को फुरसत न पाई हो तो समये गोम्वा के लामाओं में (ल्हावा) से गेवारिंगवोछे लामा के जन्म वावत दर्याफ्त किया जाने पर वह ल्हावा फौरन वतला देता है कि गेवारिंगवोछे लामा ने फलाने मुल्क में जनम लिया है ल्हासा के (देवाज्युंग) को जव खवर हो जाता है कि फलाने मुल्क में गेवारिंगवोछे लामा ने जनम लिया है तो गेवारिंगवोछे लामा के दिन से वरस रोज या छः महीने के अन्दर जितने लड़के उस मुल्क में पैदा हुए हों उन लड़कों का नाम अलग 2 परचाओं में लिखकर ले आते हैं और हर एक नाम के काग़जों की गोलियां वनाकर एक तंग मुंह वाली हांडी में रखकर उस हांडी को हिलाते जिसके नाम की गोली हांडी से उछल कर ऊपर को निकले उसी वालक को वड़ी धूमधाम से लाकर अगले लामा की गद्दी पर विठाते हैं फिर उसको ऐसे ढव से सिखाते पढ़ाते हैं कि वह सारी वातें अगले लामा के वक्त की वतलाने लगता और उसके चेले और सव**

**लोग निश्चय मान जाते हैं और यह भी दस्तूर है कि जिस मकान में गेवारिंगवोछे लामा पैदा हुआ हो उस मकान को ढहाकर उस जगह पर ल्हाखांग (जिसके शरीर पर देवता चढ़ जाय) तामीर करके उसके अंदर उसकी और अगले लामाओं के और शाक्यमुनि की मूर्ति वनाकर पूजा के वास्ते रख देते हैं और उस लामा के कुनवे के तमाम रिश्तेदारों को ल्हासा में लाकर डंखार की पदवी और जागीरें दी जाती हैं--इस सवव से इलाके हुणदेश में डुंखार कौम सवसे वड़ा खानदान के कहलाते हैं--**

**कोई कहते हैं गेवारिंगवोछे लामा के इवतिदा से 13 औतार हो चुका है कोई कहते हैं कि आठ औतार हुए हैं इस वात पर मुझे सन्देह है लेकिन इतना तो लोग ठीक 2 कहते हैं कि सवसे पहिला लामा क्यागोनडावा हुआ था उसके वाद छुठिमग्या जो उस से पीछे लोतालोतोक ग्याजे इसके वाद केसांग्याजो लामा चौथी औतार में पैदा हुआ था इसी लामा के समय सन् 1720 में ल्हासा वगैरह इलाका तिव्वत शाह चीन के आधीन हो गया''**

आगे वह पांचवे दलाई लामा के बारे में बताता है :

**''केसांग्याजो के वाद रिंगजेन छेयांग्याजो लामा वड़ा अय्याश और शरावी होकर गुजरा यद्यपि गेवारिंगवोछे लामा को पोतोल्हा किले से वाहर निकलने की मुमानियत है और व्याह करना शराव पीने का तो विल्कुल अधिकार नहीं होता तथापि यह लामा रिंगजेनछूयांगग्याजो भेष वदलकर शहर ल्हासा के चकले खानों में जाकर रंडियों के साथ गीत-गाता और डमडेन वजाता कहते हैं कि इस लामा ने एक भारी किताव गीत का निहायत उमदा तसनीफ किया यह लामा यहां तक वदनाम हो गया था कि अम्वान चीन ने जो ल्हासा में रहता था इसकी वदनामी वादशाह चीन तक पहुंचाई तव वादशाह चीन ने इस लामा को सज़ा देने के लिए अपने हुजूर में हाजिर करने का हुक्म फर्माया जव इसको पकड़ कर चीन ले जाते थे ल्हासा से दो महीने के राह खमलिदोंग पहुंचकर लामा ने प्राण छोड़ दिया इस लामा के करामात का यहां तक वयान करते हैं कि मरने के समय गरम चाय का एक चीनी के पियाले को दोनों हथेलों से दवाकर भूप के गोले के मानिन्द वनाकर चीनी सिपाहियों के साथ वादशाह चीन के पास भेज दिया जव वह पियाला कोई मुद्दत वादशाह चीन के पास पहुंचा तो वादशाह के हाथ पर पहुंचने मात्र पियाला चाय का मुंह अपने आप खुल गया पर तमाशा यह था कि चाह जो कातों गरम था वादशाह ने तअज्जुव कर करामात लामा की समझकर पी ली--खमलिदांग में लामा ने मरने के वक्त अपना माशूक को मुहव्वत का यह गीत गाया था जिसका अर्थ यह है कि हे सादे सफेद सारस**



**पक्षी अपना पर मुझे दे मैं चीन को वहुत दूर नहीं जाता हूं लिदांग से लौट आऊंगा--''**

ल्हासा में लद्दाखी, कश्मीरी, अजीमाबादी, नेपाली, सिक्किमी, भूटानी, चीनी तथा भारत के विभिन्न हिमालयी हिस्सों के व्यापारी पर्याप्त संख्या में आए रहते थे। ल्हासा की बाजार में चीन से रेशम, कालीन तथा चाय; खाम (पूर्वी तिब्बत) से कस्तूरी; भूटान से चावल; सिक्किम से तंबाकू; लद्दाख तथा कश्मीर से केशर और दार्जिलिंग से भारत में बने तमाम सामानों के अलावा कपड़ा, घोड़े तथा याक के जीन तथा नगीने आते थे। यह सब विनिमय व्यापार का विकसित रूप था और दूसरे चरण में बहुत से सामान उन देशों तक भी पहुंचते थे, जो इस व्यापार में सीधे शामिल नहीं होते थे।

यहां 1000 तिब्बती सैनिक तथा 500 अन्य सैनिक तैनात थे। नैन सिंह ने स्वयं 7 तोपें भी देखी थीं। ल्हासा के अब्दुल वाहब नामक व्यापारी ने नैन सिंह को बताया था कि जब सन् 1854 में चीन के बादशाह के आदेश से ल्हासा की जनगणना की गई तो लामाओं, बच्चों तथा बाहरी व्यापारियों को छोड़ कर इस शहर की जनसंख्या 15000 (9 हजार स्त्री तथा 6 हजार पुरुष) बताई गई थी। तिब्बत का यह जनसंख्या परिदृश्य बहु-पत्नीत्व प्रथा के प्रचलन को भी उजागर करता था। लेकिन नैन सिंह को तब समस्त व्यापारियों तथा आगंतुकों को लगाकर ल्हासा की कुल जनसंख्या 50 हजार के लगभग लगी। कदाचित् विभिन्न व्यापारियों तथा तीर्थयात्रियों के दलों की ल्हासा में उपस्थिति के कारण भी उसे ऐसा लगा होगा।

इसी बीच तिब्बतियों का नया साल (लोसार) 15 फरवरी 1866 को आरंभ हुआ। तीन दिन तक चलने वाले इस उत्सव में नैन सिंह भी शामिल हुआ। तिब्बतियों की उत्सव प्रियता तथा बौद्ध संस्कृति के तिब्बती स्वरूप का उसे साक्षात् अनुभव हुआ। उसने रस्सी में बहुत ऊंचाई से फिसलने वाला जोखिम भरा खेल भी देखा, जिसमें अक्सर फिसलने वाले की मृत्यु भी हो जाती थी। जीवित बचे रहने पर उसे इनाम मिलता था। भौगोलिक तथा खगोलीय सर्वे के लिहाज से ये सब गौण चीजें थीं पर तिब्बती समाज-संस्कृति की जानकारी इनसे मिलती थी। पीछे-पीछे वह निरंतर सर्वे कार्य करता रहा। इसके साथ ही लोगों के रहन-सहन, खान-पान, परंपराओं, भाषा, लोक जीवन, खेती, सिक्के, विविध व्यापारियों के तौर-तरीकों पर उसकी नजर निरंतर जमी रही। दलाई लामा तथा उसके अवतार की प्रचलित अवधारणा पर भी उसने लिखा था :

**''सन् 1720 ईस्वी में यह मुल्क तिवत वादशाह चीन के आधीन हुआ था तव से सन् 1866 ईस्वी तक पांच लामा ल्हासा के गद्दी पर वैठे परन्तु छोटी ही उम्र में मर गए सिर्फ लामा क्यांगोवडनवा की उम्र 80 वरस की हुई थी इसके वाद सात लामाओं की किसी की वीस किसी की तीस हद्द दरजा चालीस वरस तक जीते थे औसत हिसाव से हर एक लामा की उम्र 35 वरस करार देने से 7**

**लामाओं की समय 245 वरस होती है और इस जोड़ में पहिला लामा क्योंगोनडावा की उम्र 80 वरस और सब पिछला क्योंगोनठेलेग्याजों की उम्र 13 वरस जो सन् 1866 ईस्वी में था जो जोड़ने से 338 वरस इन लामाओं की इवतिदा की समय ठहरती है और दूसरी हिसाव से कि पहिला लामा क्योंगोनडावा की उम्र 80 वरस की हुई थी उससे वाद लामा छुटिमग्याजो और नोमदोग्याजो और केसांग्याजो तक तीन लामाओं की उम्र फी लामा 35 करार देने से 105 वरस होते हैं और केसांग्याजो के समय सन् 1720 ईस्वी से चीन लोगों का आना सावित है तो सन् 1720 ईस्वी से सन् 1866 ईस्वी तक 146 वरस होते हैं इस हिसाव से भी ये नौ लामाओं की इवतिदा की समय 331 वरस ठहरती है कहते हैं कि क्योगनडावा से पांच लामा पहिले पैदा हो गए लेकिन वे गुप्त रूप से पैदा हुवे विशेषकरके लोगों में मशहूर न हुए इसी सवव से पांचवा लामा क्योंगोनडावा से लामा ठेलेग्याजो तक 8 लामा जाहिर और मशहूर हुए हैं क्योगोनडावा से पहिले के पांच लामाओं को शुमार करके कुल 13 जनम लामाओं के गिनते हैं–''**

नैन सिंह का अधिक दिनों तक यों ही अजनबी बना रहना संभव न था। एक दिन दो कश्मीरी मुस्लिम व्यापारियों ने नैन सिंह से उसके बारे में पूछा। सदा की तरह उसने अपने को बुशहरी बताया पर अंत में इन व्यापारियों ने उससे सच कहलवा दिया। साथ ही आर्थिक मदद देने में भी संकोच नहीं किया। पर नैन सिंह अब अधिक शंकित तथा सावधान हो गया और उसने ल्हासा छोड़ने का निश्चय किया। इस बीच दो और घटनाओं ने नैन सिंह को डरा दिया। पहली घटना में एक चीनी व्यक्ति का दो लामाओं के बीच लड़ाई कराने के कारण सिर से धड़ अलग कर दिया गया था। दूसरी घटना थी नैन सिंह को किरोंग के जौंगपौन का दिखाई देना। यह व्यक्ति नैन सिंह को जानता था। यदि यह नैन सिंह को देख लेता तो कठिनाई पैदा हो सकती थी। इस भय के कारण नैन सिंह ने मकान ही बदल लिया।

इस तरह तीन माह ग्यारह दिन (कुल लगभग 100 दिन) तक ल्हासा में रह कर 21 अप्रैल 1866 को नैन सिंह ल्हासा से वापस हो रहे एक व्यापारिक दल में शामिल हो गया। वापसी में पारंपरिक मार्ग से ग्यानत्से, सिगात्से आदि होकर वह ट्राडम पहुंचा। यहां से वह सर्वथा नए और अपरिचित मार्ग में चला। ट्राडम से आगे उसने फेरी द्वारा काचू सांगपो नदी पार की। यह नदी बड़ी थी हालांकि नैन सिंह के अनुसार यह चार्ता सांगपो से कुछ छोटी थी। इसके बाद टोटू, डुकसम, टमजन, ग्यामजर आदि स्थानों से होकर उसने 15500 फीट ऊंचे मारिअम ला को पार किया। यह दर्रा बड़ी सीमा तक ब्रह्मपुत्र तथा सतलज नदियों का जल विभाजक था।

यहां से वह उस क्षेत्र में आया जहां उसके पूर्वज सदियों से आते रहे थे। आगे



ग्युनकुड झील आई। फिर थोकचन स्थान से होकर वह कैलास-मानसरोवर क्षेत्र की ओर मुड़ गया। पहली बार वह पश्चिमी तिब्बत के सर्वाधिक पवित्र क्षेत्र में पहुंचा और मानसरोवर, राकसताल, कैलास तथा गुरला मांधाता पर्वत के दर्शन किए। इस प्रकार वह 17 जून 1866 को अपने पूर्वजों के सुपरिचित स्थान दारचिन पहुंचा, जो बरखा के मैदान के उत्तर में स्थित कैलास पर्वत की परिक्रमा हेतु आधार शिविर होने के साथ साथ एक सुपरिचित मंडी भी था।

इस लंबी और कठिन यात्रा का यह मार्ग लगातार 14000 से 16000 फीट की ऊंचाई पर था, जिसका औसत आल्प्स पर्वत के सर्वोच्च शिखर माउंट ब्लॉक की ऊंचाई के लगभग बराबर था। मौसम का निरंतर विपरीत रहना तथा तापमान में निरंतर बदलाव आना इस इलाके की सामान्य विशेषता थी।

ल्हासा से वापसी की यह 600 मील की यात्रा भी अपनी तरह की पहली थी। उसकी रपट में इस बीच की नदियों, तालाबों, पहाड़ों, दर्रों, जानवरों, बसासतों, वनस्पतियों और खेती का विस्तृत वर्णन हुआ है। यहीं दारचिन में दारमा कुमाऊं के सूपिया सौपाल (या सीपाल) ने नैन सिंह के कर्ज को चुकाने में मदद की। बाद में ज्ञानिमा से किंग्रीबिंग्री ला की राह अधिक बर्फ पड़ जाने के कारण वहां से जाना संभव नहीं हुआ।

अतः नैन सिंह नीती दर्रे से आया, जहां बर्फ कुछ कम थी। नीती गांव, लपथल टोपीढूंगा तथा गंगापानी आदि होकर वह 29 जून 1866 को ऊंटाधूरा पार कर अपने गांव मिलम पहुंचा। तभी उसने पहली बार खिंगर तथा ऊंटाधूरा जैसे दर्रे तथा पश्चिमी धौली, कियोगाड़ और गुनखा जैसी नदियों को देखा और पार किया था। खिंगर पड़ाव में उसकी मुलाकात उस क्षेत्र में यात्रा कर रहे मेजर ब्रेरीटोन से हुई। फिर वह निचले गांवों से अल्मोड़ा होते हुए अंततः देहरादून तथा मसूरी पहुंचा।

तत्पश्चात् मानी सिंह ने गरतोक तक का शेष रह गया सर्वेक्षण किया और नैन सिंह की गिरवी रखी गयी घड़ी को भी वह वापस लाने में कामयाब हुआ। इस यात्रा में मानी सिंह एक प्रकार से नैन सिंह के तहत आ गया था। अब नैन सिंह के परामर्श के अनुसार मानी सिंह को काम करना पड़ता था। हिमालयपारीय सर्वेक्षण के इतिहास के इस उपलब्धियों भरे साल में इंग्लैंड में जॉर्ज एवरेस्ट की मृत्यु हुई थी।

## 25 लाख कदम

नैन सिंह के लिए एक सर्वथा अकेले तथा स्वतंत्र सर्वेयर/अंवेषक के रूप में यह यात्रा इसलिए बड़ी महत्वपूर्ण थी क्योंकि पहली बार कोई सर्वेयर औपनिवेशिक व्यवस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से ल्हासा पहुंचने में सफल हुआ था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह दो सदस्यों वाला (नैन सिंह तथा उसका नौकर) दल था और इसका

आयोजन पूरी तरह गुप्त रूप से हुआ था। इस अभियान में मांटगोमरी द्वारा तैयार किए गए प्रार्थना चक्र तथा जप माला का प्रयोग किया गया था। इनके कारण तिब्बती अधिकारियों को नैन सिंह के बौद्ध होने का प्रमाण तो मिल ही जाता था। प्रार्थना चक्र के भीतर छोटे उपकरण छिपाए जाने भी संभव थे। जब जरूरत पड़ी वह बौद्ध भिक्षु बना और जब जरूरत पड़ी उसने अपने को बुशहरी बताने और प्रमाणित करने में देर नहीं की।

इस यात्रा का मार्ग 10 से 16 हजार फीट के बीच तक की ऊंचाई के क्षेत्रों से होकर जाता था। इस अभियान में नैन सिंह ने कुल 1200 मील की यात्रा संपन्न की और लगभग 25 लाख (ढाई मिलियन) कदम नापे थे। नैन सिंह का एक कदम 31 (इकत्तीस) इंच का था और एक मील में वह 2000 (दो हजार) कदम चलता था। वैसे नैन सिंह के कदमों की लंबाई 30 से 33 इंच तक पाई गई है। यह चढ़ाई, उतराई तथा मार्ग के स्वरूप पर निर्भर थी। उसके कदम की औसत लंबाई 31.5 इंच बताई गई थी। लगातार 18 माह तक वह इस अभियान में उपस्थित रहा। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि इस अभियान का बड़ा हिस्सा जाड़ों में संपन्न किया गया था। यह मौसम हिमालय तथा तिब्बत में ज्यादा ही कठिन होता था।

इस अभियान में नैन सिंह द्वारा 'इलियट 6 इंच रेडियस सेक्सटैंट नंबर 44' से 99 स्थानों पर अक्षांश (लेटिट्यूड्स) अंकन किए गए थे। यह एकमात्र सेक्सटैंट था, जिसे वह ल्हासा तक ले जा सका था। इस तालिका के कालमों का क्रम इस प्रकार था: दिनांक, समय, स्थान का नाम, आब्जेक्ट आन मेरीडियन, अपर या लोवर ट्रांजिट, डबल एल्टिट्यूड इंडैक्स एरर, डिड्यूस्ड लेटिट्यूड्स, मीन लेटिट्यूड्स तथा रिमार्क्स। कुल 65 स्थानों पर क्वथनांक (ब्वायलिंग प्वायंट) लिए गए थे, जो 22 जुलाई 1865 से शुरू होकर 3 जून 1867 तक की अवधि के थे। इसके अलावा सिगात्से (11800 फीट) के 14 से 20 नवंबर 1865 तक तथा ल्हासा (11700 फीट) के 9 फरवरी से 9 मार्च 1866 तक के तापमान बहुत विस्तार से लिए गए थे।

नैन सिंह ने यह भी बताया था कि ल्हासा तथा सिगात्से में उसने आसमान में बिजली चमकती हुई या घरों तथा बसासतों में गिरती हुई कभी नहीं देखी थी। ज्यादा बर्फ गिरना अच्छा नहीं माना जाता था। इसे देवताओं की नाराजगी समझा जाता था। उसके तीन माह के ल्हासा प्रवास में वहां दो बार मात्र 3-3 इंच बर्फ गिरी थी। ल्हासा में भूकंप आने की नैन सिंह को कोई जानकारी नहीं मिली (उसकी यात्रा के 30 साल बाद तिब्बत के इस हिस्से में भूकंप आया था जिसका असर पूर्वोत्तर भारत में भी रहा था) जबकि डरी खोरसम (पश्चिमी तिब्बत) में हल्के भूकंपों के आने की बात पता चली थी। उसने ल्हासा क्षेत्र में तेज हवाएं चलने के बारे में लिखा था।

नैन सिंह द्वारा ल्हासा नदी तथा ब्रह्मपुत्र के संगम से ब्रह्मपुत्र के स्रोत के पास



स्थित मारियम ला तक की यात्रा से अन्य तथ्यों के साथ एक बात यह पता चल सकी थी कि इस क्षेत्र से निकलने वाली नदियों में ब्रह्मपुत्र (सांगपो) सबसे बड़ी थी। सिंधु की तुलना में इसमें पुल बहुत कम थे। इस नदी में 13500 फीट की ऊंचाई पर नाव चलाई जा सकती थी। जोकि सिंधु नदी में स्कर्दो (लद्दाख) तक संभव नहीं थी। ल्हासा के करीब ब्रह्मपुत्र के पानी का बहान 35000 क्यूबिक फीट प्रति सेकेंड था। ल्हासा नदी तथा ब्रह्मपुत्र के संगम पर यह नदी लगभग उतनी बड़ी हो जाती थी, जितनी सिंधु अटक में होती थी। तब हरद्वार में दिसंबर में 5000 से 5500 क्यूबिक फीट पानी प्रति सेकेंड बहता था।

ल्हासा से गरतोक तक के 22 मुख्य पड़ावों सहित कुल 58 पड़ावों का जिक्र नैन सिंह की डायरी तथा रपट में किया गया है। मुख्य पड़ावों के बीच की दूरी 20 से 60 मील तक थी। इन स्थानों को तारजुम कहा जाता था और इसकी व्यवस्था करने वाले अधिकारी को तारजुंपा। तारजुम में जानवर तथा वाहक बदले जाते थे और साथ ही आवास की व्यवस्था होती थी। कच्ची ईंटों से बने इन पड़ावों में दर्जन भर से 200 तक यात्री या व्यापारी ठहर सकते थे। तारजुंपा के पास 10-15 घोड़े तथा अनेक आदमी होते थे। इस कार्य में तारजुंपा को गांव के मुखिया यानी गांबोज मदद करते थे। पूरी यात्रा में कैंप व्यवस्था अच्छी नहीं थी।

इतनी कठिन यात्रा से तमाम तथ्यों सहित वापस लौट आने की औपनिवेशिक सरकार ने प्रशंसा की। मांटगोमरी ने नैन सिंह से मिलने के बाद जो रपट बनाई, उसके साथ भेजे पत्र में उसने रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष सर रौड्रिक मुर्किसन को अत्यंत हार्दिकता से नैन सिंह का नाम बताए बिना उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा था :

"मेरी इच्छा थी कि मैं पंडित (नैन सिंह) को प्रत्यक्ष यहां प्रस्तुत करता। निश्चय ही वह कहीं और किसी पर भी अच्छा प्रभाव डाल सकता है। वह लद्दाखियों का विश्वास पात्र बन कर पवित्र शहर ल्हासा में प्रवेश कर सका। उनकी मदद के बिना यह कार्य ज्यादा कठिन होता। पंडित हर तरह की प्रशंसा का पात्र है। उसका किया हर कार्य पड़ताल और परीक्षा में खरा उतरा है।" रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसाइटी में उसका नाम न लिए जाने के बावजूद तिब्बत सरकार को उसकी ल्हासा यात्रा की जानकारी हो गई थी। यह भविष्य के लिए संचित खतरा था।

इस यात्रा का अंग्रेजी विवरण मांटगोमरी ने रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी में 23 मार्च 1868 को प्रस्तुत किया था और सोसायटी ने इसे अपने जॉर्नल में दो लेखों (जॉर्नल आव द रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी, 1868, खंड 38) के रूप में नक्शे के साथ प्रकाशित किया था। रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी ने 25 मई 1868 को नैन सिंह को एक सोने की घड़ी उपहार में दी थी। भारत सरकार ने भी उसे पुरस्कृत किया था। दुर्भाग्य से इस घड़ी को जल्दी ही उसके एक पठान शिष्य द्वारा चुरा लिया गया था। इस

घड़ी में देवनागरी लिपि में लिखा था : 'द प्रेजीडेंट एंड काउंसिल आव द रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी आव लंदन टु पंडित नैन सिंह फार हिज ग्रेट ज्योग्रेफिकल एक्सप्लोरेसन, 25 मई 1868'।

इस अभियान के दौरान नैन सिंह के हाथ से लिखे गए सैकड़ों पन्नों को, जिन्हें सर्वे आव इंडिया के देहरादून स्थित ज्योडीय तथा अनुसंधान शाखा यानी पूर्व जी.टी.एस. पुस्तकालय में करीने से चार बड़ी जिल्दों में सुरक्षित रखा गया है, देख कर आज भी किसी शोधार्थी का सिर श्रद्धा और सम्मान के साथ झुक जाता है। इन तमाम कागजातों—दस्तावेजों को देख और पलट कर एक ओर विपरीत परिस्थितियों में और एक प्रकार से लगातार मौत से खेलते हुए काम करने का तथ्य पता चलता है। दूसरी ओर यह कि यह खतरा दो तरफ से था। एक ओर कठिन प्रकृति और बीहड़ भूगोल, साथ में तिब्बतियों द्वारा पहचान लिए जाने का सतत भय। तीसरी ओर इन दस्तावेजों से यह भी पता चलता है कि वह तापमान, अक्षांश, देशांतर, ऊंचाई, कदमों की संख्या तथा तारों की पड़ताल तक हर जानकारी को खतरे से घिरा होने के बावजूद किस तरह लगातार जमा कर रहा था। खाने, पीने तथा रहने की दिक्कतें अपनी जगह पर थीं पर असली दिक्कत हर कदम पर जान का खतरा होना था।

# 5

# ठोकज्यालुंग तक

## सोने, सुहागे तथा नमक की खानों वाला मुलुक

नैन सिंह की इस पहली असाधारण उपलब्धि के बाद औपनिवेशिक सरकार द्वारा नैन सिंह की प्रतिभा तथा क्षमता का अधिकतम उपयोग करने का निर्णय लेना स्वाभाविक था। इतनी लंबी यात्रा से वापसी का एक साल भी पूरा नहीं हुआ था कि उसे उत्तर-पश्चिमी तिब्बत के अभियान में जाने का आदेश मिला। उसे ठोक ज्यालुंग स्थित सोने, सुहागे और नमक की खानों का पता लगाने के साथ-साथ अन्य भौगोलिक जानकारियां प्राप्त करनी थीं। इस समय औपनिवेशिक सत्ता की व्यापारिक नजर मध्य एशिया से आने वाले सोने पर भी थी। यह अलग बात है कि लार्ड कर्जन का समय आते-आते सोने का यह महत्व अनेक कारणों से कम हो गया था। यह यात्रा इसलिए भी खतरों भरी थी कि तिब्बती अधिकारी नैन सिंह की पिछली यात्रा की जानकारी पा चुके थे और इस यात्रा में तमाम मंडियों में परिचित शौका व्यापारियों से सामना होने की पूरी संभावना थी। ऐसे में नैन सिंह के लिए अपने को छिपा पाना या भेष बदल कर यात्रा करना ज्यादा कठिन हो गया था।

इस अभियान के अनेक लक्ष्य थे। ल्हासा तथा गोबी के मरुस्थल के बीच के अज्ञात भूगोल की जानकारी लेना, सिंधु तथा सतलज नदियों के जलागमों की ज्यादा विस्तृत पड़ताल करना, गरतोक के पूर्व की ओर स्थित सोने, नमक तथा सुहागे की खानों का विस्तृत सर्वेक्षण करना आदि तो मुख्य थे ही, इस क्षेत्र के व्यापारिक तथा सामरिक महत्व की पड़ताल करना भी इसके लक्ष्यों में था। दरअसल यह वह क्षेत्र था जहां तीन साम्राज्यों की सीमाएं ही नहीं मिलती थी बल्कि उनके तमाम स्वार्थ भी टकराते थे।

यह दल 2 मई 1867 को मसूरी से चल कर 24 मई को बद्रीनाथ तथा 3 जून को माणा गांव में पहुंचा था। नैन सिंह लगभग 13 साल बाद अपनी ससुराल आया था। एक शर्मिला घर जमांई, जो तीन साल माणा में रह कर अपने गांव मिलम को भाग गया था, अब एक अभियान के प्रमुख के रूप में यहां आया था। 28 जून 1867 को विभिन्न

उपकरणों के साथ मानी सिंह भी माणा पहुंच गया था। मानी के आने तक नैन सिंह जी.टी.एस. के अधिकारियों के आदेशानुसार कलियान सिंह को कंपास का काम सिखाता रहा।

इस बार अधिक वर्षा के कारण जून में सरजी लामा का छपरांङ से माणा आगमन नहीं हो सका था। माणा के निवासी आश्चर्य भी कर रहे थे। 9 जुलाई 1867 को सरजी लामा का माणा आगमन हुआ और तीन दिन माणा में रहने के बाद गमगिया पत्र लेकर 13 जुलाई को सरजी लामा का दल माणा से तिब्बत को वापस गया। सरजी लामा के आगमन से नए साल का व्यापार प्रारंभ हो जाता था। जब माणा के मारछे तिब्बत जाने को तैयार हो रहे थे, तो नैन सिंह का दल भी तैयार होने लगा। लेकिन रवाना हो चुकने के बावजूद वे दस दिन तक माणा से कुछ आगे स्थित व्यासपोथी में ही ठहरे रहे। इसका कारण लगातार दस दिन वर्षा का जारी रहना और मौसम का अप्रत्याशित रूप से लगातार खराब रहना था।

जुलाई 1867 में नैन सिंह के साथ मानी सिंह और कलियान सिंह के अलावा माणा के मुकमू बड़वाल मार्छा, बुशहर के मोरंग गांव का करमसुख (वह पहले ठोक ज्यालुंग गया था), जंसकार का तोवगिया, लद्दाख के छिरंदेशी तथा पाले, जोहार के राम सिंह तथा धन सिंह भी थे। इन सात लोगों को भर्ती किया जा चुका था। नौकरों को लगा करके कुल 11 आदमी इस दल में हो गए थे। एक घोड़ा और 12 गधे ढुलान हेतु लिए गए थे और थोलिंग तक के लिए कुछ रसद–सामान माणा के लाला बड़वाल की भेड़ों पर भेजा गया था। फिर भी बोझ बचा रहा तो एक घोड़ा बोझ लादने को खरीद लिया गया। पश्चिमी तिब्बत में डाकुओं का अत्यधिक भय होने से यह दल बंदूकों और तलवारों को भी साथ ले गया था। कुछ तलवारें माणा के लोगों ने वापसी में लौटा देने के वायदे पर दी थीं।

25 जुलाई 1867 को यह यात्रा फिर प्रारंभ हुई। मूसापानी होकर आगे बढ़े और उस रात वे घासतोली में रहे, जिसे तिब्बती लोग सुमदो रिंगरिंग कहते थे। यह स्थान सरस्वती तथा शाखा नदी के संगम पर स्थित है। 26 जुलाई को चानी रौ में पहुंचे और 27 को माणा घाटी के चिड़बिटिया पहाड़ के दूसरी ओर तारै सुमदो स्थान पर रहे। 28 जुलाई को 16446 फीट ऊंचे चिड़बिटिया पहाड़ को पारकर कितरूराव नामक मुकाम में रहे। 29 को बीच के इलाके में चलकर रावोनथोक के एक मुकाम लुमरती में पहुंचने पर तिब्बती अधिकारी से पता चला कि जब तक माणा के व्यापारी अपने पधान सहित छयुर्स्का में जमा नहीं होते हैं, उन्हें आगे गरतोक की ओर नहीं जाने दिया जाएगा। यह बताना उचित होगा कि तब से 243 साल पहले इस दर्रे को जेसुइट पादरी अन्तोतियो अंद्रादे तथा मैन्युअल मारक्यूज ने जून 1624 में पार किया था। उनकी ऊंगुलियां गल गई थी और कुछ समय तक आंखों की दृष्टि भी चली गई थी।



बिना माणा के व्यापारियों के आगे बढ़ना कठिन लगने लगा। इस स्थान पर व्यापारियों से 'ठल' तथा 'वारछोंग' नामक कर लिए जाते थे। 'वारछोंग' तिब्बत व्यापार हेतु दिया जाने वाला कर था और व्यापार के माल की कीमत का 10वां भाग 'ठल' के रूप में देना पड़ता था। नैन सिंह के अनुसार तम्बाकू, छुवारे, मिसरी, गुड़ आदि पर तो 'ठल' लिया जाता था पर मूंगा, मोती, पिरोजे तथा जवाहरात पर 'ठल' नहीं लिया जाता था। नैन सिंह व्यापारी बन कर तो गया था पर उसके पास कुछ मूंगों के सिवाय कोई और व्यापारिक वस्तु न थी। अतः उसे 'ठल' नहीं देना पड़ा था।

अब नैन सिंह को यह भय लगने लगा था कि यदि माणा के पधान आदि के आने तक किसी ने वहां के हाकिम से उसकी चुगली कर दी तो उसे पकड़ा जा सकता था। अतः ये लोग रावनथोक के दोरजिए से यह अर्ज करने गए कि हाकिम के हुक्म के अनुसार वे सब यहीं रहेंगे। केवल दो-तीन आदमियों को छपरांङ में हाकिम के पास आगे जाने की अनुमति के लिए जाने दें। यदि अनुमति मिली तो ठीक नहीं तो वापस आ जाएंगे। इस तरह इस कार्य हेतु स्वीकृति लेने में वे कामयाब रहे। एक दिन लुमड़ती मुकाम में रह कर 31 जुलाई 1867 को लाला बड़वाल के साथ मुकमू और मानी को अवटुक के पास छपरांङ भेजा गया। अन्य लोग लुमड़ती में ही रहे।

1 अगस्त 1867 को नैन सिंह आदि ने भी लुमड़ती से डेरा उठा लिया और चार मील आगे छ्युरकांग में डेरा किया। इस जगह को माणा के लोग शिवूक कहते थे और यहां छपरांङ के जोनपन की ओर से बना एक मकान था। यहीं पर छपरांङ के जोनपन का अवटुक माणा के व्यापारियों के माल की तलाशी लेता था तथा सबके व्यापार पर 'ठल' तथा 'वारछोंग' की राशि वसूलता था। यह जगह 14011 फीट पर थी। बर्फ से पानी की गूल निकाले जाने के कारण इस जगह का नाम छ्युरकांग पड़ा था।

इसी बीच एक अगस्त को दो तिब्बती व्यक्ति, जिनमें से एक ल्हासा से आया फुंचोआंगेल तथा दूसरा दोरजिया रावोनमी था, उसके डेरे में पहुंचे। उन्होंने नैन सिंह से कहा कि 'हमने सुना है कि पिछले साल तुमने (नैन सिंह) ल्हासा की ओर के नक्शे बना कर अंग्रेज सरकार को भेजे हैं। इस बार पता नहीं किस ओर का भेद लेने आ रहे हो!' :

**''उसी पहिली तारीख अगस्त के रोज एक आदमी ल्हासा के फुंचोआंगेल नाम जो पहिले दावाजोंगपन कुकेर का कारदार था दोरजिया रावोनमी को साथ लेकर मेरे डेरे में आया और मैंने उसको वड़ी इज्जत के साथ वैठाकर चाह पिलाया और उसने मुझे पूछा कि तुम कहां तक क्या काम में जाते हो मैंने अपने तईं व्योपार के वास्ते गारतोक तक जाने को जाहर किया तव वृह वोला कि हमने सुना है कि गुजश्ते अगले साल में तुम अंग्रेज वहादुर के ओर से सफीर होकर ल्हासा के तमाम नकशा वनाकर सर्कार अंग्रेज के पास भेजा है न मालूम अवके भी किस तर्फ का भेद ले जाने को आय रहे हो यह वात तुमको हर्गिज**

**नहीं चाहिए यद्यपि मैं तो देवाञ्युंग के कारोवार से अलग हूं लेकिन माणी वगैरह तुम मेरे मालिक कुकेर जोंपन और मेरे दोस्त हो इसलिए अपनायत की राह से मैं तुम्हें नसीहत करता हूं अगर तुम अवके भी अपने जाने की मामूली जगह गारतोक से अनत जाने का विचार करोगे तो अवश्य तुम हमारे सर्कार के गजब में फंस जाओगे तव मैने अपने तईं ल्हासा तक पहुंचने वावत विलकुल्ल इनकार किया और उसे एक दियासलाई देकर रूख़सत किया परंतु दिल में मेरा वड़ा सन्देह हो गया था कि मेरे ल्हासा से आने का खवर शायद यहां के हाकिमों के पास हो गया हो तो नमालूम मुझसे क्या सल्लूक करे ॥''**

नैन सिंह के लिए तुरंत कुछ बोलना संभव नहीं हुआ। उन्होंने नैन सिंह को इस बार ऐसा कुछ भी न करने की हिदायत दी। नैन सिंह ने दृढ़तापूर्वक इस सबसे इंकार किया। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का पूरा प्रयास किया। नैन सिंह ने उन दोनों की खातिरदारी की और उन्हें चाय पिलाई। एक दियासलाई का डिब्बा उपहार में देकर उसने उन्हें विश्वास में लेने का प्रयास किया। तब दियासलाई एक दुर्लभ वस्तु हुआ करती थी। पर भीतर ही भीतर नैन सिंह आशंकित हो गया था। यह भय भी अवश्य हो गया था कि हो न हो उसकी पिछली यात्रा की जानकारी तिब्बती अधिकारियों को हो गई है। वह सोचने लगा था कि न मालूम उसके साथ इस बार कैसा व्यवहार किया जाएगा।

मानी सिंह के प्रयास से किसी तरह आगे बढ़ने की आज्ञा मिली। 2 अगस्त को मानी सिंह ने इस बाबत सूचना दी। 3 अगस्त को छूयुरकांग से कूच किया। शाम को चार बजे छपरांङ के करीब वारक्यू जगह पर रुक कर जैसे ही नैन सिंह अवटुक और मानी से मिलने हेतु जाने की सोचने लगा था, अवटुक घोड़े पर सवार हो इस पड़ाव में ही आ गया था। सबसे पहले उसने नैन सिंह के समस्त सामान की तलाशी ली। अपनी शंका के अनुरूप अवटुक नैन सिंह के सर्वे उपकरणों को नहीं पकड़ पाया और उससे छपरांङ जाने को कहा। यहां नैन सिंह को भी 'ठल', 'गोठल' तथा 'ल्वाठल' देना पड़ा। नैन सिंह ने इस कर प्रणाली का इस तरह वर्णन किया था :

**''माणे के मारछों से सिवाय पंडूकेसर के दुरियाल रयूराशी भ्यूंडारी और खम्वा वगैरह नया व्योपारी जो माणे के घाटी होकर सौदा के वास्ते थोलिंग को जाते हैं उनसे आदमी पीछे दो तेमाशी याने सवा छः आना ल्हाठल याने पहाड़ लांघे का महसूल और उतना ही गोठल याने अपने जान का महसूल और जिन्स में दशोन के हिसाव से ठल याने महसूल लिया जाता है परन्तु खम्वा लोगों को जिन्स में ठल कभी नहीं देना पड़ता सिर्फ ल्हाठल और गोठल जो नया पहिले आता एक ही साल के वास्ते देना पड़ता फिर कितना ही वरस आवे कुछ देना नहीं होता है और माणे के मारछों को ल्हाठल और गोठल मुआफ है सिर्फ 44 रुपया वारछों का कर सालिआना मुकर्रर है और दशोन के हिसाव से ठल का महसूल भी देते हैं और पन्डूकेश्वर के दुरियालों पहिले 44 रुपया वारछों सालिआना था अव 25 रुपया वारछों का कर सालिआना मुकर्रर है और वदरीनाथ मन्दर से 100 गज कपड़ा 5 रुपया नगत और एक चन्दन की लकड़ी और सात पोटलियों में मेवा सालिआना चपरांग जोंपन के पास जाता इसके यवज चपरांग जोंपन एक ऊनी पट्टू और चार पोटलियों में चाह और किशमिश वदरीनाथ मन्दर में आता है ॥''**



4 अगस्त 1867 को वे थोलिंग पहुंचे। सतलज के बाएं किनारे स्थित थोलिंग पश्चिमी तिब्बत का अत्यंत महत्वपूर्ण मठ था। इस मठ में एक बड़े लामा के अलावा 50-60 अन्य लामा रहते थे। व्यापारिक तथा सांस्कृतिक स्थल के रूप में तो यह स्थान प्रसिद्ध था ही, यह माणा दर्रे के पास भी स्थित था। दरअसल इसका बद्रीनाथ से भी संबंध था। 10800 फीट की ऊंचाई पर सतलज के बाएं किनारे दसवीं-ग्यारहवीं सदी में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान रत्न भद्र/रिंचेन जांगपो (सन् 958-1055) द्वारा यह मठ बनवाया गया था, जिसकी अनुकृति के रूप में 1000 साल से भी अधिक समय पहले हिमाचल की स्पीति घाटी में स्थित ताबो मठ तथा कुछ अन्य मठों का निर्माण हुआ था। यह मठ तिब्बती बौद्ध स्थापत्य तथा चित्रकला का महत्वपूर्ण नमूना था। नैन सिंह तिब्बती इतिहास का एक और तथ्य इस प्रकार उजागर करता है :

**''भोटियों के किताबों में लिखा है कि पहिले जमाने में सारा डरीकुरसुम का राजा लिंसन्चिन् ग्यालवो था जिसे ग्यालवो केसर सिन्दूर भी कहते है वाद इसके डरी में दो राजे हुए अर्थात दावा में वोतछोग्यल और इस चपरांग में ग्यालवो च्योदाकपो राजा रहता था एक दफे चपरांग का राजा च्योदाकपो का मुल्क लदाख के राजा के आधीन हो गया था वाद सुलह के च्योदाकपो के मुल्क च्योदाकपो को दिया गया वलकि चपरांग खार के पास एक वड़ा घर लदाख के राजा के वनाया हुआ अव तक मौजूद है जव दावा के वोत छोग्यल और चपरांग के राजा च्योदाकपो के औलाद न हुआ तव इन दो राजाओं ने अपना मुल्क ल्हासा के गेवारिंवो लामा को चढ़ा दिया था जव से यह मुल्क ल्हासा के आधीन हुई ॥''**

नैन सिंह यह भी लिखता है कि आसमान से गिरने वाली चंदन की लकड़ी ने 'थोलिंग' की आवाज की और इस तरह इस जगह का नाम पड़ा।

थोलिंग में ही नैन सिंह की मुलाकात अपने ससुर जी यानी अपनी पत्नी उमती के ताऊ यानी अमर देव मार्छा से हुई। मार्च 1854 में माणा से वापसी के बाद वे पहली बार मई 1854 में थोलिंग में ही मिले थे। पुनः 13 साल के अंतराल के बाद ससुर तथा जमाई की मुलाकात हो रही थी। अमर देव मार्छा ने स्वाभाविक रूप से इस बार शिकायत नहीं की कि वह बिना बताए माणा से क्यों भागा? इस बार अमर देव मार्छा

नैन सिंह के व्यक्तित्व में आए बदलाव को महसूस कर गए। 4 अगस्त 1867 को नैन सिंह तथा उसके साथी अमर देब मार्छा के डेरे में ही रहे। ससुर और जमाई की बातचीत चलती रही होगी। निश्चय ही उमती और बेटी गोबिंदी की चर्चा भी अवश्य हुई होगी। अगले दिन वे अमर देब मार्छा से विदा होकर अपने नए पड़ाव में गए।

दो दिन और थोलिंग में रहकर 7 अगस्त को लोहे के पुल, जिसे तिब्बती में 'लिंगच्याकसम गोवजी' कहा जाता था, से उन्होंने सतलज नदी को पार किया और आगे बढ़े। इस पुल से सामान्य जानवर ही नहीं घुड़सवार भी पार जा सकते थे। 7 अगस्त की रात वे दोंवो गांव में रहे। इस इलाके में उवा की फसल होती थी, जिसे अप्रैल में बोया तथा सितंबर में काटा जाता था। सब्जियों में उन्हें सिर्फ मूली ही नजर आई। इस पड़ाव से उन्होंने बुशहरियों का पहनावा शुरू कर दिया। आगे उन्हें अपने को बुशहरी व्यापारियों के रूप में ही प्रस्तुत करना था। काले ऊन की पट्टू को काटकर बुशहरी टोपी बनाई गई। 8 अगस्त को वोगोल्हा पहाड़ की जड़ पर रहे।

9 अगस्त को उन्होंने सतलज तथा सिंधु नदियों के जलागम की विभाजक धार को वोगोल्हा दर्रे (17154 फीट) से होकर पार किया। इस रात बहुत बर्फ गिरी। 10 अगस्त को गारयारसा से कुछ दूर एक नाले में वे रहे। 11 को लांबो छिया नदी पार कर सीधे रास्ते को छोड़ शाम को वे ग्युक्टी कैंप में रहे। गारयारसा से होकर इसलिए नहीं गए क्योंकि यहां गारपन आदि रहते थे। गारपन उन्हें रोक सकता था। 12 अगस्त को ग्युक्टील्हा पहाड़ की जड़ पर डुंगलुंग सुमदो में रहे। 13 अगस्त 1867 को यह दल ग्युक्टील्हा चोटी (17480 फीट) पर पहुंचा। यह पहाड़ कैलास पर्वतमाला के पश्चिमी विस्तार का हिस्सा था। इस रात ग्युक्टील्हा पहाड़ के दूसरी ओर चोजो डोकठोल के ग्युफ्ती कैंप में रहे।

14 को लुजांग तथा 15 को राकमाग्याम में रहे। इस मुल्क का मालिक चजोपोन था। वह अयाम सरमा में रहता था। इसी पहाड़ की एक गुफा में उसका छ्योखोग बना था। तिब्बती हिरनों (चो तथा गुवायेदो) तथा जंगली याकों वाले इस इलाके के सुंदर डिरचिरी पहाड़ से होकर 16 अगस्त को वे ग्यामचा पहुंचे, जो 16660 फीट की ऊंचाई पर स्थित था। यहां एक छोटी झील-ग्यामची छो—थी और रास्ते की कहीं कोई पहचान न थी। आगे उन्होंने 17640 फीट ऊंचा पाबा ला पार किया।

कई दिन तक दल के सदस्य तालाब का नमकीन पानी पीते रहे। रास्ते के चिन्ह मिल जाने पर भी यह पता नहीं लगा कि यह कहां को जाता है? अगले पहाड़ से एक खाई सी दिखी और लगा कि शाम को उस जगह पहुंच जाएंगे, पहुंचने पर न खाई मिली और न पानी। एक बियावान जगह थी। प्यास के मारे सभी साथी तड़पने लगे पर अंत में दल के एक सदस्य ने अकेले पानी के लिए जाने का जोखिम उठाया और घंटों बाद एक-एक प्याला पानी सभी को मिला :



**"और मारे प्यास के पानी विना दिल तड़फने लगा तव मैने सव नौकरों से कहा कि यारो तुममें से दो तीन आदमी कोई तो जुवांमर्दी करो और नावीपाछो ताल जिसे हम पीछे छोड़ आए हैं रात में वहां जाकर पानी ले आओ तो हम लोग वचें नहीं तो मरते हैं जो पानी लावेगा उसको हम दो रुपया वखशीश देगें यह सुनकर सवने सिर नीचा कर लिया कोई भी कवूल न हुआ तव दिरंटशी वोला मैं जाउंगा वह जुवांमर्द शाम के वक्त गया था और जो मुछ रात वांकी रह गया था पानी लेकर पहुंच गया परन्तु वरतन वड़ा न होने से पानी वहुत न आ सका उसके आने तक सवों के होंठ तालू सूखे थे वलकि प्यास के मारे रात में किसी को नींद न हुई मैने एक एक प्याला पानी सवको दिया परन्तु त्रिषा किसी का न मिट गया जव शुभह हुई देखा तो सव लोगों के वुरे हाल हो रहे हैं जैसे हैजा की वीमारी से एकदम में आदमी की शकल वदल जाती वैसाही हाल सव लोगों की शकल वदल गयी थी और आंखों में गढ़े पड़ गए थे और करम सुख विसेहरी तो वोल भी नहीं सकता था जो कुछ वात उससे पूछा तो हाथ से इशारा करता था।"**

तीन दिन के बाद ही सबको पर्याप्त पानी मिल सका। इसके बाद उन्होंने पहली बार सिंधु नदी पार की, जिसे यहां सिंगी खांबा कहते थे और जो कैलास पर्वत के उत्तर की ओर से निकलती थी। नैन सिंह ने पाया कि नदी तीस कदम चौड़ी तथा 4-5 फीट गहरी थी। साथ ही नदी में मछलियां तथा मुर्गाबियां बहुत थीं।

19 अगस्त को उन्हें एक जगह जंगली घोड़े दिखे और नैन सिंह की यह उम्मीद सही सिद्ध हुई कि यहां पानी होगा। 20 अगस्त को वे आगे बढ़े और 16184 फीट ऊंचे पावाल्हा पहाड़ को पारकर सिंगी छयू नदी के किनारे छोलदारियों के पास पहुंचे। सिंधु नदी के किनारे बसे इलाके को 'वोंठोल' कहते हैं। 'वोंठोल' के भी दो भाग हैं—सिंगमेद तथा सिंतोद। 'मेद' का अर्थ था नीचे और 'तोद' का अर्थ था उपर। यहां से सात दिन में कैलास पर्वत तक पहुंचा जा सकता था। यह रास्ता कैलास पर्वत परिक्रमा के सर्वोच्च बिंदु डोलमा ला पर मिलता था।

जब वे सिंमेद पहुंचे तो दो तिब्बती अधिकारियों ने फिर उनका रास्ता रोक दिया। इन अधिकारियों को तरजुंपा ने भेजा था। नैन सिंह ने बताया कि वे सभी बुशहर के निवासी हैं। मूंगा बेंचने तथा पशम खरीदने को आए हैं। पर हाकिम ने कहा कि इस साल बुशहरवासियों को सरकार ने मुल्क में आने की मनाही की थी। क्योंकि पिछले साल बुशहर में चेचक की बीमारी फैल गई थी। बीमारी इन व्यापारियों के साथ इस क्षेत्र में भी आ गई और बहुत से लोग यहां मर गए थे। नैन सिंह और उसके साथियों पर यह शक किया जाने लगा था कि वे सीमा से भाग कर आए हैं क्योंकि सभी बुशहरी व्यापारियों को सीमा पर ही रोक देने के आदेश थे। वे दोनों अधिकारी गोवा तरजुंपा के पास गए और

लौट आकर कह गए कि तुम लोगों को यहां से आगे एक कदम भी नहीं जाना है।

तिब्बती अधिकारियों ने नैन सिंह को 'बोतपा' यानी ल्हासा की ओर का रहने वाला (यानी 100 दिन ल्हासा में रह चुकने का यह परिणाम था), मानी को 'क्योनम' यानी जोहारी और सिर्फ करमसुख को ही बुशहरी बताया। उन्होंने इन पर अंग्रेज सरकार के आदमी होने का शक किया और कहा कि उन्होंने अपने साहब को कहीं छिपा रखा है। इसका यह अर्थ था कि नैन सिंह की पिछले साल की यात्रा का तिब्बती अधिकारियों को अंदाजा हो गया था। पर नैन सिंह की चतुराई तथा नियोजित तरीके से बोले गए झूठ के कारण इस अवरोध को पार करने में वे कामयाब हो सके।

फिर उन्हें गोवा तारजुंपा के पास ले जाया गया। उसने भी वहीं शक व्यक्त किया जो उसके आदमियों ने किया था। इस बीच अपनी प्रतिभा के अनुरूप नैन सिंह ने कुछ नया सोचने का प्रयास किया था। वह जानता था कि एक झूठ अगर पकड़ में आ गई तो शक लगातार बढ़ता ही जाएगा। अतः उसे किसी तरह यह सिद्ध करना था कि वे बुशहर के व्यापारी हैं। इस तरह अब उसने अपने परिचय में कुछ परिवर्तन किया। उसने कहा कि हम पर शक मत कीजिए। हम असली बुशहरी ही हैं। बाप-दादा के जमाने में माणा में आ गए थे। तब से माणा में ही हैं। पर इतने से ही प्रभाव नहीं पड़ना था।

तब नैन सिंह ने अभी तक की जानकारी का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करते हुए कहा कि हमको जब गरतोक में आकर पता चला कि बुशहर में इस साल बीमारी है तो हमें लगा कि व्यापार में कुछ लाभ होगा और हम यहां को चले आए। कुछ मूंगा भी साथ में लाए। तरजुंपा ने कहा कि अगर तुम असली व्यापारी हो और तुम पर बीमारी का असर नहीं है तो कल तुम्हारी तलाशी ली जाएगी लेकिन ठोक ज्यालुंग की ओर तुम हरगिज नहीं जा सकोगे। जो ऊन-पशम तुम्हें चाहिए उसे यहीं से लेकर वापस चले जाओगे।

डेरे में वापस आकर नैन सिंह बहुत उदास हो गया। छोटी सफलता तो मिल गई थी पर आगे के मार्ग के अवरुद्ध होने का खतरा हो गया था। अगर उन्हें बुशहरी मान भी लिया गया पर ठोकज्यालुंग की ओर नहीं जाने दिया गया तो सब कुछ धरा का धरा रह जाएगा। तलाशी में 'आपत्तिजनक' सामान के पकड़े जाने का भी भय था। रात में ही उसने अपने सब यंत्र छिपा दिए। कुछ चीजें गड्ढे में डाल दीं। यह भी विचार किया गया कि इस तरजुंपा को कुछ देकर रास्ता निकालने का प्रयास करना चाहिए। इसमें सफलता भी मिल सकती थी और उतना ही खतरा भी था।

21 अगस्त की सुबह चश्मा, चुंबक, पत्थर के खिलौने, एक माला तथा पांच रुपए आदि कुछ उपहार लेकर नैन सिंह तथा करमसुख तरजुंपा के पास गए और ठोकज्यालुंग जाने की अनुमति देने का पुनः आग्रह किया। तरजुंपा ने मना करते हुए कहा कि तुम व्यापारी हो तो यहीं से खरीददारी क्यों नहीं कर लेते। समझदारी के साथ नैन सिंह ने कहा कि पशम तो यहीं से खरीद लेता पर मूंगे का ठोकज्यालुंग में कुछ ठीक दाम मिल



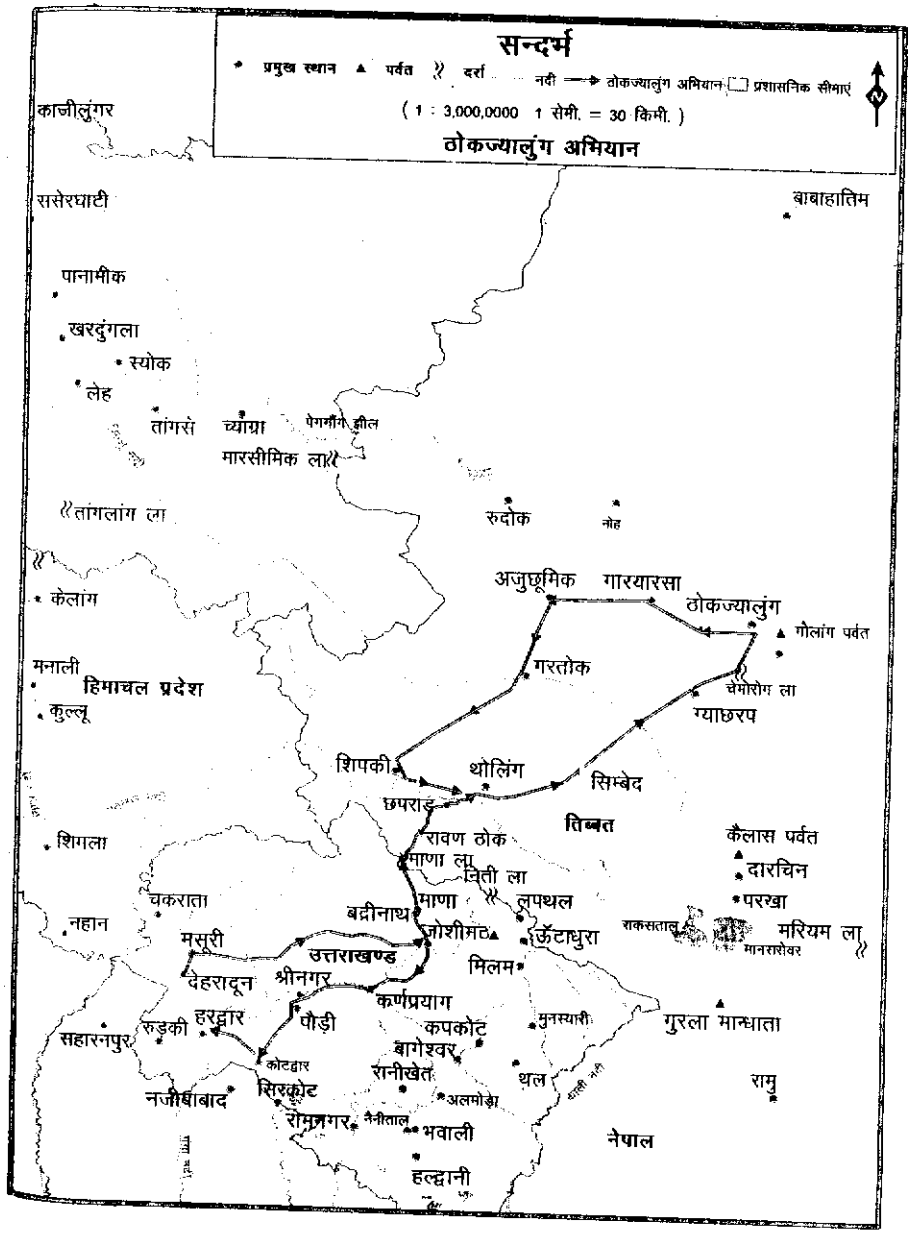


ठोकज्यालुंग अभियान : 1867

जाता। नैन सिंह ने मूंगे भी उसे दिखा दिए। उसने कहा कि तब तुम डेरा यहीं रखो और दो-तीन आदमी जाकर ठोकज्यालुंग में मूंगा बेच कर यहां वापस आ जाओ। उसने उनके साथ अपना भी एक आदमी भेजने की बाबत कहा। अंत में तरजुंपा ने एक मूर्ति और पुस्तक पर हाथ रखवा कर नैन सिंह तथा साथियों से शपथ लिवा ली कि उन्हें कोई बीमारी नहीं है तथा ठोक के हाकिम के लिए पत्र भी लिख कर दे दिया। फिर सामान की तलाशी ली पर कोई आपत्तिजनक सामग्री पकड़ी नहीं जा सकी।

कोई विकल्प न देख यह तय किया गया कि नैन सिंह तथा कुछ साथी ठोकज्यालुंग जाएं, कलियान तथा करमसुख सिंधु नदी के साथ साथ कैलास पर्वत की ओर रूट सर्वे करें, माणी तथा राम सिंह यहीं सामान की रखवाली करें और तरजुंपा के पास रोज हाजिरी लगाते रहें। कोई और राह अब बची न थी। 22 अगस्त 1867 को नैन सिंह अपने पांच साथियों-दव्यल (शायद इसे तरजुंपा ने भेजा था), मुकमू, धन सिंह तथा छिरंटशी आदि–के साथ आगे बढ़ा। इस रात पहले वर्षा फिर बर्फ गिरी। 23 को वर्षा बंद हो जाने के बाद वे आगे बढ़े। जब वे चिमोरोंग कैंप में पहुंचे तो बर्फ तेजी से पड़ने लगी। किसी को भी चलने का दम नहीं रहा। दो दिन तक मौसम ऐसा ही रहा और बहुत अधिक ठंड रही। यहीं रास्ते में उन्हें नमक के सुपरिचित तिब्बती व्यापारी मिल गए और पूछने लगे कि ऐसे बदले वेश में क्यों हो? तुम्हारा तो इधर आने का कोई दस्तूर नहीं है। कहा कि व्यापार के वास्ते ठोक ज्यालुंग में सोने की खान तक जा रहा हूं लेकिन किसी को बताना मत कि हम लोग 'क्योनम' (जोहारी) हैं। परिचितों का मिलना सुखद और खतरे से भरा दोनों होता था।

26 अगस्त 1867 को 17000 फीट ऊंचे चेमोरोंग ला को पार कर वे ठोकज्यालुंग पहुंचे और शहर के पश्चिम में डेरा लगा दिया। 16330 फीट की ऊंचाई पर स्थित ठोकज्यालुंग के हाकिम यूदोक ज्योला भिंभा, जो कि ल्हासा का रहने वाला था (नैन सिंह ने तुरंत ल्हासा के कुत्ते उसके यहां पहचान लिए थे), से मिलकर उसने उसे तरजुंपा का पत्र दिया। जब भिंभा उस पत्र को पढ़ने लगा तो एक-दो शब्दों में अटक गया। उसकी पत्नी ने पत्र पढ़ने में उसकी मदद की। जब पूछा गया कि तुम कौन हो तो नैन सिंह ने 'खुनुवा' यानी बुशहरवासी होना बताया। ठोकज्यालुंग के हाकिम ने नैन सिंह पर किसी तरह का शक प्रकट नहीं किया।

मूंगों को देखकर ठोकज्यालुंग का हाकिम निश्चय ही प्रसन्न हुआ और नैन सिंह को हल्का सा धमका कर उसने कम दाम में इन्हें खरीद भी लिया। नैन सिंह ने उसके बदले वहां की खान का सोना ले लिया। हाकिम ने नैन सिंह से यह भी कहा कि व्यापार करके जल्दी से जल्दी यहां से निकल जाओ। नैन सिंह के लिए सबसे बड़ी मुश्किल तब हुई जब उससे 31 अगस्त 1867 तक वापस चले जाने को कहा गया। यानी मात्र पांच दिन ठोकज्यालुंग में रहने का मौका नैन सिंह को दिया जा रहा था। उसकी चिंता यह थी



कि इतने कम समय में वह कैसे विभिन्न खानों की पड़ताल कर पाएगा? चार दिन के भीतर उसने यह सब काम करना था। यह चुनौती थी। एक प्रकार से उसकी एक और परीक्षा भी थी।

## नमक, सुहागा और सोना

इन चार दिनों में नैन सिंह ने वहां की नमक तथा सुहागे की अनेक खानों और सोने की सभी छः खानों सहित ठोक ज्यालुंग का विस्तृत सर्वेक्षण-अध्ययन किया। उसने ठोक ज्यालुंग की ऊंचाई 14500 फीट बताई थी। समुद्र तल से 16300 फीट की ऊंचाई पर स्थित खानों से सोना निकालने और साफ करने की विधि भी नैन सिंह ने चुपके-चुपके देखी। सोने की खान पानी के दलदले में थी। पानी इसमें कम था। सोने निकालने वालों को 'सर्वा' कहा जाता था। उसने खुदाई के औजारों की मरम्मत तथा उन्हें निरंतर धारदार बनाने में लगे एक लोहार को भी वहां देखा था।

नैन सिंह ने सोने के खनिज की खुदाई, सफाई, छनाई आदि समस्त विधियों की बारीकी से पड़ताल की। उसने देखा कि पानी के हौज में एक पतनाला बहता रहता था। उसमें सोने की खनिज वाली मिट्टी डाली जाती थी। और चीजें बह जाती थी पर सोना भारीपन के कारण नहीं बहता था। पतनाले के बीच के गड्ढों में सोने की धूल या ढेले रूक जाते थे। फिर चिमटे से इन्हें उठाया जाता था। फिर बर्तन में रख कर इसे छाना जाता था ताकि बची मिट्टी भी बह जाए। सर्वा स्त्री-पुरुषों के सवा तीन सौ डेरे नैन सिंह ने देखे थे। वह डांज्यन आखा नामक एक साहूकार के डेरे में भी गया। उस डेरे में 200 तक लोग बैठ सकते थे। गड्ढों के ऊपर ही तंबू लगे थे।

सैकड़ों स्त्री-पुरुष किस तरह गाते हुए कार्य करते थे और गर्मियों में किस तरह वहां बहुत भीड़ हो जाती थी इसका भी विस्तृत वर्णन उसने अपनी डायरी में किया था। यहां जाड़ा बहुत होता था और हवा भी बहुत चलती थी। इसीलिए तंबू गड्ढों में लगाए जाते थे। नैन सिंह लिखता है कि उसे तिब्बत में सबसे ज्यादा ठंड ठोकज्यालुंग में ही महसूस हुई। जुलाई अगस्त महीने में भी यहां पानी जम जाता था। गड्ढों में दिन में जो पानी दिखता था रात में वह बर्फ बन जाता था। वहां के मजूर इस पानी को नहीं पीते थे बल्कि बर्फ निकाल कर उसे गलाकर पीते थे। वैसा पानी नमकीन और बर्फ को गलाकर प्राप्त पानी मीठा होता था। ज्यादातर 'सर्वा' ठोकज्यालुंग के आसपास के थे। कुछ लोग चांगदेश (सिगात्से आदि) से भी यहां सोना निकालने के लिए आते थे :

> **"दिन में सोने खानि के पास हजारों मनुष्य जमा हो जाते हैं और अपने 2 हिस्से के खानों में जाकर सोना निकालने के काम में मसगूल हो जाते हैं और वे सर्वा लोग जिस वक्त अपना काम करने लगते हैं तमाम स्त्री पुरुष सबके सब**

**मिलकर अपने 2 खानि के येक समाज होकर बहुत ऊंचे स्वर से गीत गा 2 कर काम करते रहते हैं उन सब सर्वा लोगों के गाने का शब्द मिलकर येक बड़ा ऊंचा स्वर हो जाता है और खानि से आध मील की दूरी तक लोगों को उनके गाने का शब्द सुनाई देता है''**

नैन सिंह ने यह भी जाना था कि बरसात में सोने के खनन में दिक्कत रहती थी। जबकि जाड़ों में यह काम कुछ आसान हो जाता था। तब सोना खोदने वालों के 500 तक डेरे लग जाते थे। ठोकज्यालुंग में सोने का मूल्य 10 से 12 रुपया प्रति तोला था या 30 रुपए से कम में एक औंस मिलता था। उसने यह भी बताया था कि वहां कोई नदी नहीं बहती थी और पानी की बहुत तंगी थी। वहां बर्फ भरे पहाड़ नैन सिंह ने कम पाए थे।

ठोकज्यालुंग के उत्तर में सोने की अनेक खानें थी। इनमें सारबिंग, ठोकडालुंग, ठोकराकुंग, ठोकनियांगमो, ठोकरक्योग आदि मुख्य थी। इसीलिए ठोकज्यालुंग को 'स्वर्ण जिला' या 'गोल्ड डिस्ट्रिक्ट' कहा जाता था। ठोकज्यालुंग की सोने की खान सिर्फ सात साल पहले से खोदी जानी शुरू हुई थी। इसलिए इसे ठोकसोंबा यानी नई खान कहा जाता था। इसी तरह चकचका की नमक की खान बहुत प्रसिद्ध तथा बड़ी थी। ठोकज्यालुंग से उत्तर-पश्चिम में वह पर्वतमाला तथा उसका 23000-24000 फीट ऊंचा शिखर था, जिसे नैन सिंह अपनी अंतिम और अत्यंत महत्वपूर्ण लेह-ल्हासा-तवांग-गुवाहाटी यात्रा में खोजने वाला था। इस पर्वतमाला का नाम आलिंग कांगरी था। इसी पर्वतमाला को अंवेषण की किताबों में अनेक सालों तक 'नैन सिंह रैंज' कहा जाता रहा। इसकी ठोकज्यालुंग से दूरी 30 मील थी और यह दूर दूर से नजर आता था। यह सदा बर्फ से ढका रहता था। यहां खेती नहीं होती थी। लोगों का रंग तांबई था। धर्म बौद्ध ही था और डारी खुरसम तथा ल्हासा के लोग यहां के निवासियों को 'डोकपा' कहते थे।

ठोकज्यालुंग के पूर्व की ओर माज्यन देश था, जहां सुहागे की खानें थी। इन दोनों इलाकों में डाकू भी बहुतायत में थे। यहीं छाकछाका में नमक और सुहागे की खानें थी। नैन सिंह ने डेढ़ इंच गुणा तीन इंच आकार का सुहागे का टुकड़ा अपने पास रखा था। इन अनेक खानों तक जाना किसी भी तरह संभव न था। इस बीच नैन सिंह कुछ खगोलीय परीक्षण भी करता रहा।

यद्यपि मांटगोमरी का आदेश था कि वह ठोकज्यालुंग से पूर्व और ल्हासा के रास्ते के बीच या ठोकज्यालुंग से खोतान की पूर्वी सीमा पर स्थित किरियां गांव तक के अक्षांश पता कर लाए। पर दल के सदस्यों के तीन हिस्सों में बंट जाने, सामान सहित मानी के सिंभेद में रोके जाने तथा डाकुओं के भय के कारण यह कार्य संभव न था। उपर से ठोकज्यालुंग के हाकिम ने उसे मात्र पांच दिन ठोकज्यालुंग में रुकने की इजाजत दी थी। वापसी के समय भी लुट जाने का खतरा था। घुड़सवार डाकुओं से अतिग्रस्त इस क्षेत्र में लद्दाखी व्यापारियों के साथ जाना सुरक्षित होगा जान कर नैन सिंह उनके डेरे



में गया। लद्दाखी व्यापारियों ने कहा कि जब हम यहां से चलेंगे तो तुम भी साथ चलना।

जिस दिन ठोकज्यालुंग से लद्दाखी व्यापारियों के साथ वापस चलना था उसकी पहली रात को नैन सिंह एकाएक कमर दर्द से परेशान हो गया। चलना तो अलग रहा वह उठ भी नहीं पा रहा था। ऐसे में उसका रुदोक हो कर जा रहे लद्दाखी व्यापारियों के साथ वापस जाना संभव नहीं था। दो दिन तक वह खड़ा ही नहीं हो सका। लद्दाखी व्यापारी चले गए और नैन सिंह तथा साथी उनके साथ नहीं जा सके।

कुछ दिनों तक तारों के परीक्षण का कार्य करके अंततः 31 अगस्त 1867 को यह पांच सदस्यों वाला दल अकेले ही ठोकज्यालुंग से वापस चला। उस रात चेमोरोंग में रहकर पहली सितंबर 1867 को वे ग्याछरफ पहुंचे। सौभाग्य से वे डाकुओं के हाथ नहीं पड़े। ग्याछरफ में मानी सिंह उपस्थित था और सितोद से कलियान सिंह भी वहां पहुंच गया था। यहीं नैन सिंह को बताया गया कि कोड्चिन के क्षेत्र में कलियान और करमसुख डाकुओं के दो बेहथियार भेदियों के हाथ पड़ गए थे। जब डाकू अकेले में मिले करमसुख को पीटकर सामान लूट रहे थे तभी कलियान पानी लेकर आ रहा था। वह इन दोनों डाकुओं पर पिल पड़ा। डाकू तो पिटकर भाग गए, पर इन दोनों को लगा कि उन दिनों चर्चित '40 डाकुओं का दल' कहीं पास में ही हैं। अतः वे वहां से भाग आए। वे तब सिंधु नदी की घाटी में कैलास पर्वत से मात्र चार पड़ाव पहले तक पहुंच गए थे।

इस बीच तारजुंपा की अनुपस्थिति के कारण उन्हें ग्याछरप में दो दिन रुकना पड़ा। फिर वे बिना इंतजार किए निकल पड़े। सिंधु नदी के किनारे किनारे भी कई दिन यात्रा की। 4 सितंबर से 16 सितंबर 1867 तक वे सर्वे कार्य करते रहे। इस क्षेत्र में उन्हें कहीं पुराने पेड़ दिखे तो कहीं खेती। एक जगह तो जंगल भी दिखा जो उसे आश्चर्य चकित करता रहा। अनेक वसासतें तथा गोंपा नजर आए। 12 सितंबर को वे सिंधु नदी तथा गरतोक की ओर से आने वाली गारज्युंग छ्यू नदी के संगम लुजांग छ्यमिक पहुंचे। गारज्युंग छ्यू नदी 250 कदम चौड़ी और 2 फीट गहरी थी। सिंधु नदी 200 कदम चौड़ी और 4 फीट तक गहरी थी। पहली नदी की चौड़ाई ज्यादा थी और सिंधु की गहराई। यहां से नैन सिंह ने कलियान सिंह, धन सिंह जुहारी तथा करमसुख विसहरी को लुजांग छ्यमिक से टशीकांग तथा दमचौक होकर खगियालिंग और फिर श्याचे होकर थोलिंग तक रूट सर्वे करने तथा अक्षांश जानने को भेजा।

16 सितंबर को नैन सिंह तथा मानी गारयारसा पहुंचे। यहां उन्होंने तीन दिन तक काम किया। गारयारसा में उसने कुछ पक्के घरों के अलावा विभिन्न व्यापारियों की लगभग 200 छोलदारियां देखी। इसका अर्थ यह था कि इस बीच यहां बड़ी संख्या में व्यापारी आ चुके थे। क्योंकि बीमारी के कारण बुशहर के व्यापारी यहां नहीं आ सकते थे, अतः अधिकांश व्यापारी कुमाऊं तथा गढवाल से थे।

इन व्यापारियों में नैन सिंह को अपने क्षेत्र के अनेक परिचित भी मिल गए। इन्हीं

में से एक धन सिंह टोलिया नामक जोहारी व्यापारी ने नैन सिंह से कहा कि उसके आने की सूचना किसी ने गरपन को दे दी है। उसने यह भी कह डाला कि इतने खतरे के बावजूद नैन सिंह और उसके साथी बेफिक्र बैठे हैं! कुछ कुछ डरे नैन सिंह तथा साथी तब तक सतलज नदी की घाटी में सिपकी दर्रे के रास्ते में पहुंच गए थे। इस बीच वे रास्ता भी भटके और उन्हें भूखा-प्यासा भी रहना पड़ा। 23 सितंबर को उन्हें शियांग नामक गांव में सत्तू खाने को मिला और 24 सितंबर को दुखर गांव में छंबेल आदि नौकर मिल गए। 24 को उन्होंने वहीं आराम किया। फिर वे सतलज नदी के प्रवाह के विपरीत सावधानी से चलते हुए 26 सितंबर 1867 को थोलिंग वापस पहुंचे। पर दमचौक की ओर से अभी कलियान सिंह नहीं लौटा था। अतः 27 सितंबर को वहीं आराम किया। 28 को कलियान सिंह वापस थोलिंग आ गया। 30 सितंबर को मानी तथा कलियान सिंह शिपकी दर्रे की ओर चले गए। नैन सिंह 3 अक्टूबर तक बीमारी के कारण वहीं रहने को विवश हुआ।

जरा ठीक हुआ तो आगे बढ़ा। नैन सिंह माणा दर्रा होकर बद्रीनाथ की ओर आते हुए फिर बीमार हो गया। फिर भी उसने चलना नहीं छोड़ा। 4 अक्टूबर की रात वह मांगनांग में रहा और 5 को खंबाशीशा, 6 को धौल्याराव तथा 7 को कौकूराव में रहा। यहां वह ज्यादा बीमार हो गया। उसे अपना होश ही नहीं रहा। 8 अक्टूबर को पोथी में, 9 को सौनीराव, 10 को घासतोली से होकर 11 अक्टूबर 1867 को वे माणा–बद्रीनाथ पहुंच सके। नैन सिंह को घोड़े की पीठ पर रख कर लाया गया। माणा दर्रे में बहुत बर्फ होने के कारण नैन सिंह के हाथ पैर गल गए। 243 साल पहले सन् 1624 में इसी दर्रे पर तिब्बत की ओर जाते हुए जैसुइट पादरियों अंद्रादे तथा मारक्यूज की भी ऐसी ही हालत हुई थी। बड़ी मुश्किल से नैन सिंह माणा पहुंच सका। अपनी ससुराल में उसे फिर रहने का मौका मिला।

बहुत दिनों तक माणा तथा बद्रीनाथ में रह कर भी नैन सिंह की तबीयत ठीक नहीं हुई। मानी और कलियान की फिक्र के कारण नैन सिंह आगे भी निकल नहीं पा रहा था। वे दोनों तथा कुछ साथी अभी तिब्बत में ही थे। उधर माणा दर्रे में बर्फ के गिर जाने से अपने साथियों को लेकर नैन सिंह की फिक्र और बढ़ गयी थी। जब बद्रीनाथ में उसकी तबीयत खराब ही चलती रही और वहां ठंड भी बढ़ गई तो नैन सिंह ने नीचे घाटी में गर्म जगह को उतरने की सोची। अतः 24 अक्टूबर 1867 को नैन सिंह ने राम सिंह बुरफाल को चारागाह में चर रहे घोड़ों को घर लाने को कहा ताकि अगले दिन वे आगे को चल सकें। शाम को जब राम सिंह घोड़े ला रहा था तो माणा के पुल से गिरकर एक घोड़ा मर गया। फिर भी अगले दिन नैन सिंह चला। 25 को रास्ते में रह कर 26 को अरुड़ी पहुंचा। कई दिन तक वहीं रहा। तबीयत कुछ ठीक हुई पर मानी तथा कलियान सिंह के वापस न आने और कोई कुशल न मिलने से वह परेशान रहा।



14 नवंबर 1867 को थोलिंग का एक दोरजी बद्रीनाथ पहुंचा। वह मानी के पत्र तथा एक गधे के साथ आया था। पत्र से पता चला कि मानी नेलंग के रास्ते चला गया है और उस रास्ते के कठिन होने के कारण मानी ने अपने घोड़े तथा गधे को यहां भेज दिया है। पत्रवाहक ने यह भी बताया कि मानी का घोड़ा रास्ते में ही मर गया था। गधा बच गया था।

यह जानकर कि मानी आदि इस रास्ते नहीं बल्कि नेलंग यानी जाड गंगा की घाटी के रास्ते आ रहे हैं, नैन सिंह जोशीमठ को आया। यहीं 29 नवंबर को भागीरथी घाटी के मुखबा गांव (जहां शिकारी तथा व्यापारी विल्सन की ससुराल थी और करीब ही हरसिल में उसका घर था) में मानी को छोड़ कर कलियान भी वापस आ गया था। इस तरह दोनों भाई मिले। कर्ण प्रयाग, श्रीनगर तथा पौड़ी होकर 26 दिसंबर 1867 को यह दल कोटद्वार और फिर देहरादून वापस पहुंच गया। खोह तथा दोनों नयार नदियों को उन्होंने पहली बार अंर्तवर्ती क्षेत्र में देखा।

मांटगोमरी नैन सिंह तथा साथियों का इंतजार ही कर रहा था। यह यात्रा अनेक अर्थों में जोखिम भरी थी। सबसे दिक्कत तलब बात यह थी कि नैन सिंह की पिछली यात्रा की जानकारी तिब्बती अधिकारियों को हो गयी थी। इस बार उसका स्वास्थ्य भी अधिक ठीक नहीं रहा। तीसरे परिस्थितिवश उसकी टोली को तीन भागों में बंटना पड़ा। फिर भी अपने दल को सौंपे गए सभी कामों को नैन सिंह सफलतापूर्वक संपन्न कर लाया। इस अभियान में भी कठिनाइयों से निपटने का उसका अंदाज काबिले तारीफ था और उसके हर अंदाज में एक स्वाभाविकता थी।

इस अभियान की अनेक उपलब्धियां थीं। इससे सिंधु, सतलज तथा इनकी सहायक नदियों के ऊपरी जलागमों की विस्तृत पड़ताल तथा मुख्य धाराओं की पहचान हो सकी। नमक, सुहागे और सोने की सभी छः खानों का विस्तृत विवरण तो सामने आया ही, उस क्षेत्र के मानव भूगोल की पर्तें भी उजागर हुईं। माणा से ठोकज्यालुंग तक के 207 मील के मुख्य मार्ग में उसे सिर्फ एक बार खेती के दर्शन हुए थे, वह भी थोलिंग के पास सतलज नदी की घाटी में। शेष इलाका वीरान था और पशुचारण के अलावा कोई और जीवन पद्धति वहां नजर नहीं आती थी।

सिंधु नदी से उत्तर में स्थित 23000-24000 फीट तक ऊंची आलिंग कांगरी पर्वतमाला के विभिन्न शिखरों की ऊंचाइयां नापने में भी वह कामयाब रहा और यह बताने में भी कि ठोकज्यालुंग से पूर्व में कोई ऊंची पर्वतमाला नहीं है। आलिंग कांगरी पर्वतमाला के बारे में यूरोप में तब तक किसी ने सुना नहीं था। ठोकज्यालुंग से उत्तर में रहने वाले घूमंतू संपा या खंपा डकैत समुदाय के बारे में भी उसने जानकारी ली थी। उसे बताया गया था कि ये लोग शत प्रतिशत मांसाहारी हैं और अन्न से उनका अपरिचय सा है। अन्न खाने पर वे बीमार पड़ जाते हैं। हालांकि नैन सिंह ने इस बात

पर विश्वास नहीं किया था।

मूरक्राफ्ट द्वारा गरतोक तक तथा कनिंघम द्वारा लेह के आसपास तक पश्चिमी तिब्बत में किए गए सर्वे के कार्य को नैन सिंह ने अपने दल द्वारा किए कार्य से जोड़ दिया था। रूट सर्वे में उसने लगभग 265 स्थानों का अक्षांश अंकन किया था तथा 255 स्थानों पर क्वथनांक लिया था। इस अभियान में हुए मार्ग सर्वेक्षण की कुल लंबाई 850 मील बताई गई है और जिस क्षेत्र की भौगोलिक जानकारी ली गई वह 18000 वर्गमील में फैला था। मांटगोमरी ने अपनी रपट में तीनों पंडितों की और विशेष रूप से 'चीफ पंडित' यानी नैन सिंह की प्रशंसा की थी कि वे दूर स्थित चोटियों की 'इंटरसेक्टिंग' तथा 'फिक्सिंग' करने की कला में दीक्षित हो चुके थे, हालांकि अभी वे चोटियों की सहीं ऊंचाइयां नापने में कामयाब नहीं हो पाए थे। नैन सिंह के बारे में मांटगोमरी ने लिखा था कि 'वह अजनबियों के बीच भी अपना रास्ता निकाल लेता है और पूरे अभियान में उसका संचालन अत्यंत विश्वसनीय रहा—विशेष रूप से मेरे द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में'।

इस यात्रा से लौट कर नैन सिंह तुरंत किसी अभियान में नहीं गया। अगले 5 साल नैन सिंह इस अर्थ में आराम में रहा कि किसी हिमालय पार के अभियान में वह नहीं भेजा गया। लेकिन सर्वे आव इंडिया के मुख्यालय में उसे अनेक कार्य करने थे। नैन सिंह को नए सर्वेयरों के शिक्षण-प्रशिक्षण का काम भी इस बीच सौपा गया। एक प्रकार से वह इस अवधि में शिक्षक तथा प्रशिक्षक बन कर नए सर्वेयरों को तैयार करता रहा। सन् 1868-69 में किशन सिंह तथा कलियान सिंह ने तिब्बत में विस्तृत सर्वेक्षण कार्य किया। सन् 1869 में मिर्जा, जॉर्ज हेवर्ड तथा राबर्ट शॉ ने काशगर की यात्रा कर उस क्षेत्र के बारे में और अधिक भौगोलिक जानकारियां जुटाईं।

सन् 1869 में लार्ड लॉरेंस के स्थान पर लार्ड मेयो भारत के नए वायसराय बने। चीनी तुर्किस्तान के शासक याकूब बेग के रूस तथा चीन दोनों से तनावग्रस्त संबंधों के कारण भारत के औपनिवेशिक शासकों को चीनी तुर्किस्तान को 'बफर जोन' बनाने की संभावना नजर आने लगी थी। लेकिन इसी अनुपात में रूसी हस्तक्षेप की संभावना भी थी। याकूब बेग को भी भारत से व्यापारिक संबंधों के विकसित होने में लाभ था। याकूब ने सन् 1870 में एक प्रतिनिधि को इस संदर्भ में वार्ता करने हेतु भारत भेजा था।

सन् 1870 में नैन सिंह को डॉगलस फोरसैथ के मिशन में शामिल कर यारकंद को भेजा गया। वे जब लेह में थे तो उसको एक अप्रत्याशित कारण से लेह से वापस आना पड़ा। कारण दरअसल यह था कि जब नैन सिंह को वहां भेजने की बात आई तो लेह में याकूब खां के प्रतिनिधि मिर्जा शादी को जैसे ही नैन सिंह के प्रशिक्षित सर्वेयर होने तथा उसके गुप्त रूप से यात्रा करने की जानकारी हुई तो उसे शक हो गया और उसके शक के निवारण के लिए नैन सिंह को वापस देहरादून भेज दिया गया और जी.टी.एस. का



कोई व्यक्ति इस मिशन में नहीं ले जाया गया।

इस तरह नैन सिंह को लौटना पड़ा और उसे अपनी डायरियों तथा संस्मरणों को ज्यादा विस्तार से लिखने का अवसर मिला। इस बीच मिले कुछ समय का उपयोग नैन सिंह ने एक छोटी सी पर अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक की तैयारी में किया। सन् 1871 में लिथो प्रेस से प्रकाशित यह पुस्तक 'अक्षांश दर्पण' भूगोल तथा नक्षत्र विज्ञान के विविध पक्षों को बड़ी सरलता से प्रस्तुत करने का प्रयास थी। निश्चय ही यह देशी भाषाओं में लिखे गए प्रारंभिक विज्ञान लेखन का उत्कृष्ट नमूना था (देखें: एशिया की पीठ पर, खंड दो, 2006)।

यद्यपि आधुनिक भारतीय विज्ञान लेखन के इतिहास में इसकी चर्चा नहीं हो पाई है लेकिन भारतीय भाषाओं में लिखी गई यह इस तरह की प्रारंभिक पुस्तकों में से रही होगी। अगले ही वर्ष मांटगोमरी ने पश्चिमी हिमालय तथा कश्मीर के विभिन्न मार्गों की जानकारी देने वाली पुस्तक तैयार की और इसकी रचना में नैन सिंह की विभिन्न यात्राओं से मिली सामग्री से मदद ली गई थी।

# 6

# यारकंद में पांच महीने

## मध्य एशिया के तमाम इलाकों से होकर

नैन सिंह रावत अब तक भारतीय सर्वेक्षण विभाग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंवेषक के रूप में उभर चुका था। ठोकज्यालुंग की यात्रा से उसे पूर्ण प्रामाणिकता मिल गई थी। इस बीच औपनिवेशिक सरकार अनेक नए अभियानों की शुरूआत चाह कर भी नहीं कर सकी और इस कारण नैन सिंह को पूरे पांच साल का आराम इस अर्थ में मिल गया था कि वह सिर्फ सर्वे मुख्यालय देहरादून के कार्यों में व्यस्त रहा। यह समय यूरोप के इतिहास में पेरिस कंयून, जर्मनी तथा इटली के एकीकरण तथा प्रकारांतर में प्रथम विश्व युद्ध की तैयारी का था।

भारतीय इतिहास में सन् 1857 के संग्राम के बाद का समय औपनिवेशिक शासकों के लिए शंकाओं भरा तथा भारतीय समाज के लिए पुनर्जागरण की दूसरी लहर के विस्तार का था। देश में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के अंत के बावजूद बर्तानवी औपनिवेशिक सत्ता कायम थी। प्रेस एक्ट तथा आर्म्स एक्ट लागू हो गए थे पर दूसरी ओर एल्बर्ट बिल जैसा उदाहरण भी सामने आया था, जिसे भारतीय समाज ने समर्थन दिया था। भारतीय राष्ट्रीय संग्राम विकसित हो रहा था तथा आधुनिक भारत की अनेक प्रतिभाएं जन्म ले रही थीं। प्रेस तथा पत्रकारिता के विकास के साथ राष्ट्रीय संस्थाओं तथा संगठनों का जन्म भी कुछ ही समय में होने वाला था।

भारतीय इतिहास के इस महत्वपूर्ण मोड़ पर सर्वे और अंवेषण की दुनिया इस सबसे अलग अपनी मंथर गति से चल रही थी। अब भी एशिया के बहुत बड़े इलाके अज्ञात बने हुए थे और इन इलाकों को नए अंवेषकों के आगमन का इंतजार था। इस समय तक चीन और रूस दोनों देशों में पर्याप्त जागृति हो चुकी थी।

14 फरवरी 1873 को मेजर मांटगोमरी ने, जो तब ग्रेट ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे का उप अधीक्षक (डिप्टी सुप्रिंटेंडैंट) था, नैन सिंह को देहरादून में आदेश दिया कि वह ब्रह्मपुत्र की ल्हासा से नीचे की अब तक अज्ञात घाटी का सर्वे करे। यह सुझाव दिया गया कि नैन सिंह इस यात्रा हेतु पहले इलाहाबाद तथा साहिबगंज तक रेल से जाए। वहां से



दार्जिलिंग तथा सिक्किम होकर ग्याङचै को निकले और फिर ल्हासा पहुंच कर च्याकसम छ्योरी तथा छ्युसुल स्थान से ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे पैमायश करता हुआ ल्होखालो होकर पूर्वोत्तर भारत में स्थित लखनपुर की सरकारी अमलदारी तक पहुंचे। यह बड़ा और जोखिम भरा अभियान था और नैन सिंह इसे सफलतापूर्वक करना चाहता था। नैन सिंह को शायद इस बात का भी भान था कि यह उसका अंतिम अंवेषण अभियान होगा।

अगले ही दिन यानी 15 फरवरी 1873 को उसने देहरादून से रेल से मुरादाबाद होकर अल्मोड़ा को यात्रा शुरू की। उन सालों में उत्तराखंड के पाद प्रदेश में रेल नहीं पहुंची थी। मुरादाबाद से आगे तराई-भाबर का जंगली इलाका पैदल ही पार करना पड़ता था। तब तराई-भाबर का प्राकृतिक परिदृश्य आज से एकदम भिन्न था। यह घने जंगलों और पर्याप्त जीव जंतुओं वाला इलाका था। अल्मोड़ा पहुंच कर वह तैयारी में जुट गया। उसे अपने सहयोगी तथा नौकरों को भी छांटना था। अनेक औजारों तथा उपकरणों का उसको इंतजार करना था, जिन्हें किशन सिंह द्वारा देहरादून से लाया जाना था। इसी बीच नैन सिंह के लिए यह आदेश आया कि नए आदेश तक वह कहीं न जाएं। वह तैयारी और प्रतीक्षा करता रहा।

26 फरवरी 1873 को किशन सिंह औजारों सहित अल्मोड़ा पहुंच गया। नए अभियान की तैयारी चलती रही। दूसरे हुक्म के आने के इंतजार में नैन सिंह के कई दिन गुजर गए। इसी बीच खराब स्वास्थ्य के कारण मांटगोमरी इंग्लैंड चला गया था। अब उसका स्थान कैप्टन हेनरी ट्रॉटर ने लिया। अप्रैल 1873 के आरंभ में ग्रेट ट्रिगनोमेट्रिकल सर्वे के डिप्टी सुप्रिंटेंडैंट हेन्नेसे द्वारा नैन सिंह को बताया गया कि घोषित कार्यक्रम स्थगित हो गया है। नैन सिंह को किशन सिंह सहित मसूरी पहुंचने, दो नए सर्वेयरों को तुरंत पैमायश का काम सिखाने तथा फॉरसेथ एवं ट्रॉटर आदि के साथ यारकंद और अक्सू इलाके में जाने का आदेश मिला। यह दरअसल दूसरा फॉरसेथ मिशन था और नैन सिंह की तीसरी बड़ी यात्रा थी। नैन सिंह को यह पता नहीं चल सका कि पिछली तय यात्रा किस कारण स्थगित हुई।

इस तरह नैन सिंह को नए अभियान यानी दूसरे फॉरसेथ मिशन में शामिल होने की तैयारी करनी पड़ी। इस बीच किशन सिंह घर को चला गया था। उसे बुलाने तथा सर्वेयरों की खोज में आदमी भेजा गया। किशन सिंह लौट आया तो कलियान सिंह तथा जसमल के साथ कुछ खस नौकरों को भी भर्ती किया गया।

### यारकंद की ओर

भाई कलियान सिंह, किशन सिंह तथा जसमल सहित कुछ खास कुलियों के साथ मार्ग में किशन सिंह तथा जसमल को सर्वे कार्य सिखाता हुआ नैन सिंह 3 मई 1873 को अल्मोड़ा से चला। यह गर्मी का मौसम था और ऐसे में सर्वे करते-कराते हुए जाना

निश्चय ही थकाने वाला कार्य था। विभिन्न स्थानों से होकर 15 दिन की यात्रा के बाद नैन सिंह 18 मई को मसूरी पहुंचा। कर्नल वाकर ने नैन सिंह तथा साथियों को कप्तान ट्रॉटर को सौंप कर कहा कि फिलहाल उनका दल अक्सू क्षेत्र को जाए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह दूसरा फॉरसेथ मिशन था। अन्य निर्देश फिर दिए जाने बाबत बताया गया। इस अभियान में डॉगलस फॉरसेथ, चैपमन, थॉमस गौर्डन, हेनरी ट्रॉटर, जौन बिडल्फ, डाक्टर एच. बैल्यू, डा. स्टोलिक्जा आदि साहब-अंवेषक भी थे। इनमें से स्टोलिक्जा की मृत्यु वापसी में लेह में ही हुई थी और उसकी कब्र अभी भी लेह में मौजूद है। यह शायद तिब्बत में सर्वे आव इंडिया का पहला अभियान था, जिसमें अंग्रेज अधिकारियों ने प्रत्यक्ष और इतनी बड़ी संख्या में हिस्सेदारी की थी।

9 जून 1873 को मसूरी से चलकर नैन सिंह का दल चकरौता छावनी तथा जुब्बल होते हुए 20 जून को शिमला पहुंचा। कुछ समय बाद हेनरी ट्रॉटर भी शिमला पहुंच गया था। 1 जुलाई को ट्रॉटर ने कहा कि वह और नैन सिंह मरी और कश्मीर होकर लेह को जाएंगे। कलियान, किशन सिंह तथा जसमल कुल्लू तथा लाहौल होकर लेह पहुंचेंगे। फिर दिसंबर में सभी साहब अक्सू पहुंचेंगे। बाद में ट्रॉटर ने विचार बदल लिया और सबसे अनुभवी व्यक्ति के रूप में नैन सिंह को अभियान के मुखिया फॉरसेथ के-साथ के लिए छोड़ दिया।

इस प्रकार नैन सिंह को फॉरसेथ साहब के साथ छोड़कर 3 जुलाई 1873 को ट्रॉटर मरी (वर्तमान में पाकिस्तान का प्रमुख हिल स्टेशन) होकर लद्दाख के लिए रवाना हुआ। 6 जुलाई को कलियान सिंह, किशन सिंह तथा जसमल एक नौकर सहित कुल्लू होकर लेह को रवाना हुए। इस मार्ग में उन्हें अनेक दर्रों को पार करना था। इसी बीच इनके कैंप से कुछ सामान तथा एक सैक्सटेंट चोरी हो गया, जिसे बाद में बरामद कर लिया गया था। इस हेतु इस दल ने नैन सिंह को पत्र दिया जिसे उसने फॉरसेथ को भेजा। फॉरसेथ ने शिमला के डिप्टी कमिश्नर को पत्र भेजा और उसने पड़ताल कर सैक्सटेंट बरामद करवा दिया।

9 जुलाई 1873 को फॉरसेथ ने नैन सिंह को अपने बंगले में बुलाया और कहा कि अब रुदोक की राह खोतान होकर अक्सू जाने का आदेश स्थगित जानो और किशन सिंह आदि को साथ लेकर लद्दाख में हाजिर होवो। अक्सू नामक स्थान पर सन् 1604 में बैनीडिक्ट गोज के बाद कोई यूरोपीय नहीं गया था। 10 जुलाई को नैन सिंह ने अपनी यात्रा का बंदोबस्त किया और शिमले से रवाना हुए। 11 जुलाई को कलियान सिंह तथा किशन सिंह भी उसके साथ आ गए। अलमोड़े से ही उनके साथ चल रहा घोड़ा फिर नैन सिंह को मिल गया। रुदोक की राह अक्सू जाने के कारण नैन सिंह से घोड़ा लेकर किशन सिंह आदि को दे दिया था। फागू से फिर यह घोड़ा नैन सिंह की सवारी के काम आया। हालांकि इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा सका है पर कदाचित



यह कुमाऊं से पहला और अकेला घोड़ा होगा, जिसने सर्वेक्षण के इतने बड़े अभियान में हिस्सेदारी की थी।

12 जुलाई को मतेना, 13 को कुमारसेन, 14 को दिलास, 15 को कोट, 16 को जिव्वी, 17 को लारजी, 18 को मुईण, 19 को सुल्तानपुर, 20 को डोवी, 21 को दाना, 22 को राले, 23 को खोकसार, 24 को गुंदले होकर 25 जुलाई 1873 को वे भागा नदी के किनारे स्थित केलांग (लाहौल) नामक स्थान पर पहुंचे।

यहां केलांग में अगली नौ मंजिलों के लिए गोदाम (आदमियों के लिए राशन तथा घोड़ों के लिए घास) तथा अन्य सामान लादने के लिए घोड़ों की व्यवस्था की गई। प्रति घोड़ा नौ रुपया किराया तय किया गया यानी लगभग एक रुपया प्रतिदिन। 27 जुलाई 1873 को वे कोलंग, 28 को दारचे सुमदो, 29 को दोजम, 30 को वसवव वरषा तथा 31 को ल्हड़चा पहुंचे। केलांग-लेह मार्ग के इस बीच के विभिन्न स्थानों—विशेष रूप से सूरज ताल तथा वहां से भागा नदी को जन्म लेते हुए देखकर—से होकर 1 अगस्त 1873 को उन्होंने बाराल्हाचा दर्रा पार किया। इस रात वे फलाम डांडा में रहे। 2 अगस्त 1873 को छरप तथा 3 को ग्यामनामे स्थान पर नदी के किनारे पड़ाव डाला। यहां नदी पार हरी घास देखकर घोड़े चरने चले गए। 4 अगस्त को नदी में पानी इतना चढ़ गया कि कुलियों के अलावा कोई इसे पार नहीं कर सका। बिना घोड़ों के वे आगे नहीं बढ़ सकते थे और घोड़े अब उनकी नजर से भी ओझल हो गए थे।

किशन सिंह तथा जसमल ने जोखिम उठाने का निर्णय लिया। उफनती नदी को पार कर घोड़ों को ढूंढ कर वापस लाना। जब किशन सिंह तथा जसमल नदी पार करने लगे तो जसमल नदी में बह गया लेकिन कलियान ने तत्काल नदी में कूद कर उसे बचा लिया। एक त्रासदी होते होते रह गयी। किशन सिंह ने एक कठिन परीक्षा ठीक से नदी पार कर पास की तो कलियान ने जसमल को बचा कर। फिर आगे की यात्रा प्रारंभ हुई। 5 अगस्त को दांचेलुंग, 6 को क्यांछ्यू तथा 7 को रोकचेन पहुंचे। क्यांछ्यू में कलियान बीमार भी हो गया था। बीमार अवस्था में उसे इस ऊंचे क्षेत्र से ले जाना एक दिक्कत भरा काम था। इसके बाद 8 को तांगलांग ला (17580 फीट) जैसे ऊंचे दर्रों को पार किया। नैन सिंह ने तांगलांग ला से पहले नाकिला (15440 फीट) तथा लाछूलुंगला (16600 फीट) दर्रों को भी पार किया होगा। 9 अगस्त को रंगीन चट्टानों वाले ग्या नामक स्थान पर और 10 को मारचैलंग पहुंचे। अंततः 12 अगस्त 1873 को वे लेह पहुंचे।

लेह में इस समय जॉनसन नामक सर्वेयर अधिकारी काम कर रहा था। उसने नैन सिंह का अंतरंग स्वागत किया। जॉनसन का बंगला करजूबाग में था और इसी के पास नैन सिंह तथा साथियों ने भी डेरा डाला। जौनसन ने कलियान सिंह के स्वास्थ्य की पड़ताल डाक्टर से कराई। उसके बाद उसकी तबीयत भी ठीक होने लगी। लेह के

करजूबाग, वर्तमान में यह स्थान सेना के पास है और सेना के जरनल इसमें रहते हैं और अपने समय में मूरक्राफ्ट भी यहीं रहा था, स्थित जी.टी. सर्वे स्टेशन में नैन सिंह ने कई रोज तक खुफिया तौर पर अक्षांश अंकित किए। वह किशन सिंह, कलियान तथा जसमल से काम कराकर उन्हें सिखाता भी रहा। यह काम बहुत सावधानी से तथा पूरी तरह गुप्त रूप से करना था। 27 अगस्त 1873 को कप्तान ट्रॉटर, कप्तान बिडल्फ तथा डाक्टर इसलसका (स्टोलिक्जा) का लेह आगमन हुआ। 29 अगस्त को कप्तान ट्रॉटर ने बताया कि अब हर घंटे बैरोमीटर पढ़ सकते हो। नैन सिंह ने सुझाव दिया कि हम यह काम खुफिया तौर पर करें और अपने को व्यापारी बताएं।

कुछ दिनों बाद जॉनसन ने बताया कि अब वे सर्वे तथा कंपास का काम खुले आम कर सकते हैं। शायद डोगरा प्रशासन से इस हेतु स्वीकृति मिल गई थी। इस तरह अब कंपास का काम खुले आम होने लगा। 11 सितंबर 1873 को उन्हें बताया गया कि कलियान, किशन सिंह तथा दो नौकर च्यांगछेमो होकर उनके साथ शाहदुल्ला को चलेंगे और जब तक फॉरसेथ साहब नहीं आते नैन सिंह को लेह में रुके रहने का आदेश हुआ। यह आश्चर्यजनक था कि नैन सिंह का दल मिशन यारकंद की विभागीय टीम में नहीं था। साहबों के लिए गोदाम तथा बर्दायश की व्यवस्था की गई थी। पर उसमें से नैन सिंह तथा साथियों को कोई मदद नहीं दी गई। नैन सिंह के दल से अपने भोजन तथा गरम कपड़ों की स्वतंत्र व्यवस्था करने को कहा गया था। नैन सिंह ने अपने दल के लिए हर आवश्यक सामग्री की व्यवस्था की।

अगले दिन 12 सितंबर को ट्रॉटर, बिडल्फ, कलियान, किशन सिंह, मुंशी अब्दुल सुबान तथा कुछ नौकर च्यांगछेमो होकर यारकंद को रवाना हुए। इसी मार्ग में आगे ट्रॉटर ने पैंगगौंग झील में अपनी रबर की नाव चलाई थी। निश्चय ही पहली बार पैंगगौंग झील में रबर की नाव चलाई गई थी। उधर 20 सितंबर 1873 की सुबह दस बजे फॉरसेथ, कर्नल गौर्डन, कप्तान चैपमैन तथा डाक्टर एच. बेल्यू लेह पहुंचे। फॉरसेथ ने नैन सिंह को बताया कि वह उसके साथ यारकंद को चलेगा और फिर वहां से अक्सू तथा लोप की ओर जाएंगे। 21 सितंबर और उसके बाद भी नैन सिंह लेह में ऑबजर्वेशन लेता रहा। 29 सितंबर को लेह से रूट सर्वे करते हुए यह दल आगे बढ़ा।

30 सितंबर 1873 को कुरम ला पार करते समय सभी के सिर में दर्द हो गया। यह कुरुम ला शायद तब वर्तमान खरदुंगला के लिए प्रचलित नाम था। विल्यू साहब ने हुक्म दिया था कि जब तक हम न पहुंचें कुरम ला पर बैरोमीटर खड़े किए रहना। वे बचश्म खुद बैरोमीटर देखना चाहते थे। इसी बीच हवा बहुत तेज चल रही थी। साढ़े नौ बजे साहब आया और उसने बैरोमीटर के अंकन को नोट किया। ऊंचाई और धूप के कारण दल के सदस्य घोड़ों पर भी नहीं चढ़ पा रहे थे। इस शाम को यह दल खारजो गांव में पहुंच सका। 15-16 घरों वाले इस गांव में खेती होती थी। रात में वर्षा हुई और बर्फ भी



पड़ी। 1 अक्टूबर की सुबह तक बर्फ पड़ती रही। बर्फ पड़नी बंद हुई तो वे चले। उस रात छाती गांव में डेरा पड़ा। 2 अक्टूबर को वे तिरत गांव में रहे और 3 को त्यागार गांव में रहे। इस गांव में 25-30 घर थे तथा एक गोंपा भी था।

एक ठंडे रेगिस्तान से होकर उन्होंने स्योक नदी पार की। स्योक नदी विस्तृत पाट में अनेक शाखाओं में बटी हुई थी। यहां उन्होंने बालू के टिब्बा (सैंड ड्यूंस) भी देखे। अब वे पानामिक गांव में पहुंच गए। यह गांव अपने गर्म पानी के स्रोतों के लिए मशहूर था। आज भी है और सियाचिन ग्लेशियर की राह जाने वाले इन्हें देख सकते हैं। तब पानामीक में 20-25 धर थे। 4 अक्टूबर 1873 को पानामिक गांव में लामा से आग्रह कर उन्होंने मठ की मूर्तियां देखी और फोटो भी खींची। लामा को 5 रुपया भेंट किया गया। नैन सिंह ने कदाचित् किसी अभियान में पहली बार कैमरे का प्रयोग देखा। तब यह उसके लिए विस्मय का उपकरण था। आज यह सोचना रोचक हो सकता है कि यदि नैन सिंह ने अपने इस या अन्य अभियानों में फोटो ली होती तो आज उसके शब्दों के साथ उसके फोटो भी संदर्भ की तरह इस्तेमाल होते।

पानामिक गांव के पास ही स्योक तथा नुब्रा नदियों का संगम होता है। नुब्रा नदी सियाचिन ग्लेशियर का पानी लेकर आती है और अब तक दक्षिण पूर्व को बह रही नुब्रा नदी स्योक में मिलने के बाद दक्षिण पश्चिम को बहने लगती है। इस गांव के उत्तर में गर्म पानी के अनेक स्रोत थे। साहब लोग भी इन्हें देखने गए। थर्मामीटर पानी में डाला गया तो यह 174 डिग्री फैह्रनहाइट निकला (78.89 डिग्री सैन्टिग्रेट)। पानामिक में यह 176 डिग्री (80 डिग्री सैन्टिग्रेट) था। साहब का कहना था कि इस गरम चश्मे के भीतर तांबे की खान है। वहां की मिट्टी और पत्थर परीक्षण हेतु लाए गए।

यहीं पास के गरम पानी के एक स्रोत को देखते समय नैन सिंह की रूट सर्वे की किताब खो गई। कितनी ढूंढी पर नहीं मिली। नैन सिंह ने ढूढने वाले को दो रुपया इनाम देने की घोषणा भी की। पर किताब नहीं मिली। उसके द्वारा अब तक के समस्त रूट सर्वे उसी में नोट किए गए थे। फॉरसेथ तथा चैपमैन ने उसे समझाते हुए कहा कि यहां तक का तो नक्शा बना ही है। अतः परेशानी की बात नहीं, पर अब आगे को अवश्य ही सावधान रहना। लेकिन इस घटना के लिए नैन सिंह अपने को माफ नहीं कर पा रहा था। यह चिंता भी उसकी समझदारी तथा अपने काम के प्रति समर्पण की भावना को उजागर करती थी।

6 अक्टूबर को वे च्यांगलुंग गांव में रहे। रात को भी आब्जरवेशन लेते रहे। खारजोंग (अब इसे खारदुंग कहा जाता है। इसी पर लेह तथा इस घाटी के बीच के खरदुंगला दर्रे का नाम पड़ा है) गांव से च्यांगलुंग तक को पट्टी नुवरा कहा जाता था। पर भोटियों की किताब में नैन सिंह ने इसे 'टुमरा' लिखा हुआ देखा था। यहां घने पेड़ों के बगीचे को 'टुमरा' कहा जाता था। नुवरा नदी के किनारे सीवकथार्न, पापलर, विलो

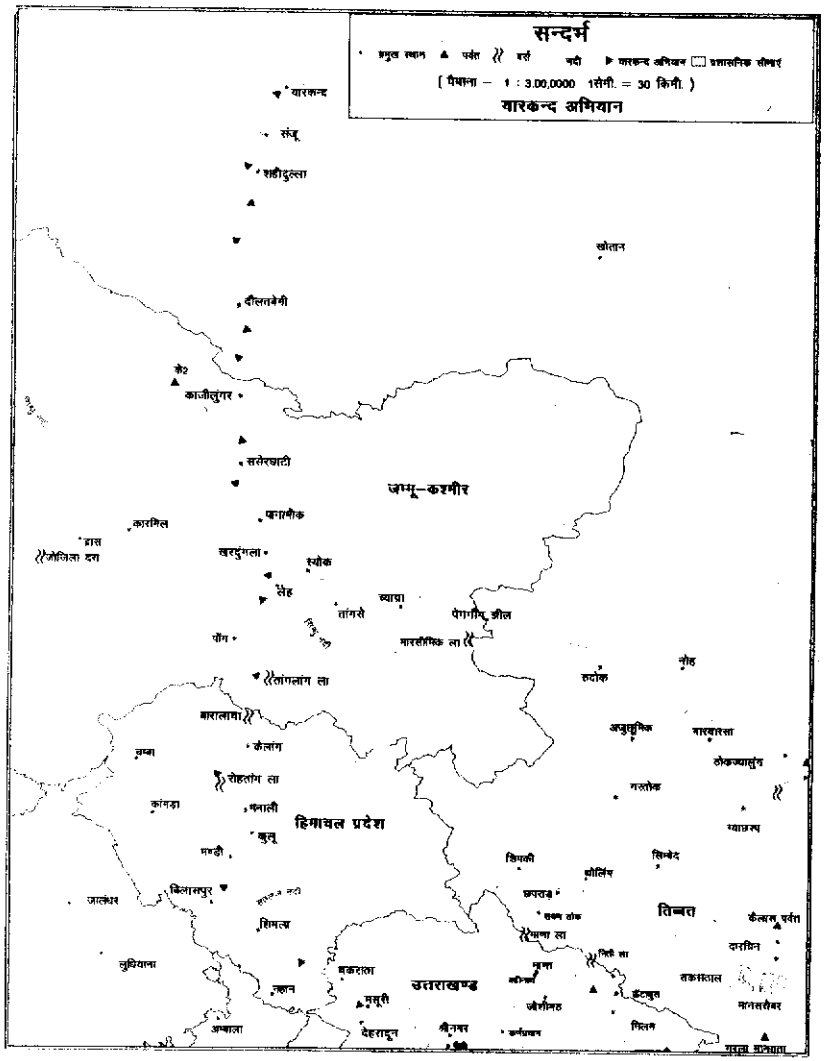


यारकंद–खोतान का अभियान : 1873-74



आदि के पेड़ बड़ी संख्या में थे। सीबकथार्न के पेड़/झाड़ियां बहुत कांटेदार होती थी। इनमें पीला फल लगता था। इन्हें 'छारमा' कहा जाता था। नुब्रा तथा स्योक नदियों की घाटियों का यह प्राकृतिक यथार्थ आज भी वैसा ही है। सिर्फ पैदल मार्ग का स्थान मोटर मार्ग ने और घोड़े, याक तथा दो कूबड़ वाले ऊंटों के कारवां का स्थान सेना या पर्यटकों के वाहनों ने ले लिया है।

7 अक्टूबर को च्यांगलुंग से काम शुरू कर ल्हासग्याल्हा पारकर तोतियालाक या पांदांसा में डेरा डाला। यह अत्यंत ठंडा स्थान था और यहां थर्मामीटर का पारा जम गया था। 8 अक्टूबर को ससेरघाटी (शियाचीन ग्लेशियर के वर्तमान मार्ग के दांई ओर) को चढ़ना शुरू किया। रास्ते में अत्यधिक बर्फ थी और दल के सदस्य बार बार फिसल जाते थे। बहुत सावधानी के बावजूद चलना कठिन था। ऊपर से मार्ग का सर्वेक्षण भी करना था। किसी तरह शाम को ससेरघाटी पहुंचे। हवा बहुत तेज थी और ठंड भी बहुत थी। क्वथनांक लेने के लिए नैन सिंह ने आग जलानी चाही पर तेज हवा के कारण यह संभव नहीं हुआ। चादर तथा कपड़ों की ओट करके भी आग नहीं जल सकी। तब चादर का टुकड़ा जलाकर आग जलाई। रात को ससेरपुलू जगह पर पहुंचे।

9 अक्टूबर को चैपमैन ने नैन सिंह को हुक्म दिया कि अब वे अपने सामान सहित कजिल जुंगर होकर दौलतबेगी को चलेंगे। जसमल को शलकर होकर भेजे जाने की सोची गई। बाद में वह दौलतबेगी में मुख्य दल से मिल जाएगा। जसमल की आंखें बर्फ के कारण लगातार दुख रही थी। फिर भी वह मार्ग सर्वेक्षण करता हुआ आगे निकल गया'। नैन सिंह को साहबों के साथ रहना था। आगे वे बर्फ के बीच और नदी के साथ साथ चले। बहुत दिक्कत के साथ वे खोमदान पहुंचे। नैन सिंह के नौकर ने कुछ लकड़ियां इकट्ठी कर उनके लिए चाय बनाई। साहब और नैन सिंह ने मिलकर आब्जर्वेसन लिए।

10 अक्टूबर को ग्यापश्यन में रुके। यहां कुछ घास लकड़ी भी थी। यहां से एक बर्फानी शिखर नजर आता था, जिसे खोमदानरी कहा जाता था। इस दिन वे नौ मील तथा पहले दिन ग्यारह मील चले थे। 11 अक्टूबर को कुछ समय चलने के बाद बड़ी नदी छूट गई। शाम को नैन सिंह तथा एक अन्य मार्ग से जसमल भी दौलतबेगी पहुंच गए। किसी तुर्क व्यक्ति दौलतबेगी की यहां पर मृत्यु होने के कारण इस जगह का यह नाम प्रचलित हो गया था। सर्दी बहुत अधिक थी और नैन सिंह का थर्मामीटर जम गया था। बल्कि ऋण पांच पर चला गया था।

12 अक्टूबर को दोपहर दो बजे वे काराकोरम पहाड़ पर पहुंचे। बर्फ कम थी और चढ़ाई भी। लेकिन चलने और उपर चढ़ने में दम फूलता था। इस दिन वे 46200 कदम यानी लगभग 23 मील चले थे। उस रात वे वलती कैंप में रहे। ठंड बहुत अधिक थी। 13 अक्टूबर को दो मंजिल की एक करते हुए रात को वे आकताक कैंप में रहे। नैन

सिंह क्योंकि मार्ग सर्वेक्षण कर रहा था इसलिए वह और अधिक देर से पड़ाव में पहुंचा। इस दिन वे सत्ताइस मील से ज्यादा चले थे। आकताक में ही कलियान सिंह और ट्रॉटर भी उनसे मिल गए।

ससेरघाटी यहां की सर्वोच्च पर्वतमाला थी। इसी में ससेर कांगरी शिखर मौजूद था। यहां रास्ते में बर्फ बहुत मिली। दल के सदस्य बार-बार फिसल जाते थे। यहां से दल के सदस्य दो हिस्सों में बंट कर आगे बढ़े। नैन सिंह चैपमन के साथ काजिल लंगुर होकर दौलतबेगी को गए। रास्ते में उन्हें एक जमी हुई नदी मिली। जिसमें चलने में बहुत दिक्कत होती थी। खाल चक्युन में कारगिजों ने बड़ी मदद की और शहीदुल्ला नामक स्थान तक के लिए एक आदमी भेज दिया। शहीदुल्ला में फॉरसेथ, चैपमन तथा ट्रॉटर मिले। ट्रॉटर ने इसी यात्रा में 'मार्को पोलो भेड़' (*Ovis poli*) के नाम से जानी जाने वाली विशेष जंगली भेड़ का शिकार किया। बिडल्फ उसी दिन आगे निकल गया था। अन्य साहबों ने कुछ दिन ठहरकर आगे चलना स्वीकार किया था। अक्षांश-देशांतर ज्ञात करने का काम साहब लोग खुद करते रहे और मार्ग सर्वेक्षण का काम नैन सिंह को सौंपा गया। यह काम छिप कर किया जाना था। दरअसल आगे बढ़ने के लिए साहब लोग औपचारिक स्वीकृति की प्रतीक्षा में थे, जो तब तक नहीं मिली थी।

14 अक्टूबर 1873 को नैन सिंह से कहा गया कि वह यारकंद नदी के किनारे किनारे करगिज जंगल तक जाकर शहीदुल्ला वापस आए। यह भी बताया गया कि करगिज जंगल में डाकू रहते हैं, जो किसी भी यात्री को पकड़ कर बदक्शा में बेच देते हैं। इस पकड़ में जो एक बार आ गया वह आजन्म गुलामी में रहने को अभिशप्त हो जाता था :

> **"इस हुक्म के पाने से मैं जाने को तयार हुआ लदाख़ वाले भोट जो मेरे साथ किराय कस लोग थे जाने से नाराज हुए कहा कि करगिज़ जंगल में तो डाकू लोग रहते आदमी पकड़ ले जाते और कंजूत वदकशान व़गैरह में लेजाकर वेच डालते हैं जनाव जानसैन साहव ने भी कहा कि क्या जान तुम्हारा भारी पड़ा है जो करगिज़ जंगल के तर्फ जाते हो अगर जाते हो तो खुशी है पर कम्पास लगाना भूल जाओगे करगिज लोगों के भेड़ वकरियां चुंगाओगे–**
>
> **यही वात मैंने अपने साहव से जाहर की तो साहव मौसूफ ने फर्माया कि तुम आपने साथ के एक होशियार आदमी को आगे 2 करगिज लोगों के देखने को भेजना पिछाड़ी से तुम काम करते हुवे चलना जहां से तुम उन लोगों को देखते हो वहां से वापिस आना ॥"**

इस तरह साहब लोग सीधे शहीदुल्ला को गए और नैन सिंह अपने साथ जसमल, एक नौकर तथा तीन कुलियों को लेकर 15 अक्टूबर 1873 को यारकंद नदी के किनारे-किनारे करगिज जंगल की ओर चला। उस दिन बहुत गर्मी थी। लकड़ियों के



अभाव में वे कहीं रुक नहीं सके। 18 मील चलकर शाम को वे ओंफू कैंप में पहुंचे। 16 अक्टूबर को यारकंद नदी के बाएं किनारे चल कर दोपहर में वे खपलुंग नदी के किनारे पहुंचे। यह नदी बाद में यारकंद नदी में मिल जाती थी। यहां ओंफू (सीबकथार्न) के पेड़ों के अलावा कुछ घास भी थी। रात नदी के किनारे रहे। बादलों के लगे होने से आब्जर्वेसन नहीं हो सका। इस पड़ाव का नाम नैन सिंह कैंप रखा गया। इस दिन वे साढ़े तेरह मील चले। 17 अक्टूबर को कश्मीरी जिलगा में डेरा किया। यहां एक और नदी यारकंद नदी में मिलती थी। यहां पर मुसाफिरों के टिकने और चूल्हे बनाए जाने के चिन्ह मौजूद थे। इस दिन 13 मील चले। उन्हें जंगली घोड़े दिखाई दिए। 18 अक्टूबर को 17 मील चलकर नदी के बाएं किनारे पर पड़ाव डाला।

इस तरह 19 अक्टूबर 1873 तक तो नैन सिंह का छोटा दल सुरक्षित चलता रहा। उन्हें उस दिन कुछेक खंडहर तो अवश्य मिले पर कोई जीवंत बसासत नहीं मिली। ये खंडहर करगिजों के पुराने मकानों के बताए जाते थे। वहां के विशिष्ट भौगोलिक तथा पारिस्थितिक परिदृश्य ने नैन सिंह को तिब्बत तथा मध्य एशिया की स्थानीय भिन्नताओं को समझने का मौका दिया, जो प्रकृति के साथ-साथ समाज में भी दिखाई देती थी।

20 अक्टूबर 1873 को उन्हें घास-लकड़ी तो खूब मिली पर कोई आदमी नजर नहीं आया। 21 अक्टूबर को जब नैन सिंह काम करते हुए आगे जा रहा था तो दो व्यक्ति घोड़े दौड़ाते हुए उसके पास आए। स्वाभाविक रूप से वे नैन सिंह को डाकू लगे। वे तुर्की भाषा में कुछ पूछने का प्रयास करने लगे पर नैन सिंह की समझ में कुछ नहीं आया। नैन सिंह को लगा कि वे यह पूछ रहे हैं कि हम कहां से आए हैं।

> **"ता. 21 अकतूवर के रोज़ थपोदीवान केम्प से जवकि क़रीव दो मील आगे पहुंचे तो दो सवार घोड़े डालकर हमारे ओर दौड़ते आते हैं जव मेरे साम्हने पहुंचे और घोड़े थामकर हमसे तुरकी जवान में उन दोनों ने कुछ कहा मैंने उनके इशारे से मालूम किया कि तुम कहां से आए करके पूछते हैं मैंने जवाव दिया जनाव फोरसैथ साहव वहादर का नौकर हूं साहव शाहदुल्ला हैं मैं वहीं जाता हूं रास्ता भूलकर यहां पर निकल आया हूं यह वात सुनकर उन दोनों में से एक तो मेरे साथ रहा दूसरा आदमी घोड़ा डालकर जहां से आया था उसी तर्फ को वापिस हुआ मैंने दिल में खयाल किया कि शायद ये कोई गारतगर लोग हैं हमको जियादा आदमी देखकर अपने और साथियों को वुलाने को सवार वापिस गिया है"**

डरे-डरे वे आगे बढ़े। इस बीच उधर से कोई घुड़सवार नहीं आए। कुछ समय बाद उनके सामने एक बड़ा खेमा आ गया था। यह पशुचारकों की एक प्रकार की अस्थाई बस्ती थी, जिसमें उनके सैकड़ों याक, भेड़, घोड़े तथा बकरियां मौजूद थीं। नैन सिंह तथा उसके साथियों को क्षण भर को लगा कि वे अब डाकुओं की बस्ती में आ गए हैं।

पर जैसे ही वे उस स्थान पर पहुंचे तो उनका हार्दिक स्वागत किया गया। उन्हें सूखी खुबानी खिलाई गई और झुक कर सलाम किया गया। नैन सिंह के मन में करगिजों के बारे में जो कहा गया था उसके आधार पर बनी धारणा समाप्त हो गई। इस जगह का नाम खालचक्युन था।

नैन सिंह उनकी सरलता और सहयोग भावना देखकर चकित था। वे उनके खेमे में बैठे रहे और उनकी बस्ती तथा समुदाय को समझने का प्रयास करते रहे। कुछ देर बाद नैन सिंह ने जब शहीदुल्ला का रास्ता पूछा तो उन्होंने एक करगिज को उनके साथ भेज दिया। इस तरह वे फिर अपने मुख्य दल के साथ आ गए। जिन करगिजों के बारे में इतनी सारी अफवाहें उन्होंने सुनी थी उन्हें इस रूप में देखकर वे नतमस्तक हो गए।

शहीदुल्ला में काराकश तथा आघर नदियों का संगम था और यहीं पर कश्मीर के महाराजा द्वारा बनाया गया एक किलानुमा मकान भी था। यहां शहीदुल्ला खोजा नामक तुर्क की मृत्यु हुई थी और उसी के नाम पर यह स्थान जाना जाने लगा था। इस बीच सामान तथा रसद ढुलान हेतु घोड़े कम पड़ गए। कुछ जानवर बीमार भी हो गए थे। 22 अक्टूबर 1873 को बादशाह अतालिक के कारदार से तारा सिंह के प्रयास से ढुलान हेतु दो घोड़े मिल गए पर लदान हेतु आदमी नहीं मिले। घोड़े भी इतने सुस्त थे कि रास्ते में जगह-जगह सामान गिरा देते थे। एक ओर सर्वे का काम, दूसरी ओर घोड़ों पर ध्यान। जैसे-तैसे शाम को कोरगन पहुंचे। इस दिन कुल 15-16 मील चले। रात को चाय में सत्तू घोल कर पिया क्योंकि कुछ और खाने को न था।

कोरगन में काराकश नदी के किनारे एक पुराना किला था। उसी की जड़ पर पड़ाव डाला गया। साहब लोग अपनी सुविधा के अनुसार रसद के साथ आगे चले गए। सिर्फ फॉरसेथ यहां पर थे। इस कारण नैन सिंह तथा साथियों को सिर्फ चाय और सत्तू से गुजारा करना पड़ा। क्योंकि उनका सामान भी साहबों के सामान के साथ लदा था। अगले दिन नैन सिंह ने कारदार के कुलियों से सुस्त घोड़े बदल मांगने में कामयाबी पाई। यहां रास्ते की बसासतों में वह अनाज की खोज करता रहा और एक गांव से उसने 4-5 सेर मकई भी ले ली, ताकि साथियों के भूखे रहने की नौबत न आए। 23 की रात काराकोरम नाले में रहे और मकई भून के खाई। उस दिन वे साढ़े बारह मील चले।

24 अक्टूबर को संजू दीवान की कठिन चढ़ाई चढ़नी पड़ी। बर्फ के कारण आदमी और घोड़े लगातार फिसल जाते थे। कई बार घोड़ों के बोझ गिर जाते थे। इस सामान को फिर घोड़ों पर लादना मुश्किल हो जाता था। उतार में चलना भी उतना ही कठिन था। शाम को ग्याजग्या कैंप में रहे। यहीं पर कप्तान ट्रॉटर तथा कप्तान बिडल्फ का डेरा था। नैन सिंह और साथियों की पहली बार साहबों की ओर से खातिरदारी हुई। इस दिन साढ़े चौदह मील से अधिक चले।

25 अक्टूबर को नदी के दाएं किनारे दस मील चल कर वे रुके। यहां पर मात्र दो



तीन घर तथा कुछ आबादी थी। 26 को सत्रह मील चलकर खेवज लंगर में आए। 27 को संजू में रहे। आसपास की बस्तियों को देखा। यहां खेत, जंगल, बगीचे थे। सेब, अनार, जर्दालू, खुबानी, आड़ू, नाशपाती, शहतूत तथा अखरोट के अलावा यहां सफेदा, चिनार, बैस तथा बैंत के पेड़ भी थे। इस वीराने में यह नखलिस्तान की तरह था। संजू तक पहुंचने में साढ़े चौदह मील चलना पड़ा था। संजू में हर सोमवार को मेला लगता था। नम्दे, मेवा, कपड़े सब सामान इस बाजार में मिलता था। 30 अक्टूबर को फॉरसेथ, चैपमैन तथा विल्यू के साथ बतालीक के बादशाह का वकील भी था।

अब लगातार कठिन और बर्फ भरा इलाका था। लेकिन इस तरफ बसासतें लगातार मिलती रही। इस विशाल ठंडे रेगिस्तान के बीच में नखलिस्तान मौजूद था, जहां छोटी-मोटी खेती थी तथा सेब, अनार, खुबानी, आड़ू, नाशपाती, शहतूत आदि के बगीचे थे। सफेदा, चिनार, वैस तथा बैत आदि के पेड़ भी थे। आगे संजू नामक बड़ा गांव मिला। 31 अक्टूबर 1873 को किशन सिंह तथा कलियान भी आ गए। उन्हें बड़ी कठिनाई हुई और मिशन यारकंद से उन्हें कोई सहयोग नहीं मिला। न लकड़ी मिली और न रसद। बल्कि सामान लादने के लिए उन्हें भेड़ें खरीदनी पड़ी। मिशन के लोगों से वे लकड़ी रसद मांगते तो वे नहीं देते। किशन सिंह और कलियान तो कई रोज भूखे रहे। जबकि नैन सिंह के दल को कहीं कोई ज्यादा दिक्कत नहीं हुई।

अगले ही दिन 1 नवंबर 1873 को ट्रॉटर ने नैन सिंह से कहा कि वह छिपकर संजू से यारकंद तक रूट सर्वे करे। फॉरसेथ ने अतालिक के बादशाह के वकील से सर्वे की विधिवत स्वीकृति लेने का प्रयास किया पर वकील ने यह कह कर टाल दिया कि यहां की रिआया जाहिल है, और रिआया कुछ बात बनाएगी तो ठीक नहीं होगा। शीघ्र ही उन्हें इस समाज की जाहिली का अनुभव हो गया। इसी दिन जब इन लोगों का फोटो लेने का प्रयास किया गया तो एक तुर्क ने वहां आकर सब लोगों को जबरन हटा दिया और फोटो नहीं खींचने दी। तनाव की संभावना के कारण उन्होंने दुबारा फोटो खीचने का प्रयास नहीं किया।

2 नवंबर 1873 को सभी साहब आगे बढ़े। नैन सिंह भी चुपचाप सर्वे करता रहा। रास्ते मे इतने आदमी थे कि लोगों की नजर बचा कर काम करना मुश्किल होता था। मिशन यारकंद यानी फॉरसेथ मिशन के तमाम नौकरों को ग्रासकट और खलासियों को भी सवारी मिलती थी सिर्फ नैन सिंह तथा उसके सहयोगी ही पैदल चलते थे। इस बात से नैन सिंह के नौकर बहुत बुरा मानते और उससे लड़ते थे और कहते कि क्या हम लोग नौकर सरकारी नहीं हैं कि जो हमको सवारी नहीं मिलती! यहां तक नाराज हो गए कि नैन सिंह को छोड़ कर भागने को तैयार हो गए। नैन सिंह ने सबको समझाया! जब अतिरिक्त धन राशि देने की बात कही, तब वे लोग कुछ राजी हुए :

**''संजू से 14 मील वायव्य कोण पर एक लंगरगाह है उस जगह में जहां दो एक**

**घर और एक पोखर पानी थोड़ा बाग है संजू से इस जगह से सिवाय रास्ते में कहीं पानी नहीं चलते हुए जब दो येक मील खुशताक डेरे में पहुंचना बाक़ी रह गया रात हो गया डेरे की आग की सीध से वैरंग लिया डिग्री दिया सलाई की रोशनी से पढ़ा लंगरगाह से 11।।। मील चलकर खुशताक गांव में आया लंगर से खुशताक तक रास्ते में पानी नहीं इस मंजिल कुल 51200 कदम यानी करीब पौने छबीस मील आए''**

खुश्ताक भी संजू की तरह हरा भरा, खेती तथा बगीचे वाला गांव था। 3 नवंबर को वे वेत्ववराक गांव पहुंचे। 4 नवंबर को वोयुरा गांव आए। यहां खेती का प्रचलन था और बगीचे भी थे। यहां नैन सिंह ने दक्षिण से उत्तर को बहने वाली एक नदी को रेत में गुम हो जाते हुए देखा। फिर कच्युंग से पंद्रह मील चलने के बाद वे राकउरक जंगल में पहुंचे। फिर अनेक नदियों तथा जंगलों को पारकर तुगीमान यानी रांथाक तथा नजर कोरगन किले से होकर 5 नवंबर को करगलिक कस्बे में आए। करगलिक कस्बे में नैन सिंह ने 300-400 घर देखे। बाजार के बीच एक नहर दक्षिण से उत्तर की ओर बहती थी। यह नहर तिजनप नदी से निकाली गई थी। करगलिक से एक मील पूर्व में खताइयों के समय का एक किला उजड़ा पड़ा था। नैन सिंह ने सुना कि सन्-1865 में जब तुंगानियों तथा यारकंद के रईसों ने खताइयों पर बलवा किया था तब 500 खताई इस किले में घिर गए थे। हमले के बाद वे सभी किले में मौजूद बारूद में जल गए थे।

करगलिक कस्बे से एक रास्ता खोतान को जाता था। 15 मील पूर्व में पहले लोक नामक गांव है। फिर 30 मील पूर्व में छोलाक लंगर खाना था। वहां से 15 मील पूर्व में गुमा शहर था, जहां 1500 तक घर बताए जाते थे। संजू से आने वाली नदी इसी गुमा शहर में पहुंचती थी। गुमा से 15 मील पूर्व में छोतार गांव था और फिर 20 मील पूर्व में मुजू गांव था। ये दोनों गांव भी बड़े थे। यहां से 20 मील पर फिआल्मा फिर 20 मील पर जावा बाजार था। यहीं पर एक हाकिम रहता था। यारकंद तथा खोतान से आने वाले इसी हाकिम की स्वीकृति से आगे बढ़ते थे। जावा बाजार से 20 मील की दूरी पर खोतान का इल्ची शहर था। यह शहर ख्वतन (खोतान) का सदर मुकाम था :

**''उस वाज़ार में एक हाकिम रहता राहगीर मुसाफिर जो कि यारकन्द या खोतन से आते हैं इसी हाकिम के पास अपने 2 राहदारियां बतलाना पड़ता तब उनको जाने को मिलता जवावाज़ार से 4 ताश यानी 20 मील अग्निकोण चलने बाद खोतन के इलची शहर है यही शहर ख्वतन का सदर मक्कान है**

**काशग़र से यारकन्द यारकन्द से करगलिक करगलिक से गुमा के राह ख़ोतान तक बराबर डाड़ी चली जाती लेकन करगलिक से खोतान तक राह रेतली है अक्सर हवा के सबब से रेत और गर्द गुहार उड़कर निशान रास्ते का गुम हो जाता है राह सनाख़्त के लिए जावजा पत्थर जमा कर के बुर्ज के तौर**



**बना रखे हैं उनहीं पत्थरों के पते से मुसाफ़िर लोग राह नहीं भूलते''**

करगलिक में भी हर सोमवार को बाजार लगती थी। यहां से 20 मील (4 ताश) दक्षिण में वेस्तराक गांव था। वहां से 10 मील पर थुलराक गांव था, जहां 200 घर थे। यहां से 10 मील और आगे आकछिक नामक छोटा गांव था। यहां से फिर 20 मील दक्षिण में थुकमा छ्युकमा नामक जगह थी, जहां पशुचारक समुदाय के लोग रहते थे। यहां से 20 मील पर आज़गान जंगल में रहना पड़ा था। फिर विशरक गांव तथा खाला दीवान होकर मंजारखोजा पहुंचा जा सकता था। इसके बाद काराकश नदी आती थी। इसी के पास नज़र कोरगान किला था।

नैन सिंह ने जब पता किया तो खालाक दीवान वाला रास्ता सबसे ठीक बताया गया। इस मार्ग में कोई भी घुड़सवार 5 दिन में यारकंद से शहीदुल्ला पहुंच सकता था। खताइयों के समय यह मार्ग प्रचलन में था। अतालिक तुर्किस्तान के बादशाह के समय यह रास्ता बंद हो गया।

इसी हरे भरे क्षेत्र से होकर यारकंद नदी के किनारे किनारे चलकर 6 नवंबर 1873 को वे करगलिक में रहे। 7 को तिजनप नदी के साथ चलते हुए उन्होंने यारकंद नदी से निकली एक नहर को पार किया। इस नहर को दस मील उपर से निकाला गया था। आगे 24 मील बाद पोशकम कस्बा आया। यहां 200-250 घर थे। यहां हर मंगल वार को पैठ (बाजार) लगती थी। पोशकम में ही एक बेग तहसीलदार था। पोशकम में 48 करजाक यानी मौजे और हर मौजे में 200-300 मवासे थे। जमीन का खराज (कृषि कर) 500000 तंगा यानी 100000 रुपया सालाना था। खताइयों के दौरे हेतु 200000 तंगा यानी 40000 रुपया तय था। पोशकम के बीच बाजार से एक नहर गुजरती थी।

## सोने की खानें और यारकंद

कुछ दिनों बाद दल के कुछ सदस्य खोतान पहुंच गए। यह यहां की बड़ी बस्ती थी। यहां पहुंचने पर उन्हें पहला काम जो करना था वह सोने की खानों के सर्वे का था। यह खान सोरयाक या सोरखान नामक स्थान पर थी और इसमें लगभग 3000 आदमी (सेवा जाति के) काम करते थे। नैन सिंह को पता चला कि पहले इस स्थान पर शहर था और इस्लाम के सैनिकों ने मूर्तिपूजकों को इस्लामधर्मी बनाने के प्रयास में इस क्षेत्र और स्वयं को नष्ट कर दिया।

यह भी कहा जाता है कि प्रकृति के साथ साथ इस्लामी योद्धाओं ने खोतान की बौद्ध कला संपदा को भी ध्वस्त किया था। नैन सिंह के दल के खोतान में मौजूद होने के लगभग 29 साल बाद सन् 1902 में ऑरल स्टीन ने जब रावक नामक स्थान पर खुदाई की और बालू का पहाड़ साफ किया तो वहां 81 बौद्ध प्रतिमाएं मिली। यह एक संपूर्ण बसासत का हिस्सा था। इस दल ने जिस खोतान को देखा था वह चीनी यात्री

ह्वेनसांग द्वारा सातवीं सदी के उत्तरार्ध में देखे गए खोतान से बहुत भिन्न था। इस्लामी सेनापति हजरत इमाम जाफर सादिक की मजार यहां पर थी। यहां से नैन सिंह तथा साथियों ने यात्रा के अंतिम बिंदु यारकंद की ओर प्रस्थान किया।

कुछ दिनों तक यारकंद नदी के साथ-साथ आगे बढ़ रहा यह दल एक हरे भरे इलाके से होकर गुजर रहा था। फिर नदी से अलग होकर यह दल 8 नवंबर 1873 को यारकंद शहर में पहुंचा। इस रास्ते में लगातार बसासतें थी। यारकंद यहां की सबसे बड़ी बस्ती थी। यारकंद एक प्रकार से कूना और यांगी नामक दो उपनगरों में विभाजित था। दोनों उपनगर किलों की तरह थे और नहरों से किलों के भीतर पानी ले जाया जाता था। इसी का पानी हर मुहल्ले में जाता था और कुछ तालाब भी बने थे। इस समय यांगी किले में अतालीक के बादशाह का वजीर रहता था। नैन सिंह लिखता है :

**''पोशकम से 34100 कदम यानी 17 मील चलने वाद शहर यारकंद के खानगा दरवाज़ा है पोशकम से यारकंद शहर तक घनी वस्ती जमीन वहुत उमदा उरवरा है जावजा गांव और वाग वागीचों से अति रमणी दिखाई देती–**

**खानगा दरवाज़े से मैंने रूट सर्वे वन्द किया और खानगा दरवाज़े से यारकन्द शहर 2 चलकर आलतून दरवाज़े के राह शहर पाह से वाहर निकले यारकन्द शहर से 610 कदम पछिम चलने वाद यांगी शहर किला है उसी के अन्दर एक इहाते वड़े 2 खूव सफा मकानें वनी हैं उसी मकानों में सव साहवान लोग रहे और तमाम नौकर लागों को भी रहने को मकानें मिलीं जिनमें फ़रश फ़र्रूश निहायत उमदे 2 कालीन और नमदे की विछी थी''**

नैन सिंह यारकंद में 8 नवंबर 1873 से 26 मार्च 1874 तक रहा। यानी 5 महीने से कुछ कम और इस अवधि में उसने व्यापक सर्वे कार्य के साथ छोटी-छोटी जानकारियां इकट्ठा कीं। कूना और यांगी शहर का घेरा 7953 कदम यानी लगभग 4 मील का था। शहर के पांच दरवाजे थे। आलतून तथा तीरी दरवाजा पश्चिम में, वलती तथा अक्सू या मिस्कीन दरवाजा पूर्व में और खानगा दरवाजा दक्षिण में था। यहां हर तरफ बाजार थे :

**''यांगी शहर का सूरत चौकोना है और 3532 कदम यानी प्रायः पौने दो मील के घेरे में है इस यांगी शहर किले के दो दरवाज़े हैं चुनाचे एक दरवाजा पछिम की जानिव है जिसे काशगर दरवाजा कहते हैं यह दरवाजा हमेशह वंद रहता और दूसरा दरवाजा पूर्व की अलंग है जिस्को कूना दरवाजा वोलते हैं और इसी दरवाजे से आम लोगों की आमदरफ्त रहती है यह दरवाजा कूना शहर के आलतून दरवाजे से 610 कदम यानी पाव मील पछिम तर्फ आमने सामने पर है और किले के वाहर शहर पनाह के चारों तर्फ खाई खोदी हुई है शहर पनाह के चारों तर्फ दीवालों पर 40 वुर्ज वने हैं और किले के पछिम ओर से छोटी 2 दो नहरों के पानी पतनाले की राह किले के अन्दर ली हुई है-**

**यह किला खताइयों के वक्त का वनाया हुआ है कहते हैं कि इस किले में शाह चीन का अंवान यानी सुवह जो इस मुल्क यारकंद का मालिक था रहता था कहते हैं कि सन 1865 ईस्वी में जव इस यारकंद में वलवा हुआ तुंगानी वगैरहों ने किले घेर ली मय फौज और वाल वचों के अंवान चीन का इसी किले में अपने ही हाथ से वारूत से जल मरा–अव इस किले में वादशाह अतालिक का वज़ीर जो दादरव्वाह यारकंद का है रहता।''**



पाकेट कंपास से उसने यारकंद शहर का नक्शा भी बनाया और अपनी डायरी में उसने इसका विस्तृत वर्णन छोड़ा है। 5 दरवाजों वाले, 10 हजार घरों और 40 हजार की जनसंख्या तथा 'चौकोर चेहरे' वाले यारकंद की औरतों, बच्चों, बाल विवाह, तलाक, काजी का आतंक, रेशम उद्योग, नमदे, तमाखू, कपास, तरबूज-खरबूज, अनार, सेब, नाशपाती, बादाम, खुबानी, अंगूर, मकई, धान, गेहूं, जौ तथा मटर तथा बाजार-व्यापार संबंधी जानकारियां तथा अन्य तमाम स्थानीय फलों की सूची ही नहीं रेशम के कीट का जीवन चक्र भी उसने अपनी डायरी में लिखा था। वृहस्पति वार को लगने वाली पैंठ में नैन सिंह ने बहुत भीड़ देखी और लोगों को गिनना शुरू किया। 50000 (पचास हजार) की संख्या तक गिन कर वह थक गया और नैन सिंह ने उस दिन वहां 60-70 हजार तक लोगों की उपस्थिति का अनुमान लगाया था।

नैन सिंह ने नोट किया कि यारकंद क्षेत्र में 15 नवंबर से 15 मार्च तक नदी और नहरों का पानी जम जाता था। स्वयं नैन सिंह के सहयोगी बर्फ गला-गला कर पानी बनाते थे। ठंड बहुत अधिक थी। नवंबर से फरवरी तक वर्षा नहीं होती थी। आसमान में बादल रहते थे पर गरजते नहीं थे। उन भूमिगत मकानों को भी उसने देखा जो तूफान से बचने के लिए बनाए जाते थे। किस तरह पहले यारकंद मूर्तिपूजकों (बौद्धों) का क्षेत्र था और क्रमशः अंगिरखोज (इसके सिक्के नैन सिंह ने देखे थे), जाफर सादिक और अंततः चीन के बादशाह के अधिकार में आया, यह भी उसने पता किया।

उसने लगान, कर-प्रणाली तथा न्याय व्यवस्था की पड़ताल के साथ वहां का सामाजिक सर्वेक्षण भी गहराई से किया। नैन सिंह लिखता है :

**''कहते हैं कि खताइयों के दौरे में मुलक यारकंद में जमीन का महसूल और खिराज वाजिवी था अव अतालिक गाजी के वक्त जियादा वतलाते चुनाचे अनाज के 10 रुपया पैदावारी में 1 रुपया अनाज वादशाह लेता और 10 रुपया अनाज की पैदावारी में एक उलाक यानी 8 चार्क अर्थात 2 रुपया मन समन यानी भूसा वादशाह का है और मेवेजात के वाग वगीचे का महसूल इस तौर पर मुकर्रर है कि एक थानप यानी 30 गज लंवा उतना ही चौडा अर्थात 900 गज़ मुरव्वा वाग पर पांच तंगा अर्थात 1 रुपया महसूल मुकर्रर है और**

**वेदा एक किस्म का घास बोया जाता जिस्के खिलाने से घोड़े वग़ैरह जानवर तयार हो जाते उसके जमीन का महसूल भी उसी तरह पर है यानी कि एक थानप मुरब्बा जमीन पर पांच तंगे मुकर्रर है**

**घराट जो साल भर में बराबर चलता हो फी घराट 200 तंगे यानी 40 रुपया साल मुकर्रर है और तमाकू की खेती का भी एक थानप मुरब्बा जमीन पर 10 तंगे यानी 2 रुपए महसूल है और रुई की खेती पर भी एक थानप मुरब्बा जमीन पर पांच तंगे यानी 2 रुपए महसूल है मूली गाजर वग़ैरह त्रकारी की खेती पर एक थानप मुरब्बा जमीन पर 3 तंगे यानी कुछ उपर ।।–(नौ आना) महसूल लिया जाता खरबूजा तरबूजा वग़ैरह की खेती में एक थानप मुरब्बा जमीन पर पांच तंगा यानी 1 रुपया लिया जाता भेड बक्री कोताज़ ऊंट घोडे 40 में सालिआना एक सर्कार का होता घोडी मादीन का फी घोडी पांच तंगा साल महसूल मुकर्रर है''**

पनचक्की (घराट) पर 40 रुपया साल मुकर्रर था। खेती पर रकम ली जाती थी। यारकंद के बाहर से आने वाले मुस्लिमों से प्रति सैकड़ा 5 रुपया तथा गैर मुस्लिमों से 10 रुपया कर लिया जाता था। नैन सिंह ने यह भी बताया कि वहां मर्दों के मुकाबले औरतें ज्यादा थीं। जजिया भी गैर मुस्लिमों से लिया जाता था। बाल विवाह का प्रचलन था। कोई कोई व्यक्ति अपने जीवन में 50-60 तक निकाह कर डालता था। नैन सिंह के शब्दों में :

**''सुना है कि यारकंद में मर्दों के निस्वत औरतें जियादे हैं हुस्न गोरे इंगलिन्डीय औरतों के समान है इन यारकंदियों में यह एक दस्तूर निहायत खराब है कि ख्वाह 8 वरस की हो ख्वाह नौ दस वरस की लड़की के साथ निकाह कर लेते इस वात पर लड़की के मां वाप भी राजी हो जाते हैं कहते हैं कि एसी कम उम्र की लड़कियां मरद के सुहब्वत से अक्सर मर गई तौ भी ये लोग वाज नहीं आते जितनी कम उम्र की लड़की से निकाह करते हैं उतना ही अपने को सआदत्तमंद और अपना गिजा करके मानते हैं पर तमाशा यह कि अगर उस लड़की या औरत के साथ ता उम्र भर निभ जाता तो वेहतर था निकाह किए के दिन से महीना या दो महीना हद एक वरस वाद उसको तलाक दे कर दूसरे के साथ निकाह कर लेते हैं यहां तक कि एक आदमी अपने उम्र भर कम से कम 50 /60 निकाह कर लेता जो कोई जितना जियादा निकाह करता उतना ही वह वड़ा इज्जतदार कहलाता अपने उम्र भर एक औरत और एक खशम पर सवर करने वाले सैकड़े में कोई एक निकलेगा''**

काजी द्वारा किया जाने वाला औरतों का अमानवीय दमन भी उसने नोट किया था। काजी के आने पर औरतें बाजार से भाग जाती थीं और जो नहीं भागती थी उनकी



पिटाई की जाती थी। एक गर्भवती औरत एक बार काजी के आने पर बाजार से नहीं भाग सकी और जब उस पर मार पड़ी तो उसके बच्चे का जन्म हो गया और बच्चा मर गया। बाद में वह औरत बच गई। पालतू तथा जंगली सभी तरह के जानवरों का मांस यहां खाया जाता था। सिर्फ सुअर, कुत्ते तथा गधे का मांस नहीं बिकता था पर नैन सिंह लिखता है कि फिर भी चोरी-छिपे लोग गधे को मारकर बाजार में बेच देते थे। नैन सिंह ने क्रूर न्याय प्रणाली को भी देखा था :

**''इन्साफ कसम पर फैसला होता खसूसन गवाह की पुरसिस नहीं होती लेनदेन के मामले में अगर्चः साहूकार के पास तमसुख और गवाह मौजूद हों मुदाले कह देवें कि मैंने दे दिया करके कसम खावें तो साहूकार का तमसुक और गवाह रद हो सकता खून और चोरी का जान मार डालना सजा है जनवरी महीने में एक आदमी को नखास के वाजार के पास हलाल करके वाद फांसी में लटका दिया 3 दिन तक लटका ही रहा मैंने पूछा कि क्या कसूर है लोगों ने जवाव दिया कि इसने गऊ चुराकर मारकर वाजार में वेचा एक आदमी ने खोतान से किसी का लड़का चुरा लाया करगलिक में किसी के हाथ वेच डाला वाद साविद होने के उस आदमी को यारकंद शहर के वीच हिन्दू सराय के पास कान में मेख ठोक मुंह खाक से काला करके 2 दिन भर खड़ा करके दुर्रे मारकर छोड़ दिया यारकंद में सव देश के आदमी रहते चुनाचे चीन कुचार तुर्फान अकसू रोमची कारा शहर खोता वुखारी वदकशानी कंदारी वलखी कावुली अफगानी चतराली कंजूती वलती काशमीरी लदाखी हिन्दोस्तानी समरकन्दी ताशकन्दी अंजानी तुंगानी''**

23 मार्च 1874 को यारकंद मिशन के सचिव चैपमन यारकंद आए। ट्रॉटर साहब के फरमान में नैन सिंह से कहा गया कि वह जसमल को लेकर कुग्यार की राह लद्दाख से पारा नदी–शायद पैराचू नदी–का सर्वे करता हुआ मसूरी दफ्तर को जाए। तारा सिंह को कुग्यार की राह जाने को तथा लेह में जाकर नक्शा बना कर देने को कहा गया था। कलियान को यारकंद से संजू, शहीदुल्ला, खोजा ससेर, स्योक से दिगार–यह गांव स्योक घाटी में खरदुंगला दर्रे के पार खरदुंग गांव के पास स्थित है–होकर लद्दाख तक की पैमायश करने का आदेश दिया था।

पांच माह तक यारकंद में रहने के बाद 26 मार्च 1874 को नैन सिंह, कलियान सिंह तथा जसमल ने यारकंद से वापसी की यात्रा प्रारंभ की। उस रात वे कशलाक में रहे। 27 मार्च 1874 को ज़ख तथा मज़कूर नदियों के किनारे किनारे होकर पोशकम बाजार पहुंचे। तारा सिंह, जो पीछे रह गया था, भी उनसे आ मिला। वे मार्ग में विविध सर्वे कार्य लगातार करते रहे। बीच में वहां के स्थानीय तहसीलदार नासरा बेग से इस इलाके के बारे में बहुत से और तथ्य पता चले। नासरा बेग ने बताया था कि खताइयों

के जमाने में यारकंद के लोग संपन्न थे। जुल्म बिल्कुल नहीं था। कर कम लिए जाते थे। लेकिन वली खान अंजानी तथा तुंगानियों के संघर्ष में रिआया पर बुरा असर पड़ा। अब कर बहुत बढ़ा दिए गए थे। नासरा खान जुल्म और तकलीफों का वर्णन करते हुए रो भी गया था।

नैन सिंह ने यह भी बताया था कि यहां राजनैतिक स्थिरता न होने के कारण व्यापार पर भी असर पड़ा था। 28 मार्च को पोशकम से चावाग लंगर पहुंचने में 17 मील चले। 29 तथा 30 को करगलिक में रह कर 31 को कलियान संजू को और नैन सिंह कुग्यार को चले। नैन सिंह उस शाम काम पूरा करते हुए 21 मील चल कर कुग्यार पहुंचा। तारा सिंह युलेराक गांव को चला गया। इस दिन नैन सिंह 23 मील चला। 1 से 5 अप्रैल तक कुग्यार में रह कर सर्वेक्षण करते रहे और 6 को कुसार गांव पहुंचे। कुग्यार तथा कुसार गांवों के बीच खेती तो थी ही घास-लकड़ी की सुलभता भी नजर आई। 6 तथा 7 को कुसार के आसपास सर्वेक्षण करते हुए 8 मार्च को पौने अठारह मील चल कर आक मसजिद पहुंचे। यहां की मिट्टी सफेद (आक) थी। यह पशुचारकों का इलाका था :

> **''...भेड़ वकरी खोताश घोड़े पालते आक मसजिद में या नालों में कहीं 2 थोड़ा 2 जमीन कमाते रहते हैं एक वाखानलिक जो आक मसजिद में रहता उसने कहा कि मैं मुल्क वदकशान वाखान के रहने वाला हूं आज 18 वरस का अरसा हुआ कि मुझको मय मेरे औरत दोनों को कंजूतियों ने वाखान के पहाड़ों पकड़ लाया इसी आक मस्जिद में 40 रुपए में एक आदमी के हाथ वेच डाला 3 वरस तक मैंने उसकी गुलामी की वाद एक शख़्स यारकंदी ने मेरे पर रहम कर के 40 मेरे आका को देकर वहुत कह सुनकर मुझे छुटा दिया–अव फजल खुदाई से चैन पर हूं यह आदमी मय जोरू खसम मौजूद है वाल वचे और वड़ा मालदार है–''**

नैन सिंह को यह भी पता चला कि अली जहीर, जिसने सन् 1856 में हरमन तथा राबर्ट को खोतान की तथा अडोल्फ को यारकंद की यात्रा कराई थी, मारा जा चुका था और उसकी जगह नया अंबान (चीनी अधिकारी) आ गया था। सन् 1856 में वली खान अंजानी की यारकंद के अंबान से लड़ाई चल रही थी। अडोल्फ स्लागेंटवाइट बिना सावधानी के वली ख़ान से मिलने गया और वली ख़ान ने उसकी हत्या कर दी थी।

31 मार्च 1874 को कलियान सिंह संजू को चला और नैन सिंह तथा जसमल कुग्यार को। लगातार सर्वे का कार्य चलता रहा। अपनी पैनी निगाह से नैन सिंह लगातार नदी, नाले, पेड़, वनस्पतियां, घराट, फसल, बगीचे, पालतू तथा जंगली जानवर, घर, मस्जिद, सड़क, बाजार हर चीज की पड़ताल करता रहा। अनेक जगह करगिज लोगों के खेमे भी देखे। इस पूरे ठंडे, ऊंचे तथा वीरान क्षेत्र में यारकंद एक नखलिस्तान की तरह था। यहां पानी, हरियाली, खेती, बागवानी, नदी तथा जंगल सब था। जगहों



के नामों से जुड़ी कहानियां सुनने और उन्हें अपनी डायरी में नोट करने का भी नैन सिंह को शौक था। दिन, रात, मौसम, हवा, पानी इन सबका वर्णन वह करता है। हर जगह का तापमान भी वह पता करना नहीं भूलता था।

9-10 अप्रैल को आक मस्जिद के आसपास सर्वेक्षण किया जाता रहा। यहां घास के अलावा देवदार के पेड़ भी नजर आए। तुर्क लोग देवदार को 'आचे' कहते थे। कुछ आगे तिजनप नदी आ गई। इसके किनारे भी बड़े बड़े पेड़ों वाला जंगल नैन सिंह ने देखा। 25880 कदम यानी 13 मील चल कर शाम को इस्सक आगजी पहुंचे। यहां नैन सिंह ने करगिज लोगों के खेमे देखे। इस इलाके में खेती और पशुपालन दोनों का प्रचलन था। इस संपन्न इलाके को भी कंजूतियों ने लूटा था। 11 अप्रैल को उन्होंने तिजनप तथा उलुपयलाक नदियों का संगम देखा। वहां पर एक ऊंचा टीला जैसा था, जिसमें कपड़े की पताकाएं लगी थी। इस दिन शानुश गांव होकर मज़ारखोजा पहुंचे, जहां वे दो दिन रहे।

नैन सिंह यह पता करने में कामयाब रहा कि अडोल्फ स्लागेंटवाइट का नौकर मुहम्मद अमीन इसी शानुश गांव का रहने वाला था। मज़ारखोजा पहुंचने से पहले वे सभी बर्फीले तूफान में फंस गए। नैन सिंह तथा साथियों के हाथ पैर ठंडे हो गए थे। यहां एक किसान के घर में आग जलाकर उन्होंने हाथ सेके और तब आगे बढ़े। रास्ते में सुल्तान असामुद्दीन औलिया का मजार भी मिला। असामुद्दीन औलिया कोई सूफी संत तथा करामाती व्यक्ति थे। मज़ारखोजे के पश्चिमी पहाड़ में तांबे की खान थी। नैन सिंह को पता चला कि पहले इस खान में 200 मजूर काम करते थे।

13 अप्रैल को मज़ारखोजे से 11 मील चलकर थुशकताश तथा दोवानाम होकर एक बड़ी नदी के पास पहुंचे, जहां जंगल भी था। 14 अप्रैल को 12 मील चलकर गुरंजीकार में रहे। 15 को खताईथम में रह कर 16 अप्रैल को साढ़े छः मील चल कर यांगी दीवान पहुंचे। यहां हवा बहुत ठंडी तथा तेज थी। बर्फ में चलना मुश्किल हो रहा था। बर्फ का पानी बनाकर खाना पकाने के बाद 17 अप्रैल को वे यारकंद नदी के किनारे पहुंच गए। यहां इसकी चौड़ाई 50 कदम और गहराई दो फीट थी। नदी यहां से पश्चिम को बहती थी।

17 अप्रैल को मजकूर नदी के बाएं किनारे कोलान उलदे में रहे। 18 को बिना भोजन तथा बिना बिस्तर के रात काटनी पड़ी। रात में नैन सिंह का शरीर ठंड से अकड़ गया। 19 अप्रैल को सवा अठारह मील चल कर तारा सिंह के कैंप में पहुंचे और फिर 4 मील चल कर बुखारी उल्दे नामक जगह पर पहुंचे। यहां पर किसी दिवंगत बुखारी की कब्र थी। फिर 9 मील चलकर जर्वसन नदी के किनारे पड़ाव डाला।

20 अप्रैल 1874 को सुबह जब वह नदी किनारे चल कर आगे बढ़ रहा था तो बर्फ के जमे होने के कारण आगे जाना संभव नहीं हुआ। उसने चढ़ाई से पहाड़ के ऊपर

जाने का प्रयास किया। इसी चढ़ाई में उसने प्रिजमैटिक कंपास खड़ा कर अंकन लेना चाहा पर बर्फीले तूफान के थपेड़े ने उसे गिरा दिया। उसी के शब्दों में :

**''रास्ते के वैरंग लेने के वास्ते एक धार पर मैंने पश्ज़मेटिक कम्पास खड़ा किया उसी वक्त हवा ऐसी जोर से आया कि तमाम वर्फ जो नया गिरा हुआ था उड़ा लाया साम्हने मेरे मुंह पर लगा मेरा दम रुककर गिर पड़ा मैंने समजा कि मैं मर गया वाद 10/12 मीनट के अपने तईं वर्फ में डूवा हुआ पाया जवतक मेरे पास जस्मल पहुंच गया हवा थम गया जस्मल ने वैरंग रास्ते का लिया था वाद होश आने के काम करते हुए दरियाय खपलुंग के कनारे पर पहुंचे इस मंजिल कुल 25182 कदम यानी कुछ ऊपर साढ़े वारह मील आए''**

जसमल ने नैन सिंह को बर्फ से बाहर निकाला और इस तरह नैन सिंह दुर्घटना का शिकार होने से बच गया। ऐसी ही घटना एक अभियान में दोलपा पांगती के साथ हुई थी।

आगे भी यात्रा निरंतर बर्फ के बीच कठिन इलाके में थी। ठंड बहुत अधिक थी। इस बीच वह बीमार भी हो गया। वह चाहता था कि खपलुंग नदी का सर्वेक्षण हो जाए लेकिन साथी तारा सिंह इतने कठिन मौसम में इस काम को करने के लिए तैयार नहीं था। 24 अप्रैल 1874 को घोड़े में होने के बावजूद वे बर्फ को पार नही कर सके। उन्हें लौटना पड़ा। फिर उसने एक घोड़ा किराए पर लेकर जसमल को खपलुंग नदी के सर्वेक्षण के लिए भेजा। वे पुनः उसी स्थान पर 9 मई को पहुंचे, जहां से 26 अप्रैल को उन्हें वापस लौटना पड़ा था।

10 मई 1874 को इस दल ने कराकोरम दर्रा पार किया। दर्रे पर कमर-कमर तक बर्फ थी। सवा चौदह मील चलने के बाद वलतीपुलू में उनका डेरा पड़ा। अगले दो दिनों में नैन सिंह ने देखा कि साहब लोगों के लिए उस इलाके से 600-700 कुली आ पहुंचे थे। पर नैन सिंह तथा सहयोगियों के पास कोई कुली न थे। तीन दिन पहले ही नैन सिंह ने एक पड़ाव में देखा था कि कलियान अपना सामान और कपड़े अधिक भार के कारण वहां छोड़ गया था। स्वयं नैन सिंह ने भी ऐसा ही किया था। क्योंकि इतना भार खुद ले जाकर सर्वेक्षण कार्य नहीं किया जा सकता था। आगे ससेर के पहाड़ में इतनी बर्फ थी कि वहां से घोड़े नहीं जा सकते थे। अतः घोड़े स्योक की ओर से भेजे गए। यह रास्ता ज्यादा घूम कर स्योक नदी के साथ साथ आता था।

साहबों में शायद जॉनसन ज्यादा उदार था तथा वह नैन सिंह का सम्मान भी करता था। उसने च्यांगलुंग में आकर नैन सिंह के खाने की व्यवस्था की। इस कारण नैन सिंह वहां तीन दिन तक आराम कर सका। यह वही जॉनसन था जो ब्रिटिश शासन के दबाव के कारण लद्दाख में 12 साल तक डोगरा गवर्नर रहा। वह कौरपोरल से सर्वेयर बना था और फिर प्रशासक। जब वह 12 साल पूरे कर रहा था, शायद यह 1881-82



की बात थी, तो उसे विरोध का सामना करना पड़ा था। दरअसल हुआ यह था कि उसने हैमिस गोंपा के प्रसिद्ध उत्सव के दैवी नृत्य के साथ एक कश्मीरी भांड को नचा दिया था। इसे लद्दाखियों ने अपना और बौद्ध धर्म का अपमान माना था। यह भी कहा जाता है कि उसने कुछ लड़कियों के साथ छेड़छाड़ भी की थी। लेकिन प्रशासक के रूप में उसे ठीक बताया जाता था।

च्यांगलुंग में जॉनसन ने बताया कि कलियान सिंह रुदोक की राह ल्हासा जाएगा। इस बीच नैन सिंह ने सुना कि भाई तथा सहयोगी कलियान सिंह का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो उसने उस सब कार्य के लिए अपने को प्रस्तुत किया जो कलियान को सौंपे जा रहे थे। दरअसल कर्नल वाकर चाहता था कि कलियान ल्हासा जाए। अतः नैन सिंह ने अपनी ओर से कर्नल वाकर को पत्र भेज दिया कि अगर कलियान खराब स्वास्थ्य के कारण ल्हासा जाने में असमर्थ है तो मैं इस कार्य के लिए अपने को प्रस्तुत करता हूं। उसके मन में यह भाव था कि यदि अब भी उसके हाथ से एक अच्छा और बड़ा काम हो जाता तो ठीक होता।

घोड़ा होने के बावजूद इस बार नैन सिंह ने पूरी यात्रा पैदल की ताकि पिछली बार नौकरों द्वारा किए गए सर्वे में रही गलतियां न रहें। मौसम के लिहाज से भी यह कठिन समय था। लेकिन कार्य में किसी तरह का अवरोध नैन सिंह ने नहीं आने दिया। इस तरह 19 मई को च्यांगलुंग से पानामिक, 20 को त्यगार, 21 को तिरित गांव, 22 को छाती गांव, 23 को दिगार गांव, 24 को शेनेरपुलू तथा 25 को सेबू गांव होकर 26 मई 1874 को नैन सिंह लेह वापस पहुंचा। यह यात्रा लगभग 16 महीने तक चली और साहबों की उपस्थिति के बावजूद बहुत विपरीत परिस्थितियों में इसे सफलतापूर्वक संपन्न किया गया। नैन सिंह के अनुसार यारकंद से करगलिक, कुग्यार, आकताग, दौलतबेगी, ग्यापश्यन, ससेर, च्यांगलुंग तथा डिगार होकर लेह तक की कुल दूरी 8,88,651 कदम यानी लगभग 444 मील थी। अगर आना जाना जोड़ दें तो यह सब लगाकर लगभग 900 मील या लगभग 18 लाख कदम के बराबर होता था।

उधर किशन सिंह ने कुछ और मार्गों में सर्वेक्षण किया। यारकंद से लेह को वापसी के समय उसके साथ फॉरसेथ तथा ट्रॉटर दोनों थे। फॉरसेथ ने किशन सिंह को यह आदेश दिया कि वह उस प्राचीन मार्ग से चल कर जाए जो ताकला मकान के रेगिस्तान के एक किनारे से होकर खोतान को जाता था। कुलनुन तथा ताकला मकान के बीच स्थित बसासतों तथा खोतान की राजधानी एल्ची होकर पुराना रेशम मार्ग गुजरता था, जो चीन तथा पश्चिम के देशों को जोड़ता था। इसी खोतान में सन् 1274 में मार्कोपोलो तथा सन् 1604 में बैनीडिक्ट गूज आया था। उनके बाद सन् 1865 में यहां ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि विलियम जॉनसन आया था।

इस तरह सर्वे की आड़ में यह कूटनीतिक मिशन यारकंद तथा खोतान आदि से

सफलतापूर्वक लौटा। यह यात्रा तिब्बत की पिछली यात्राओं से कठिन थी क्योंकि इसमें चीनी तुर्किस्तान, यारकंद, खोतान, अक्सू तक के क्षेत्रों का व्यापक सर्वे किया गया था। नैन सिंह के दल ने अनेक समूहों में बंट कर पूरा काम किया था। ये क्षेत्र अलग-अलग शासकों के अंतर्गत थे।

एक विशेष उपलब्धि इस यात्रा की यह रही थी कि इससे यह पता चला कि उत्तर-पश्चिमी भारत से तुर्किस्तान को कश्मीर के डोगरा शासक के क्षेत्र से गुजरे बिना जाया जा सकता था। यह मार्ग कम बर्फीला तथा कम कठिन दर्रों वाला भी था। नजीबाबाद, जोशीमठ, नीती दर्रा (16628 फीट), थोलिंग (12200 फीट), बोगो ला (19210 फीट), गरतोक, दमचौक, जारा दर्रा, रुदोक होकर खोतान जाने वाला यह मार्ग 931 मील लंबा था। बाद में ट्रॉटर ने इस मार्ग में भारत और तुर्किस्तान को जोड़ने वाले मुख्य मार्ग बनने की संभावना देखी थी।

इस बार साहबों के साथ होने से कठिनाइयां और बढ़ी थीं क्योंकि उनमें से अधिकांश न बराबरी का भाव रखते थे और न संकट के रास्तों/अवसरों पर आगे आते थे। अनेक बार रसद लेकर वे या तो आगे निकल जाते थे या पीछे रह जाते थे। लेकिन इसके बावजूद जब डाकू बहुल क्षेत्रों में भी नैन सिंह ने सफलतापूर्वक सर्वे किया तो कुछ हद तक भयभीत साहबों को इस कार्य हेतु दाद देनी पड़ी। कदाचित् इस अभियान में साहबों को अपनी तथा नैन सिंह की प्रतिभा का फर्क भी पता चला होगा।

इस अभियान की मुख्य उपलब्धि भारत से तुर्किस्तान के लिए सीधे मार्ग की खोज करने में सफल होना था। लेकिन इसके साथ ही विस्तृत सर्वेक्षण का कार्य भी होता रहा। एक प्रकार से यह पश्चिमी तिब्बत में अब तक हुए भौगोलिक अंवेषण का विस्तार था और प्रकारांतर में भारतीय-ब्रिटिश अंवेषकों और रूसी अंवेषकों के कार्य को जोड़ता था। नैन सिंह ने गरम पानी के चश्मे, नदी किनारे स्थित गुफाएं, वनस्पतियां, वन्य जीव-मछलियां, करगिज लोग, फल-फसलें, नदी-नहर-घराट, औरत-मर्द-बच्चे, विवाह-सामाजिक रीतियां, कर प्रणाली हर चीज पर नजर रखी थी। नैन सिंह की डायरी पढ़ते हुए उसकी पैनी निगाह को समझा जा सकता है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि नैन सिंह का दल मिशन यारकंद की विभागीय टीम में नहीं था। उसके अनुभव यारकंद मिशन की अंतिम रपट में शामिल थे और उसने उन्हें स्वतंत्र रूप से भी लिखा था। मिशन के अनेक सदस्यों ने अपने अनुभवों को स्वतंत्र रूप से लिखा था और यारकंद मिशन पर एक स्वतंत्र रपट भी निकली थी, जिसमें पहली बार फोटो भी लगाए गए थे। यह हिमालयी अभियानों में पहली बार कैमरे का इस्तेमाल था। कलकत्ता से सन् 1873 में प्रकाशित तथा लगभग 550 पृष्ठों में फैली इस रपट के विभिन्न अध्याय मिशन के विभिन्न सदस्यों ने लिखे थे। काशगर का सामान्य विवरण बेल्यू तथा चैपमैन ने, इतिहास तथा मौसम संबंधी विवरण बेल्यू ने;



चादिरकल तथा थ्यानसान पर्वतों का विवरण तथा पामीर अभियान गौर्डन ने; मरलवासी अभियान का विवरण बिडल्फ ने; भौगोलिक अंवेषण संबंधी विवरण ट्रॉटर ने; भूगर्भीय मामलों पर स्टोलिक्जा ने तथा वाणिज्य-व्यापार पर चैपमैन ने लिखा था।

इसके अतिरिक्त बिडल्फ ने भेड़ों पर केंद्रित परिवहन पर; बेल्यू ने नाप-तौल तथा मुद्रा प्रणाली पर; बेल्यू तथा बिडल्फ ने वहां की स्थानीय शब्दावली पर लिखा था। चैपमैन ने फोटोग्रेफी का काम संभाला था। इस दल में उक्त सदस्यों के अतिरिक्त मुहम्मद अफज़ुल खान, इब्राहीम खान, तारा सिंह, फैज़ बक्श, अस्मत अली, सिफात खान के साथ 10 सवार, 1 नायक तथा 10 सिपाही थे। इस रपट में पहली बार लामायुरू गोंपा, लेह शहर, सिपाहियों, लोगों, भेड़, सराय तथा व्यापारियों की फोटो इस्तेमाल हुई थी। कदाचित ये इन जगहों, जानवरों तथा लोगों की भी पहली फोटो थीं। ये फोटो आज अधिक ऐतिहासिक महत्व की हैं। आश्चर्य यह है कि इस रिपोर्ट में साहबों या सर्वेयरों के कुछ ही ग्रुप फोटो हैं और इनमें नैन सिंह तथा सहयोगियों का कोई फोटो नहीं है।

# 7

# अंतिम अंवेषण यात्रा

## लेह से ल्हासा से तवांग से गुवाहाटी

यारकंद-काशगर के अभियान से इसके सदस्य लौटे ही थे कि नैन सिंह को उसके जीवन तथा भारतीय सर्वेक्षण विभाग के इतिहास की महानतम् यात्रा में भेजे जाने का निर्णय लिया गया। यह उसकी अंतिम अंवेषण यात्रा थी। लेह से ल्हासा और वहां से उदलगुढ़ी तथा गुवाहाटी होकर कलकत्ता तक की यह यात्रा एक प्रकार से एशिया की पीठ पर पुनः चलने जैसा था। इस पीठ के अनेक हिस्सों पर नैन सिंह पिछले सालों में चल चुका था।

यदि नक्शे में देखा जाए तो देहरादून से शिमला, शिमला से लेह, लेह से तिब्बत के बहुत बड़े हिस्से को पार करते हुए ल्हासा, ल्हासा से एकदम नए इलाके से होकर तवांग तथा फिर उदलगुढ़ी से बर्तानवी क्षेत्र में आकर गुवाहाटी तक की यात्रा अनेक भूगोलों तथा समाजों को जानने, समझने और सफलतापूर्वक पार करने की तरह था। इस अभियान में पश्चिमी हिमालय से तिब्बत में घुसकर पश्चिम से पूर्व तिब्बत को पार कर, फिर दक्षिण को चल हिमालय को लांघकर पूर्वोत्तर भारत में प्रवेश किया गया था।

पहले हिमालय और जंसकार को पार कर लेह जाना, फिर सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र के उत्तर के तमाम दर्रों, नदियों, तालाबों, रेगिस्तान, पहाड़ और मैदानों से होकर ल्हासा पहुंचना, ल्हासा से दक्षिण-पूर्व को जाकर हिमालय का पूर्वी हिस्सा पार कर आज के अरुणाचल के तवांग इलाके में पहुंचना, फिर गुवाहाटी और कलकत्ता होकर देहरादून। यह सचमुच एशिया की उबड़-खाबड़ पीठ पर चलना ही था।

कर्नल वाकर ने मांटगोमरी को जुलाई 1874 में ही, जब वह लेह में था, इस बात के लिए अधिकृत कर दिया था कि अब वह नैन सिंह को लेह से ल्हासा के अभियान में भेजे। स्वयं नैन सिंह ने इस हेतु अपने को प्रस्तुत किया था। इस यात्रा में उसके चार सहायकों में दो तिब्बती मूल के, तीसरा लेह का और चौथा चुशुल गांव का कुंजक तंडुप था। जुलाई 1874 में इस दल के सभी सदस्य लेह में जमा हुए और 15 जुलाई 1874 को यहां से यात्रा आरंभ हुई। 21 जुलाई को यह दल टांगसे पहुंचा।



10 दिन बाद चाग्रा नामक स्थान में उन्हें तिब्बती पशुचारकों की छोलदारियां मिली। यह लद्दाख में यारकंद के मार्ग की आखिरी बसासत थी। यहीं रात के अंधेरे में पंडित नैन सिंह और उसके साथियों ने लामाओं के वस्त्र धारण किए। पहली ल्हासा यात्रा की तरह ही इस यात्रा में भी वह तथा अन्य कुछ साथी बौद्धों के प्रार्थना चक्र को हाथ में घुमाते, 'ओम मणि पद्मे हुम' का जाप करते हुए कदम गिनते थे। माला में 108 के स्थान पर 100 दाने थे और हर दसवां बड़ा दाना था। 100 कदम पर माला के 100 दानों का चक्र पूरा हो जाता था। तिब्बत के इस अपरिचित इलाके में यह उसकी ही नहीं किसी भी सर्वेक्षक की पहली अध्ययन यात्रा थी।

चाग्रा से यारकंद का मार्ग गुजरता था। यहां से आगे वे यारकंद की राह में चांगचैंमो पहुंचे और उन्होंने मार्सिमिक ला के इस ओर की जड़ पर पड़ाव डाला। फिर उन्होंने लंकार या मार्सिमिक ला (18420 फीट) को पार किया। कुछ समय तक इसी मार्ग में आगे बढ़ कर उन्होंने यारकंद का रास्ता छोड़ दिया, जो कि बाईं तरफ जाता था और वे पूर्व दिशा में बढ़ गए। 28 जुलाई 1873 को उन्होंने और भी अधिक ऊंचाई वाला किउ ला नामक दर्रा पार किया और हृदयाकार निंग्री पर्वत के पास पंगुर गोंगमा में पड़ाव डाला। रास्ते में नियाग्जू रावांग में उन्हें रुदोक की ओर से आते हुए टांगसे के लोग मिले, जो ऊन तथा नमक ला रहे थे। वे रुदोक के अधिकारी को ऊन तथा नमक के रूप में टैक्स देने आए थे। नियाग्जू रावांग में तिब्बत तथा लद्दाख की सीमा मिलती थी। इसी नाम की नदी के दांई तरफ तिब्बत का डरी खोरसम क्षेत्र तथा बांई तरफ लद्दाख था। एक दिन यहां ठहरने के कारण नैन सिंह रावांग नदी के किनारे रावांग योक्मा तक हो आया। आश्चर्यजनक रूप से यहां उसे कुछ वृक्ष प्रजातियां भी मौजूद मिली थीं। इनमें प्रमुख थी चांगमा, मजनू, शुकपा, देवदार तथा वोंफू।

यह अभियान दल अपनी छोलदारियों, बिस्तरों और अन्य तमाम सामग्रियों, जो 26 भेड़ों में लदी थी, के साथ आगे बढ़ रहा था। इनमें से कुछ भेड़ें मार्ग में बीमार हुई थीं और कुछ अभियान दल के सदस्यों का भोजन बन गयी थीं। बीमार भेड़ों को बदल लिया गया था। लेकिन मूल समूह की चार या पांच भेड़ें अपने पीठ पर लदे 20-25 पौंड (9-10 किलो) भार के साथ 1000 मील (1600 किमी.) से अधिक लंबी यात्रा करके ल्हासा पहुंची थी। यह यात्रा टांगसे से ल्हासा तक थी। इतनी लंबी यात्रा में इन भेड़ों ने अपना पेट स्वयं भरा था। सरकारी घोड़ों की तरह उन्हें किसी भी स्थान पर कोई चारा नहीं दिया गया था। दुर्भाग्य से मनुष्य द्वारा बनाई गई संस्थाओं में पशुओं को पुरस्कृत करने की परंपरा नहीं है वर्ना अंवेषण के इतिहास में इन भेड़ों की भी चर्चा होती और निश्चय ही इनके नाम के भी तमगे मिले होते। और शायद इस सिलसिले में मार्कोपोलो से मूरक्राफ्ट से स्वेन हेडिन-यंगहजबैंड तक अनेक यात्री-अंवेषकों के अभियान दलों में भेड़ों, घोड़ों, याकों तथा अन्य भारवाहक पशुओं की भूमिका की चर्चा हुई होती।

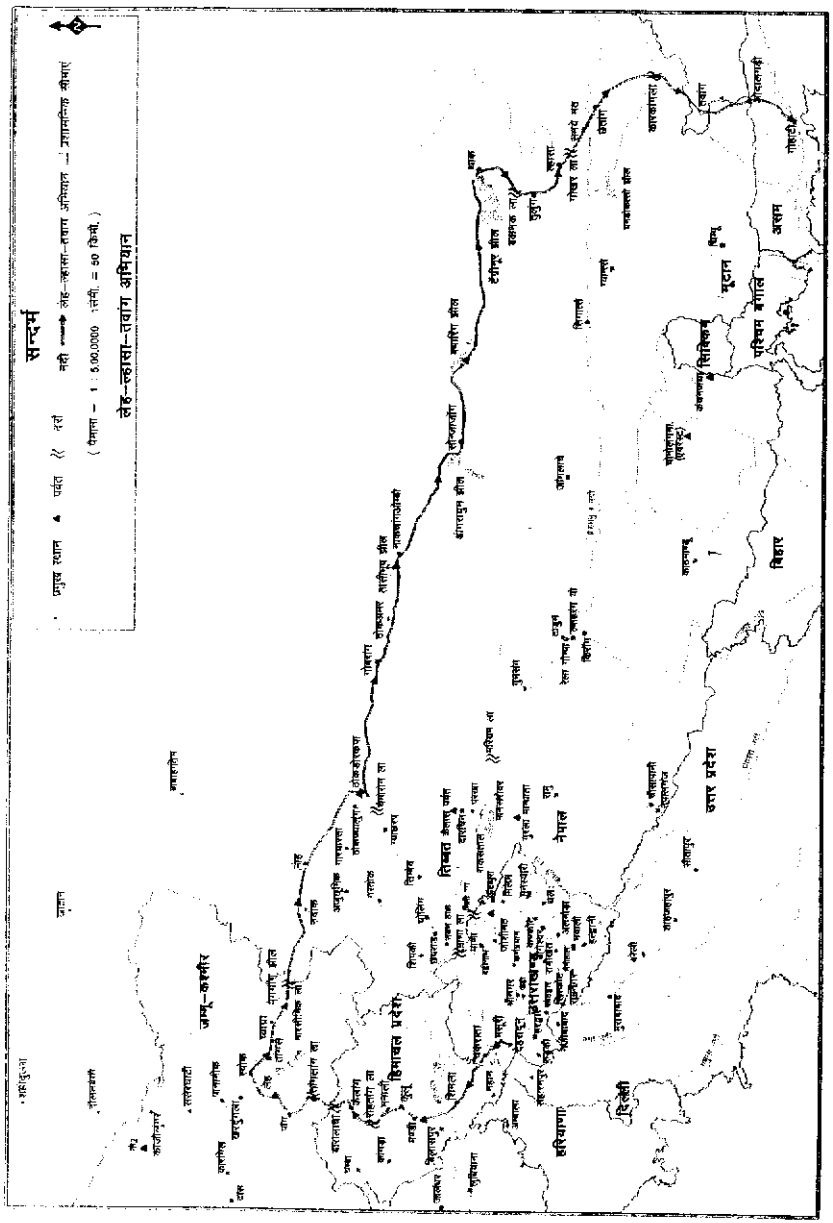


अंतिम अभियानः लेह-ल्हासा-तवांग-गुवाहाटी : 1874-75



नियाग्जू रावांग से आगे रास्ते में उन्हें पशुचारक मिलते रहे। यहां स्थाई बसासतें नहीं थी। किसी ने भी उन पर शक नहीं किया। आगे 6 छोटे छोटे पड़ावों के बाद नोह आया, जहां 20 घर थे। बीच का हिस्सा बसासत रहित था। यह इलाका रुदोक जिले में पड़ता था। नोह का मुखिया, जिसका नाम चांगकेप था और जिसकी सरकारी पदवी 'ल्हांबा' थी, वहां से तीन दिन की दूरी पर पांगडा नामक जगह पर रहता था। यह ल्हांबा चांगकेप रुदोक इलाके के जोंगपन के तहत था, जो कि सिंधु नदी की एक शाखा सिंगीचू से ठोकज्यालुंग की सोने की खान तक फैला था। रुदोक का जोंगपन गरतोक के गारपन के मातहत था, जिसके तहत गूगे तथा पुरंग के जोंगपन भी थे और बड़े इलाके का गारपन ग्याल्मो यानी ल्हासा के शासक के तहत था। जोंगपन हर तीन चार साल में बदले जाते थे।

जिन चंपा, खंपा या चांगपा के बारे में बताया जाता था कि वे बड़े खतरनाक होते हैं, वे बहुत सरल लोग निकले। ऐसे ही लोग नैन सिंह को लद्दाख की ओर भी मिले थे। ये सभी बौद्ध थे। इस इलाके में माने तथा चोर्तन तो थे पर कोई गोंपा नहीं था। यहां नोह के पास, लगभग 7 मील दूर अनेक झीलें थी। इनमें पैंगगोंग झील (तिब्बती में इसे 'चोमो ना लारिंग चो' कहा जाता था) लगभग 100 मील लंबी, 6-7 मील चौड़ी तथा 136 फीट गहरी बताई जाती थी। पूर्वी छोर पर इस झील में एक छोटी नदी मिलती थी। पैंगगोंग झील के पूर्वी हिस्से का पानी मीठा पर पश्चिमी हिस्से का खारा था। यह माना जाता था कि पहले यह झील स्योक नदी में मिलती थी। पर अब यह एक बंद झील थी। नोह से खोतान को एक मार्ग चला जाता था। यहां से खोतान की दूरी 450 मील थी। यहां से आगे पूर्वी तुर्किस्तान के मैदान शुरू हो जाते थे। नोह से उत्तर में इन मैदानों की ऊंचाई 16,500 फीट तक चली जाती थी।

लेह से नोह तक की दूरी 18 पड़ावों में पार की गई थी और लगभग 173 मील थी। नोह से ठोकडोरकपा की दूरी 377 मील थी, जिसे नैन सिंह ने 32 पड़ावों में ठहर कर पूरा किया था। इन स्थानों की ऊंचाई 14,000 से 15,000 फीट के बीच थी। रास्ते में विस्तृत मैदान थे और उसके बाद बर्फीले पहाड़। जंगली घोड़ों, हिरनों और जंगली भेड़ों के बड़े बड़े समूहों से सामना होता रहा। इनकी उपस्थिति से इस विराट विस्तार के एकाकीपन को टूटने का मौका मिलता था। रास्ते भर में लगातार झीलें मिलती रही, जिनमें से ज्यादातर नमकीन थीं। जहां स्रोत का मीठा पानी मिलता वे अपने थैले भर लेते थे। ये थैले भेड़ों की आंत के बने होते थे।

आगे का मार्ग एक विस्तृत घाटी से गुजरता था। अनेक वन्य जीव नजर आते रहे। रास्ते में नमकीन पानी के स्रोत ज्यादा थे। कहीं कहीं मीठे पानी के स्रोत भी थे। ठोकडोरकपा पहुंचते-पहुंचते पानी का संकट सामने आने लगा। एक बार तो 20 से अधिक घंटों तक दल के सदस्य पानी के बिना रहे। ईंधन के रूप में याक का गोबर

(चौवा) इस्तेमाल किया जाता रहा था। कभी कभी झाड़ियां भी इस हेतु इस्तेमाल की जाती थी। लेह से सत्ताइसवें पड़ाव में और नोह से 8 दिन पहले उन्हें थाकप चो नामक मीठे पानी की झील मिली थी। उसमें आने वाली नदी के दोनों ओर घने पेड़ों और झाड़ियों का जंगल मिला था। नोह से पूर्व को लगभग एक माह तक यह दल 14 से 15 हजार फीट की ऊंचाई पर चलता रहा। इसके बाद नांचो तक इससे भी अधिक ऊंचे क्षेत्र में चला था। आगे संग्स नामक जो विस्तृत मैदान आए वे पूर्वी तथा पश्चिमी तुर्किस्तान के बीच फैले 'पामीर' या उत्तरी लद्दाख के 'जिलगा' की तरह थे।

इन क्षेत्रों में नमक की खानें थी और कीचड़ के ऊपर नमक बिलकुल बर्फ की तरह लगता था। इनमें खाई चाका तथा डाकडोंग चाका से स्थानीय निवासी नमक इकट्ठा करते हुए देखे गए थे, जिसे वे बेचने के लिए लद्दाख ले जाते थे। चाबुक जिंगा नामक गांव में, जो 14400 फीट पर था, उन्हें लकड़ी से बने दो मकान दिखे और पशुचारकों की 20 छोलदारियां। यहां जौ बोया गया था। नोह के बाद यहीं उन्हें कुछ बोया हुआ दिखा। भौगोलिक रूप से यहां खेती की संभावना बनती थी। पर यहां के निवासी चंपा अनाज के प्रति ज्यादा रुझान नहीं रखते थे। वे मांस, दूध, मक्खन तथा चीज का ज्यादा इस्तेमाल करते थे। तांबे तथा लोहे के औजारों तथा उपकरणों का यहां ज्यादा महत्व था। बर्फ में चलते समय इस्तेमाल होने वाली कुल्हाड़ी (आइस एक्स) के बदले नैन सिंह कभी भी दो या तीन भेड़ प्राप्त कर सकता था।

ये लोग याक के ऊन से खुद अपनी छोलदारियां (टैंट) बनाते थे और भेड़ के ऊन से कुछ मोटा कपड़ा भी बिनते थे। इसी ऊनी कपड़े से वे उन थैलों (करवच) को बनाते थे, जिनपर भेड़-बकरियों की पीठ में सामान लादा जाता था। ये लोग लद्दाख से नमक के बदले आटा, तांबे तथा पत्थर के बर्तन और लोहे का सामान लाते थे। इनके पास नेपाल में बनी हुई बंदूकें थी और वे तीर कमान का भी इस्तेमाल करते थे। नैन सिंह को यह याद था कि पिछली यात्रा में उसने गरतोक में नौजवानों को दौड़ते घोड़े से तीर का निशाना साधते हुए देखा था। चंपा समुदाय के लोग अच्छे शिकारी तथा निशानेबाज होते थे। शिकार हेतु उनके पास चूहेदानी की तरह का एक उपकरण (रिदीकचम) होता था। इससे पानी पीने आने वाले जंगली घोड़े, याक या हिरनों का शिकार किया जाता था।

अगले 10 पड़ावों के बीच, जो चाबुक जिंगा से हिसिक चाका तक फैले थे, यह पूरा इलाका बसासत रहित था। इसके बाद हिसिक चाका से होकर 25 अगस्त 1874 को जब वे आगे बढ़े तो कुछ लोग याक और घोड़ों सहित उनके पीछे आते दिखे। खतरे की संभावना जानकर नैन सिंह ने अधिकांश कपड़े, अनाज के थैले और उपकरण जमीन में छिपाकर दो साथियों को जानकारी हेतु भेजा। पता चला कि ये लोग गर्गेथोल कस्बे के निवासी थे, जहां कि पंडित का दल जा रहा था। खंपाओं के इस क्षेत्र में उसने हिसिक झील का सर्वे किया।



गर्गेथोल तथा गर्चेथोल नामक इन दो जिलों में खंपा निवास करते थे। ये चांगपा या चंपा समुदाय से भिन्न थे। खंपा समुदाय ल्हासा के उत्तर पूर्व में स्थित खाम से आए थे। गर्गेथोल में इनकी 70 छोलदारियां लगी थी। वहां इनकी कुल संख्या 600-700 थी। इसी तरह गर्चेथोल में 100 छोलदारियां लगी थीं। नैन सिंह ने पता किया कि ये खंपा लोग 24 साल पहले यहां आए थे। आते समय उन्होंने कैलास मानसरोवर के पास एक व्यापारिक कारवां को लूटा था। इसके बाद वे यहां बस गए। अब वे गरतोक के गरपन को कर अदा करते हैं। इनमें अब हर परिवार के पास 10 से 60 तक घोड़े और 500 से 2000 तक भेड़ें थीं। ये ज्ञानिमा के मेले में भी खरीद फरोख्त के लिए जाते थे।

इस समुदाय के सदस्य भेड़ की खाल की 'पोस्तिन' पहनते थे, जिसमें ऊनी भाग भीतर की ओर होता था। कमर पर एक डोरी से इसे बांधा जाता था। ये लोग टोप (फैल्ट हैट) तथा बूंट पहनते थे। ये बूट उपर की ओर ऊन के बने होते थे। चांगपा या चंपा लोगों के चेहरे में बाल नहीं होते थे और सिर में अनकटे बालों की लट होती थी। महिलाओं का पहनावा भी इसी तरह का होता था। चांदी के सिक्कों (विशेष रूप से बर्तानवी सिक्कों) की माला भी महिलाएं पहनती थी। आदमी तथा औरत दोनों ही अच्छे घुड़सवार होते थे और शिकारी भी। बंदूक, तलवार या तीर से वे शिकार करते थे। नैन सिंह ने ऐसे मौकों पर शिकार से गिरे खून को चाटते हुए उनके बच्चों को देखकर उन्हें 'खून का प्यासा' कहा था। बाद में अनाज की अनुपस्थिति में मक्खन और चीज के साथ जानवरों का खून मिलाकर बच्चों को खिलाया जाता था। नैन सिंह चांगपा या चंपा लोगों को बौद्ध बताता है पर निश्चय ही उनकी भाषा तिब्बती से अलग थी।

पैंगगोंग झील से पूर्व की ओर जिस पर्वतमाला में नैन सिंह चल रहा था, उसके दक्षिण में और उसके समानांतर एक बर्फ से ढकी पर्वतमाला थी। यह पर्वतमाला टैंगरीनूर पर्वत तक चली जाती थी। नैन सिंह ने पहली बार इस पर्वतमाला का परिचय दुनिया को दिया था। इसलिए कुछ सालों बाद इसे 'नैन सिंह रैंज' कहा जाने लगा। इससे पश्चिमोत्तर को मांटगोमरी ने अंवेषण कार्य किया था। 'नैन सिंह रैंज' कैलास पर्वतमाला के 120 मील उत्तर में स्थित थी। सन् 1878-80 के बीच यह समझा जाने लगा था कि 'नैन सिंह रैंज' कराकोरम पर्वतमाला का ही विस्तार है। पर फिर यह अनुमान तब पूरी तरह टूटा जब सन् 1909 में स्वेन हेडिन के अंवेषण के परिणाम प्रकाशित हुए। हेडिन ने 'नैन सिंह रैंज' तथा कैलास पर्वतमाला के बीच के पूरे क्षेत्र की पड़ताल की और पाया कि ये दोनों एक ही पर्वतमाला के दक्षिण तथा उत्तरी सीमांत हैं। इस बड़ी पर्वतमाला को उसने ट्रांस हिमालय नाम दिया। ठीक कब से नैन सिंह द्वारा खोजी गई इस पर्वतमाला को 'नैन सिंह रैंज' कहा जाना शुरू हुआ यह स्पष्ट नहीं हो सका है क्योंकि पुराने एटलस नहीं मिल सके हैं। लेकिन सन् 1961 तक के एटलसों में 'नैन सिंह रैंज' नाम छपा मिलता है।

नैन सिंह को बताया गया था कि गर्गेथोल तथा चंपा जिले के गेघा नामक स्थान के बीच जुलाई-अगस्त में हर साल बहुत बड़ा मेला लगता था। 29 अगस्त 1874 को पंडित जब हिसिकचाका लौटा तो उसने 200 से भी अधिक संख्या वाला जंगली घोड़ों का समूह देखा था। 1 सितंबर को हूमा छो नामक स्थान पर नैन सिंह की गर्गेथोल के गोंबो (ग्राम प्रधान, लद्दाख में इसे गोबो तथा डारी खोरसम में गड्यू या गन्यू कहते थे) से मुलाकात हुई। गोंबो द्वारा नैन सिंह तथा साथियों का स्वागत किया गया। अगले दिन बहुत घना कोहरा था। 3 सितंबर को नैन सिंह मांगो गांव में पहुंचा। यहीं यहां का गोंबो रहता था। नैन सिंह गोंबो से मिलने उसके टैंट में गया तथा उसने उसे चंदन की लकड़ी उपहार में दी। जब गोंबो से कुछ आत्मीयता हो गई तो नैन सिंह ने गोंबो से कहा कि वह नांचो झील के पास स्थित गोंपा की यात्रा में जा रहा है तो गोंबो छिरिंग डुंडुक ने बताया कि वह भी उसी दिशा में जा रहा है और उसने साथ ही चलने का प्रस्ताव रखा।

जब वह अपने कैंप की ओर से आया तो कौतूहल के साथ खंपाओं ने उनके टैंट को घेर लिया तथा कुछ सामान छीनने का प्रयास किया। पर उसने ऐसा नहीं होने दिया। यहां उन्हें ल्हासा की ओर का रहने वाला एक 80 साल का वयोवृद्ध आदमी सोनम दारका मिला, जो अनेक सालों से खंपाओं के साथ नौकर की तरह रह रहा था। धीरे धीरे वह संपन्न व्यक्ति बन गया था। उसे उपहार में सुई देकर नैन सिंह ने उससे दोस्ती कर ली और आसपास के इलाके के बारे में बहुत सी जानकारियां प्राप्त की। सोनम दारका ने उसे बताया कि गर्गेथोल तथा गर्चेथोल के उत्तर में एक वसासत विहीन विशाल मैदानी क्षेत्र है, जिसे जंग फाइल पुइल कहा जाता है। इस पानी रहित रेगिस्तान में कभी एक पिता-पुत्र के खो जाने की कहानी भी उसने सुनाई। चार दशक पहले जब यहां खंपा नहीं आए थे, तब यहां यारकंद की ओर से आवागमन और व्यापार प्रचलित था। उन व्यापारियों की भाषा के कुछ शब्द भी सोनम ने नैन सिंह को बताए, जिन्हें नैन सिंह ने यारकंद से लौटने के कारण तुर्की भाषा के शब्दों से मिलता जुलता पाया था। सोनम ने तीस साल पहले यारकंद तथा अजान, जो ठोकडोरकपा से दो माह की दूरी पर उत्तर पूर्व में स्थित था, की यात्रा भी की थी। सोक्पो ग्याल्पो इस सोक्पो जिले का शासक था। यहां से उत्तर की ओर अनेक रास्ते जाते थे।

4 सितंबर से चार दिनों तक वह सोनम दारका तथा गोंबो छिरिंग टुंडुप के साथ चला और केजिंग पहुंचा। छिरिंग टुंडुप के पास 50 घोड़े, 400 याक, 2000 भेड़ें और 6 टैंट थे। ये लोग ग्यानिमा के मेले तथा अन्य मंडियों में विक्रय हेतु भेड़, बकरियां, ऊन, नमक तथा सोना भेजते थे। यहां के स्त्री-पुरुष दोनों घुड़सवारी में माहिर थे। नैन सिंह ने इनके भोजन का भी रोचक विवरण दिया था।

छिरिंग ने नैन सिंह की आगे की यात्रा की व्यवस्था में सहयोग दिया और उसे



सिगात्से जा रहे लोगों के साथ भेज दिया। ठोकज्यालुंग से सिगात्से जा रहे इन लोगों के पास कुछ खाली याक भी थे। नैन सिंह का कुछ सामान इनमें लाद दिया गया। यहां केजिंग से 80 मील आगे ठोकडोरकपा तक पूरा क्षेत्र बसासत विहीन था। बीच बीच में इसमें खंपा पशुचारक अवश्य दिखाई देते थे। कुछ नदियां तथा ताशीभुप झील भी उनके रास्ते में पड़ी। कुछ आगे एक मार्ग दक्षिण में स्थित कैलास-मानसरोवर क्षेत्र को जाता था। यहां ताशीभुप झील के पूर्वी कोने से निकलने वाली नदी बाद में पूर्व की ओर बह कर चारगुट झील में चली जाती थी। नैन सिंह को इस इलाके में स्थित डाकुओं के बारे में बताया गया था और यह सलाह दी गई थी कि वह अपनी छोलदारियां सड़क से कम से कम दो मील इधर-उधर लगाए। एक लामा के रूप में यात्रा करने के कारण भी उसकी दिक्कतें बढ़ गई थीं।

17 सितंबर 1874 को नैन सिंह ठोकडोरकपा की सोने की खानों के पास पहुंचा। ये खानें पिछली यात्रा के समय ठोकज्यालुंग में देखी खानों से साधारण थीं। मजदूर, जिन्हें 'फुक्पा' कहा जाता था, जमीन में खोदी गई गुफाओं में निवास करते थे। ऐसी बसासतें 32 थी और हर एक में 5 से 25 लोग काम करते थे। इन गुफाओं में रहने का एक कारण खंपाओं का भय भी था। इस बीच डाकुओं का भय बना रहा और एक स्थानीय मुखिया के साथ होने के बावजूद नैन सिंह असुरक्षित महसूस करता रहा। एक लामा या बौद्ध के रूप में यात्रा करने के कारण उसे जरूरी धन और उपकरण अकल्पनीय ढंग से छिपाने पड़ते थे।

19 सितंबर 1874 को वे सोने की खानों की विस्तृत जानकारी लेकर आगे बढ़े। यहीं यह पता चला कि ठोकज्यालुंग तथा ठोकडोरकपा से निकला सोना गरतोक के बाजार से कुमाउंनी व्यापारियों द्वारा हिंदुस्तान ले जाया जाता था। तब 80,000 (अस्सी हजार) रुपए तक का सोना हर साल गरतोक की बाजार में आता था। सोने का अन्य वस्तुओं के साथ विनिमय भी होता था। सोने की खुदाई करवाने वालों को हर साल इसका कर ल्हासा के सरपौन (स्वर्ण आयुक्त) को देना पड़ता था। यह कर एक सर्सिया (यानी एक औंस का 1/5) प्रति व्यक्ति प्रति साल होता था। लेकिन नैन सिंह ने आश्चर्यजनक रूप से यह पाया था कि सोना खोदने वालों की तुलना में पशुचारक ज्यादा संपन्न थे।

यहां से दक्षिण में बर्फ से ढकी स्याल्ची कांगजांग पर्वत माला दिखाई दी। यहीं से ताशीभुप झील में विलीन होने वाली स्याल चू नदी निकलती थी। यहां बड़ी संख्या में हिरन दिखाई दिए, जिनके सींग सूरज की रोशनी में चमक रहे थे। इसी तरह के सींग उसे मार्ग में दिखाई देते थे। अनेक बार उसने इन सींगों को टैंट के कीलों की तरह इस्तेमाल होते भी देखा था। एक बार तो उसने 2000 तक हिरनों की संख्या गिन दी थी। यह मार्ग 16 हजार फीट की ऊंचाई पर था। नैन सिंह को चलने में कोई दिक्कत

नहीं हो रही थी पर अन्य साथी परेशानी महसूस करते थे। रास्ते में उसे व्यापार हेतु चाय ले जा रहे याकों का कारवां भी मिला। इस कारवां में 200 याक थे।

ठोकडोरकपा से 8 पड़ाव आगे नैन सिंह ने एक ऊंची पर्वतमाला को उसके एक दर्रे किलौंग (18,170 फीट) से होकर पार किया। आगे ग्याखरमा-पर्वतमाला दिखाई दी, जिसकी ऊंचाई नैन सिंह ने 21,000-22,000 फीट निश्चित की थी। आगे फिर झीलों का क्षेत्र आया। इनमें डांगरायुम तथा क्यारिंग प्रमुख झीलें थीं। डांगरायुम के उत्तर से नैन सिंह का रास्ता गुजरता था। यानी एक बड़ी झील उसके रास्ते के दांई ओर थी। इस इलाके में अनेक बसासतें थी। फिर नांगचीडुंगचे झील आई। इसके बाद डारूचो तथा चिकुट चो झीलों के बीचों बीच स्थित रास्ते से होकर वे क्यारिंग झील के दक्षिण से होकर गुजरे। यहां खेती भी होती थी। क्यारिंग झील होर इलाके में पड़ती थी। डांगरायुम झील में तो उसने समुद्र की तरह की लहरें उठते हुए देखी थीं। यह भी पता चला कि इन पर्वतों तथा झीलों की स्थानीय लोगों द्वारा वैसे ही परिक्रमा की जाती है जैसे कैलास पर्वत तथा मानसरोवर झील की।

डांगरायुम तथा आसपास की अन्य झीलों से उत्तर का क्षेत्र नाकचांग ओंबो कहलाता था और यहां बहुत से गांव थे। ओंबो यहां का प्रमुख गांव था, जहां नैन सिंह 28 सितंबर 1874 को पहुंचा था। मामूली सी खेती के चारों ओर विस्तृत चारागाह थे, जिनकी ऊंचाई 15240 फीट से कम नहीं थी। नैन सिंह ने 35 पड़ावों के बाद यहां खेती देखी थी और आगे भी ल्हासा के करीब तुलुंग पहुंचने पर 39 पड़ावों के बाद ही उसे पुनः खेती का क्षेत्र दिखा था। यह तथ्य तिब्बत की विशेषता को स्पष्ट रूप से बता देता था। यहां के निवासी नाकनक्श में अभी तक देखे लोगों जैसे ही दिखे पर वे बौद्ध नहीं थे। नैन सिंह द्वारा दिए वर्णन के आधार पर यह लगता है कि वे बोनपा यानी बोन धर्मावलंबी थे। नैन सिंह को इनके पास नेपाल में बनी हुई बंदूकें भी दिखाई दी थीं।

नैन सिंह यहां तक लिखता है कि ठोकडोरकपा से नामचो छिद्मो झील, जिसे टांग्रीनूर भी कहा जाता था, तक सीधा रास्ता था। इस क्षेत्र में नैन सिंह के अनुसार याक या घोड़ा गाड़ी चल सकती थी। यह पूरा इलाका पशुचारक चांगपा समुदाय का था। नोह से ल्हासा के बीच उसे लगातार झीलों का सिलसिला नजर आया। ये झीलें इस क्षेत्र की भौगोलिक विशेषता की तरह थीं। इनकी खोज का श्रेय नैन सिंह को दिया जाता है। इससे पूर्व नोह से ल्हासा के बीच सिर्फ नामचो या टांग्री नूर नामक झील ही भूगोलविदों को पता थी। इसका पता भी दरअसल सन् 1872 में किशन सिंह ने लगाया था और उसने इसकी प्रदक्षिणा ही कर डाली थी। इन नव अन्वेषित झीलों में डांगरा युत चो (45 गुणा 25 मील) तथा क्यारिंग चो (40 गुणा 8 से 12 मील) मुख्य थीं। इनमें से डांगरा का पानी कुछ खारा तथा क्यारिंग का मीठा था। सभी झीलों में मछलियां और



इनके आसपास पर्याप्त जंगली मुर्गियां थीं। लेकिन चांगपा लोग मछली या मुर्गी मारने के विरुद्ध थे।

अपनी पिछली यात्रा में किशन सिंह ने जमी हुई नामचो झील को देखा था। स्वाभाविक था कि उसने इस झील से कोई धारा निकलते हुए नहीं देखी थी। इस बार नैन सिंह इस झील के पास शरद ऋतु में पहुंचा और उसने देखा था कि इसके उत्तर-पश्चिमी कोने से एक धारा निकल कर पश्चिमी दिशा में बह रही थी। नैन सिंह नामचो या टेंग्रीनूर झील के उत्तर-पूर्वी किनारे से यात्रा करता हुआ इस झील के पूर्वी छोर से दक्षिण को मुड़ गया। इससे पहले मौजूद झीलों का पानी एक बड़ी झील चारगुट छो या नाक-चू-खा में जाता था और फिर होतासांगपो नदी के मार्फत पूर्व की ओर बह जाता था। इस क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी होतासांगपो या डुंफु थी। इस नदी के प्रवाह का कुछ हिस्सा तब तक अज्ञात था। आबे हक के वर्णन, कीथ जांस्टन तथा क्लाप्रोथ के मानचित्रों के अनुसार इस पानी के अंततः मेकौंग या सालवीन या ब्रह्मपुत्र नदी में जाने की संभावना प्रकट की गई थी। यह भ्रम नैन सिंह की यात्रा से भी साफ नहीं हो सका था। हालांकि इस नदी तथा इसकी सहायकों का तब तक उपलब्ध वर्णन नैन सिंह ने किया था।

नामचो झील के बाद दक्षिण की ओर मुड़कर नैन सिंह ने 12 नवंबर 1874 को बकनक दर्रे (17840 फीट) को पार कर तुलुंग नदी, जो ल्हासा से कुछ नीचे ल्हासा नदी या कीछू नदी में मिलती थी, की घाटी में यात्रा शुरू की। यह घाटी पर्याप्त आबाद थी। यहां वह पहली बार 13000 फीट की ऊंचाई पर चल रहा था। ल्हासा की ओर जाते-जाते यह ऊंचाई घटती गई। तुलुंग घाटी में उसकी आंखों को राहत मिली जब उसने फिर खेती का क्षेत्र, विभिन्न फसलें तथा मौसमी सब्जियां देखीं। अब पालतू जानवर, मुर्गियां, सुअर आदि उसे दिखाई दिए। सामाजिक स्तर पर अब अधिक सभ्य बोधपा समुदाय ने चांगपा समुदाय का स्थान ले लिया था। यह नैन सिंह का पूर्ण पशुचारकों के क्षेत्र से पशुचारक-खेतीहरों के क्षेत्र में आना था।

ल्हासा (11910 फीट) के करीब आने पर नैन सिंह ने सुना कि शहर में उसके (अंग्रेजी ऐजेंट) आने की अफवाह थी। नैन सिंह के भ्रम में भारत से नेपाल होकर तिब्बत आए एक चीनी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया गया था और उसे तब तक नजरबंद रखा गया जब तक कि उसने चीनी अधिकारी के सामने यह सिद्ध नहीं कर दिया कि जिस व्यक्ति को वे ढूंढ रहे हैं वह वह नहीं है।

## फिर 'वर्जित' ल्हासा में

ल्हासा से एक पड़ाव पहले लैंगडोंग में नैन सिंह एक दिन रुका और अपने ल्हासा के ही नौकर नैनडक को उसने सराय में एक कमरा लेने और यह पता करने को भेजा कि क्या

सचमुच वहां उसके आने की खबर पहुंची है। नौकर ने वापसी में बताया कि ल्हासा में ऐसी कोई अफवाह नहीं है, जबकि वास्तव में वहां अफवाह थी। 18 नवंबर 1874 को नैन सिंह ने आठ साल दस माह बाद पुनः वर्जित शहर ल्हासा में प्रवेश किया। यह भी सर्वेक्षण तथा अंवेषण के इतिहास की असाधारण घटना थी कि नैन सिंह को ल्हासा में दूसरी बार आने का मौका मिला था जबकि कितने ही महत्वाकांक्षियों को ल्हासा के बहुत करीब आकर लौटना पड़ा था।

दुर्भाग्य से ल्हासा में नैन सिंह को जो पहला व्यक्ति मिला, वह लेह का एक परिचित व्यापारी था। पहले उसने दोस्ती निभाई पर बाद में नैन सिंह के लामा वेश में होने से उसका शक बढ़ गया और उसने अपने तेवर बदल दिए। उसने नैन सिंह से कहा कि तुम जासूस हो और अब इस काम को छोड़ दो। नैन सिंह के पास उस व्यापारी को बताने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था। इस कारण नैन सिंह को अब उस व्यापारी पर विश्वास न रहा। उसे यह संभावना लगने लगी कि वह दगाबाजी करेगा। नैन सिंह द्वारा अंवेषण कार्य छोड़ कर तुरंत भागने का निर्णय लिया गया। मात्र दो दिन ल्हासा में रह कर 20 नवंबर 1874 को उसने ल्हासा छोड़ दिया और वह आगे की यात्रा में निकल गया। यह भी एकदम नया मार्ग था।

लेह से यात्रा के आरंभ के समय अंग्रेज अधिकारी ने एक लद्दाखी व्यापारी को इस अभियान हेतु पर्याप्त धन दिया था, जिसे उस व्यापारी ने ल्हासा जाकर नैन सिंह को देना था। अब इस कारवां का इंतजार करना नैन सिंह के लिए खतरों भरा था और दूसरी ओर तब उसकी आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। बहुत बाद में यह पता चला कि उस व्यापारी की मार्ग में ही मृत्यु हो गई थी। यानी अगर नैन सिंह को ल्हासा में कुछ समय रुकने का मौका मिलता तो भी उस तक आर्थिक सहयोग का पहुंचना संभव नहीं था।

यहां यह बताना उचित होगा कि नैन सिंह के चचेरे भाई, सहयोगी तथा असली उत्तराधिकारी पंडित 'ए-के' यानी किशन सिंह ने सन् 1878-79 में मंगोलिया अभियान के समय अपने प्रेरक, चचेरे भाई और शिक्षक नैन सिंह द्वारा स्थापित प्रतिमान को भी पीछे छोड़ दिया था। जब किशन सिंह अप्रैल 1878 में दार्जिलिंग से चला था तो ल्हासा जाने के मार्ग के खतरे तथा नैन सिंह के अनुभव उसके पास थे। उसने नैन सिंह से अलग मार्ग लिया था। इसी मार्ग पर सन् 1774 में जॉर्ज बोगले, सन् 1783 में सेमुअल टर्नर तथा सन् 1811 में टामस मानिंग चले थे, जिनकी चर्चा पहले हो चुकी है। लेकिन उनके बाद कोई भी यूरोपीय उस मार्ग में नहीं गया था।

सितंबर 1878 में किशन सिंह ल्हासा पहुंच गया था। यहां विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के साथ वह यह देखता रहा था कि मंगोलिया के लिए कब नया कारवां जाने वाला है। मार्ग के असुरक्षित होने तथा मार्ग में निरंतर डाकुओं का भय होने से प्रस्थान



की तिथि तय नहीं हो पा रही थी। फिर कारवां का जाना मौसम तथा अन्य कारणों से अगली शरद ऋतु तक के लिए टल गया। तब एक कारवां के मंगोलिया से आकर वापस जाने की संभावना थी। इस तरह सितंबर 1878 से सितंबर 1879 के बीच एक साल तक ल्हासा में रहने का प्रतिमान किशन सिंह ने बनाया और ल्हासा का सर्वथा विस्तृत वर्णन उपलब्ध कराया।

लेकिन यह चार साल बाद की बात है। इस समय सन् 1874 में तो नैन सिंह को सुरक्षित वापस लौटना था। इसलिए उसने अपने दो साथी लेह के मार्ग में भेजे। इनके हाथ उक्त व्यापारी, जिसके पास उसके मार्ग व्यय की धन राशि आदि ल्हासा में उसे देने को दी गयी थी, को पत्र (बाद में पता चला कि यह व्यापारी मार्ग में ही मर गया था) तथा लद्दाख के ब्रिटिश ज्वाइंट कमिश्नर को परीक्षणों की रपट तथा मार्गों के सर्वे विवरण भेजे। जनवरी 1875 में ये कागजाद सुरक्षित रूप से भारत के सर्वे विभाग में पहुंच गए। पिछली यात्रा में पंडित ने पर्याप्त समय ल्हासा में बिताया था और वहां का पर्याप्त विवरण तैयार किया था। इस बार दो दिनों में कुछ नहीं हो सका। पर इन दो दिनों में उसकी आंखों ने कम नहीं देखा।

20 नवंबर 1874 को फालतू सामान का बंडल बना कर सराय के मालिक को देकर और यह कह कर कि वह दस दिन की दूरी पर स्थित किसी और मठ की यात्रा में जा रहा है, नैन सिंह ल्हासा से चल पड़ा। वह सराय के मालिक से कह गया कि वह महीने भर के भीतर आ जाएगा। किसी प्रकार की शंका न होने देने के लिए यह सब उसे जरूरी लगा। इसी बात को मन में रख कर अगली दोपहर को ये लोग उत्तर दिशा की ओर चले, पर शाम होते-होते वापस लौटे और पूर्वोत्तर भारत की ओर चल पड़े।

पहली रात वे कुंबुथांग और दूसरी रात ढेजेन नामक जगह पर रहे। ढेजेन ल्हासा नदी के किनारे स्थित प्रसिद्ध नगर तथा गोंपा था। डीचीड़ नामक स्थान तक वे ल्हासा-पीकिंग मार्ग (ल्हासा से पीकिंग की यह दूरी 2500 मील बताई गई थी और इसमें 136 पड़ाव मार्ग में पड़ते थे। इसी मार्ग से आबे हक़ तथा ज़ोसफ गैबे की पीकिंग से ल्हासा यात्रा हुई थी) से होकर आए। ढेजेन से नैन सिंह ने पीकिंग मार्ग छोड़ा और दक्षिण की ओर मुड़ते ही गोखर दर्रा (16620 फीट), जो ल्हासा नदी तथा ब्रह्मपुत्र के जलागमों का विभाजन करता था, पार किया। इस दर्रे पर ताजा बर्फ पड़ी थी और यहां से दक्षिण में याला शिंबो शिखर तथा उत्तर-पश्चिम में निंजिन थांगल शिखर का भव्य दृश्य दिखाई दिया था।

27 नवंबर 1874 को वे सामये मठ, जो ब्रह्मपुत्र की एक सहायक नदी के इस विशाल नदी में मिलने के स्थान से मात्र 2 मील पहले स्थित था, पहुंचे। सामये मठ शाक्यमुनि के द्वारा स्थापित प्राचीन मठ बताया जाता था। इस मठ का निर्माण आठवीं सदी में यारलुंग के शासक त्रिसौंग देत्सन द्वारा किया गया था। यहीं से तिब्बत में बौद्ध

धर्म को राज्य धर्म के रूप में मान्यता मिली। ऊंची दीवारों से घिरे, चार प्रवेश द्वारों और डेढ़ मील के फैलाव वाले इस मठ में नैन सिंह ने 1030 चोर्तनों की गिनती की, जो पकी ईंटों से बने थे। मठ की सभी मूर्तियां सोने की थीं और दीवारों पर संस्कृत (देव नागरी लिपि) में पद खुदे थे। इस मठ में पर्याप्त हस्तलिखित बौद्ध ग्रंथ (तंजूर तथा कंजूर) भी रखे थे। नैन सिंह ने कंजूर ग्रंथों की संख्या 108 बताई थी। वहां यह कहानी प्रचलित थी कि ल्हासा के शासक ताजुंग डुंडजक का पुत्र तथा नाती शाक्य मुनि के सामये आने पर बौद्ध बने थे और उनके समय में ही इस मठ का निर्माण कार्य शुरू हुआ था।

सामये मठ से ब्रह्मपुत्र के बाएं किनारे-किनारे चलकर अनेक सहायक नदियों को पार कर 30 नवंबर 1874 को नाव से ब्रह्मपुत्र की दूसरी ओर जा कर वे आगे बढ़े। यहां ब्रह्मपुत्र को सानपो या तामजुन खा नाम से जाना जाता था। तिब्बत में सबसे कम ऊंचाई पर ब्रह्मपुत्र यहीं बहती थी और नैन सिंह ने यहां पर नदी की चौड़ाई 500 गज (1500 फीट) बताई थी। ब्रह्मपुत्र के प्रवाह में लकड़ी का एक टुकड़ा डालकर नैन सिंह ने पाया था कि वह 2 मिनट 40 सेकेंड में 50 गज दूर बह गया था। नदी की गहराई 20 फीट तक थी। यह अनुमान उसने उन लट्ठों के आधार पर लगाया था, जो नाव खेने के काम आते थे। बर्फ पिघलने के दौर में मई-जुलाई के बीच नदी में सबसे अधिक पानी होता था। इसमें अप्रैल से जून के बीच में होने वाली वर्षा का भी योगदान रहता था। ब्रह्मपुत्र नदी से यहां सिंचाई का काम नहीं होता था, जैसा कि नैन सिंह ने सिगात्से में देखा था। पर ब्रह्मपुत्र में मिलने वाली सभी छोटी सहायक नदियों से सिंचाई की जाती थी।

छेतांग से उसने ब्रह्मपुत्र को छोड़ दिया। नदी यहां से दक्षिण-पूर्व को बहती थी। यहां से लगभग 30 मील तक नदी का प्रवाह नजर आता था। उस तरफ की चोटियों का अंकन कर नैन सिंह ने नदी के मार्ग का अनुमान किया था, जो दू हाल्दे के तिब्बत के नक्शे में दिखाए गए नदी मार्ग से समानता रखता था। छेतांग से 130 मील बह कर यह नदी ग्याला पहुंचती है। यहां से 15 दिन के यात्रा मार्ग के बराबर दूरी पारकर यह नदी धान उत्पादन करने वाले इलाके (ल्हो खालो) में पहुंचती है। यहां का शासन एक ऐसे शासक के अंतर्गत बताया जाता था, जो ल्हासा से स्वतंत्र था। इस इलाके और ल्हासा के बीच में कोंबो जिला पड़ता था, लेकिन यहां के निवासियों का दक्षिण के निवासियों (आज का अरुणाचल प्रदेश) से कोई संपर्क नहीं था। ल्हो खालो इलाके में दो बड़ी नदियां ब्रह्मपुत्र में मिलती थी।

इस प्रकार नैन सिंह सांगपो के प्रवाह की दिशा पर कुछ और रोशनी डालने में कामयाब रहा। उसने यह भी पता किया था कि तिब्बत में स्थानीय लोगों को यह जानकारी थी कि सांगपो ही असम की ब्रह्मपुत्र का तिब्बती रूप है। इससे स्पष्ट हो गया था कि यह वही नदी थी जो असम के सदिया नामक स्थान में दिहांग कहलाती थी।



छेतांग एक बड़ी बसासत के रूप में ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी यालुंग के दाएं किनारे पर स्थित था। यालुंग हिमालय की ओर से आने वाली नदी थी। तब यहां के दो बौद्ध मठों में 700 भिक्षु रहते थे।

यहां से आगे नैन सिंह यालुंग नदी के किनारे चला था। यह लगातार संपन्न खेतीहर क्षेत्र था, जहां फल, अनाज तथा सब्जियां पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं। इसमें अनेक गांव तथा मठ मौजूद थे। ऊपर पहाड़ों में चारागाह थे। यहां की भेड़ें नैन सिंह को छोटी लगी थी। छेतांग से डालातांग तक 36 मील के क्षेत्र में 10-12 घरों वाले अनेक गांव थे। नेटोंग तथा चुक्या फुटंग जैसे कस्बे भी थे। डालाटांगला से कारकांगला तक 15,000-16,000 फीट की ऊंचाई पर घास के मैदान मिले। इस क्षेत्र में भी एक नदी बहती थी।

इसके बाद दो दर्रों को पार कर नैन सिंह फिर द्रोगपा पशुचारकों के बीच पहुंच गया। यहां कारकांग दर्रे (16,210 फीट) से हिमालय के दक्षिणी जलागम तथा उत्तर-पूर्वी भारत में प्रवेश किया जाता था। इस दर्रे से उसने अत्यंत भव्य दृश्य देखा। नीचे मैदानों का सिलसिला था और उत्तर-पश्चिम में बर्फीला शिखर याला शिंबो दिखाई दे रहा था। अन्य दिशाओं में भी बर्फीले शिखर थे, पर बहुत दूरी पर। कारकांग ला से 70 मील दक्षिण में क्याक्या ला तक एक विस्तृत पठार फैला हुआ था, जिसके पश्चिम में बर्फीले शिखर तथा दक्षिण-उत्तर में ग्लेशियर थे। यहां से कुछ समय तक एक सहायक नदी के साथ 20 मील चलकर वे सेरासा दर्रे (15,300 फीट) को पार कर तवांग चू नदी के साथ 40 मील उतरते हुए आगे बढ़े और सिकुंग नदी के जलागम में पहुंचे। यहां की संपन्न बसासतों से होकर नैन सिंह सेरासा ला को पार कर दक्षिण को चलते गए। क्याक्या ला से नीचे का रास्ता चुखांग (स्यू) घाटी में उतरता था, जो एक ऊंची पहाड़ी धार द्वारा तवांग से अलग हो जाती थी। यहां से एक और ऊंचे तथा बर्फीले दर्रे -मिला खातोंग—को पार कर वे तवांग (वर्तमान अरुणाचल का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र) में प्रवेश कर सके। रास्ते में सेरासा ला के पास उन्हें पूरी तरह जमी हुई 6 गुणा 4 मील आकार की एक झील मिली। यहां सिगात्से से एक सीधा मार्ग भी आता था।

## तवांग में प्रवेश

सिकुंग से छोना जौंग तक के बीच का इलाका बसासत रहित था। छोना जौंग में तवांग के जौंगपौन का ग्रीष्मकालीन आवास था। छोना जौंग एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था। नैन सिंह के अनुसार यह व्यापार चाहे लेह से होने वाले व्यापार से कमतर हो सकता था पर व्यापारियों, भारवाहक आदमियों तथा पशुओं की संख्या यहां ज्यादा लगती थी। नमक, सुहागा, ऊन, चाय, रेशम, चमड़े के बूट तथा घोड़े आदि इस व्यापारिक केंद्र में तिब्बत से आने वाली मुख्य सामग्री थी तो असम की ओर से चावल,

मसाले, रंग, फल तथा सूती कपड़ा आदि आते थे। चावल पर ल्हासा सरकार का एकाधिकार था। छोना जौंग में चावल का एक अलग गोदाम (देरांग) बनाया गया था, जिसका मुखिया देरांगपा कहलाता था। देरांगपा का कार्य ल्हासा सरकार की ओर से असम से आया हुआ चावल खरीदना था।

छोना जौंग में 300-400 दुकानें थीं। नैन सिंह का मानना था कि यद्यपि यहां पर लेह के बराबर आयात-निर्यात नहीं होता था, लेकिन यहां व्यापारियों, मजदूरों तथा भार वाहक पशुओं की संख्या ज्यादा थी। ज्यादातर व्यापारी तवांग के थे, जिन्हें मोनपा कहा जाता था। होर (मध्य-पश्चिमी तिब्बत) की ओर से आने वाली सामग्री दोगपा या चांगपा और ल्हासा की सामग्री वहां के व्यापारी लाते थे। चावल को छोड़ कर शेष मुक्त व्यापार था पर हर आयात-निर्यात की सामग्री पर 10 प्रतिशत कर लागू था। यह कर जौंगपौन द्वारा वसूल कर ल्हासा भेजा जाता था। तवांग के मोनपा नैन सिंह को भाषा, पहनावे, व्यवहार तथा चेहरे से तिब्बतियों से भिन्न तथा भूटान के द्रोगपा समुदाय के ज्यादा करीब लगे थे (यह आज भी महसूस किया जा सकता है)। ये तिब्बतियों की तरह पीछे को बाल करने के बदले चारों ओर से उन्हें काट देते थे। वे टोपी पहनते थे और एक छोटा कोट भी। इस कोट को लकड़ी के एक कमरबंद द्वारा कसा जा सकता था। वे लोग खुकरी भी रखते थे।

तवांग के महत्वपूर्ण मठ को छोड़कर तवांग घाटी के शेष सभी गांव छोना जौंग के जौगंपौन के अंतर्गत थे। तवांग का मठ न सिर्फ जौगंपौन, बल्कि ल्हासा सरकार से भी स्वतंत्र था। इसमें 600 लामा निवास करते थे। पूरे क्षेत्र पर इस मठ का स्वामित्व था और यह विस्तार ब्रिटिश भारतीय सीमा में स्थित ओदालगुढ़ी (यह अब असम का इसी नाम का नया जिला है, तब यह असम के दिरांग जिले में आता था) तक था। दरअसल तिब्बत तथा पूर्वोत्तर भारत की वर्तमान सीमा 1914 में परिभाषित होनी शुरू हुई।

तवांग जिले का प्रशासन एक संसद चलाती थी, जिसे 'काटो' कहा जाता था। यह पूरी तरह लामाओं की संसद थी। काटो के प्रमुख अधिकारियों में एक कंबू लामाओं में अनुशासन रखने तथा उन्हें सजा देने का काम करता था। लबबन एक प्रकार का शिक्षक था। गिलोंग, जो 4-5 तक हो सकते थे, कर वसूल करते थे। नेरबा या नेरपा, जो कि 4-5 होते थे, का काम विभिन्न कार्यों में गिलोंग को मदद करना था। इनके साथ कुछ बुजुर्ग लामा मिल कर यहां की संसद का निर्माण करते थे। यह संसद स्थानीय लोगों द्वारा अत्यंत सम्मान के साथ देखी जाती थी। तवांग के लामा आजाद थे। इन लामाओं के पास बंदूकें, तीर तथा कमान थे और स्वतंत्र सेना भी थी। ये वहां की विभिन्न जनजातियों (डाफला, डुफला तथा ल्होबा) पर भी नियंत्रण करते थे।

यहां के विशिष्ट शरीर संरचना वाले निवासियों का भी नैन सिंह ने अपनी रपट में वर्णन किया था। यहां के निवासियों का भूटान तथा दिरांगघाटी के निवासियों से



छिटपुट संघर्ष चलता रहता था। जब नैन सिंह नीचे की घाटी में उतर रहा था तो उसे 15-16 ल्होबा लोगों ने पकड़ लिया था। वे लोग ऊपर के एक गांव लिह, जो दोनों ओर कर देता था, से विभिन्न जानवर तथा अपने हिस्से का कर आदि ला रहे थे। नैन सिंह उन्हें देखकर डर गया। विशेष रूप से उनके हाथ और पैरों की मांशपेशियां देखकर वह अत्यंत चकित था। ये लोग बांस की बनी गोल टोपी पहनते थे। कमर से नीचे लंगोट की तरह का छोटा कपड़ा पहनते थे। तीर और कमान उनके पास हर समय होता था। वे बूट नहीं पहनते थे पर रस्सियों की बनी रंगीन अंगूठियां सी पहनते थे, जिनसे कसकर इनके हाथ-पैर बंधे रहते थे।

24 दिसंबर 1874 को नैन सिंह तवांग पहुंचने में कामयाब हुआ। लेकिन यहां से दक्षिण को यानी बर्तानवी क्षेत्र में जाने की स्वीकृति न मिलने के कारण वह 17 फरवरी 1875 तक तवांग में ही रुका रहा। इस तरह 54 दिन तक तवांग में रुकने के कारण उसने यहां के समाज तथा मठ की दिनचर्या को करीब से देखा और इस समाज के तिब्बत तथा असम से आर्थिक संबंधों को भी समझा। यहां से 1 मार्च को वह बर्फ भरे रास्ते तथा साई ला तथा मेंडा ला सहित चार दर्रों को पार कर ओदालगुड़ी पहुंचा। दरअसल इसी मार्ग के अगल-बगल आज का तेजपुर-तवांग मोटर मार्ग जाता है। यही वह क्षेत्र है, जहां 1962 का भारत चीन युद्ध हुआ था। जसवंतगढ़ यही है। तब ओदालगुड़ी से बर्तानवी क्षेत्र शुरू होता था। यहां नैन सिंह ने दिरांग के सहायक कमिश्नर से संपर्क किया, जिसने उसके गुवाहाटी पहुंचने की व्यवस्था की। तब रेल गुवाहाटी तक नहीं पहुंची थी और कलकत्ता या ढाका तक जल मार्ग से यात्रा हो सकती थी। यहां से स्टीमर से वह 11 मार्च 1875 को कलकत्ता और अंततः देहरादून पहुंचा।

इस यात्रा में पैंगगोंग झील से ल्हासा और ओदालगुड़ी तक कुल 1319 मील की यात्रा हुई। ट्रॉटर ने अपनी रपट के पृष्ठ 121 पर लुकांग से ल्हासा तक 1013 मील, ल्हासा से ओदालगुड़ी 306 मील यानी इस दूरी को कुल 1319 मील बताया था। इसमें लेह से लुकांग तक का 76 मील जोड़ कर यह 1395 मील होता है। लेकिन पंडित के विवरण में लेह से नोह 173 मील, नोह से ठोकडोरकपा 377 मील, ठोकडोरकपा से सेंजा जौंग 262 मील, सेंजा जौंग से ल्हासा 283 मील, ल्हासा से तवांग 213 मील, तवांग से ओदालगुड़ी 97 मील अर्थात ल्हासा से ओदालगुड़ी 310 मील यानी कुल 1405 मील बताया गया है। इनके जोड़ घटाने में कहीं कुछ छूट गया लगता है।

इसमें से 1200 मील सर्वथा नया क्षेत्र था, जिसमें नई झीलों, नदियों, पर्वतों तथा दर्रों का पता चला था। सिर्फ पैंगगोंग झील से पश्चिम का हिस्सा पहले खोजा गया था। मानव भूगोल के भी कई पक्ष पता चले। कितनी ही झीलें, नदियां और स्थान ऐसे थे जिनका इससे पहले पता न था। ब्रह्मपुत्र नदी का बहुत-सा अब तक अजाना प्रवाह पता

चला। ल्हासा से तवांग होकर असम आने का सर्वथा नया मार्ग नैन सिंह ने खोज निकाला।

इस मार्ग का विस्तृत तिथिवार विवरण उसने दिया था। सेक्सटैंट द्वारा सूर्य तथा तारों के 276 डबल एल्टिट्यूड लिए गए थे। हर पड़ाव तथा दर्रे पर तापमान तथा हवा की गति नोट की गई थी। मौसम के इन विवरणों की संख्या 497 थी। हर पड़ाव पर इस यात्रा में नैन सिंह को तिब्बत की संस्कृति के विभिन्न रूपों को जानने का भी अवसर मिला था।

लेह से नोह तक के 173 मील में सबसे कम ऊंचाई वाला स्थान 11,890 फीट तथा सबसे ज्यादा ऊंचाई वाला स्थान 17,700 फीट था। नोह से ठोकडोरकपा के 377 मीलों में सबसे कम ऊंचाई 13,770 फीट और सबसे ज्यादा 15,300 फीट थी। ठोकडोरकपा से सेंजा जोंग के बीच के 262 मील में न्यूनतम 10,330 फीट तथा अधिकतम 16,560 फीट थी। सेंजा से ल्हासा के 283 मील में सबसे कम ऊंचाई (11,911 फीट) पर ल्हासा स्थित था और सबसे ज्यादा कैसर सिंघ्या पर यह ऊंचाई 15,790 फीट थी। ल्हासा से तवांग के मार्ग में 16,020 फीट सर्वाधिक ऊंची तथा तवांग (10,280 फीट) सबसे नीची जगह थी। अंतिम 97 मीलों में, जो तवांग से ओडालगुड़ी तक फैला इलाका था, सबसे नीचे ओदालगुड़ी मात्र 450 फीट पर थी। यह स्थान ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में स्थित था।

लेकिन यह यात्रा अत्यधिक थकाने वाली प्रमाणित हुई। पंडित नैन सिंह का शरीर पस्त तथा आंखें कमजोर हो गई थीं। अभी वह सिर्फ 45 साल का था लेकिन किसी और यात्रा के लिए स्वस्थ न था। इन यात्राओं में कितना कुछ पाता हुआ पंडित धीरे-धीरे अपने को खोता गया। एक अंवेषक का यश तथा ऊंचाई पाने के लिए वह अपने शरीर का आधार खोता रहा। यद्यपि उसकी मृत्यु पूरे 20 साल बाद हुई पर यह एक अन्वेषक के लिए यातना की तरह ही रहा होगा।

# 8

# यात्रा साहित्य तथा विज्ञान लेखन

## तीन हिंदुस्तानी डायरियों तथा एक किताब का लेखक

नैन सिंह रावत ने कभी यह नहीं सोचा होगा कि जिन डायरियों को वह लिख कर छोड़ रहा है वे 100 साल बाद जब लोगों को और जानकारों को उपलब्ध होंगी तो उनका महत्व समझा जाएगा। उसने यह भी नहीं सोचा होगा कि उसे उन डायरियों के लिए याद किया जाएगा, जिन्हें अंग्रेजों ने ज्यादा महत्व नहीं दिया था। उसकी डायरियों पर चर्चा तो तब से शुरू हो गई थी जब उनके हिस्से 'पहाड़' तथा 'नैनीताल समाचार' के अंकों में 25 साल पहले प्रकाशित होने शुरू हुए थे। आर. एस. टोलिया तथा राम सिंह की किताबों के प्रकाशित होने के बाद यह चर्चा बढ़ी और उमा भट्ट तथा शेखर पाठक की नैन सिंह के जीवन, अंवेषण तथा लेखन पर केंद्रित वृहत रचना 'एशिया की पीठ पर' (2006) प्रकाशित होने के बाद पाठकों को नैन सिंह को समग्रता में देखने का मौका मिलना शुरू हुआ।

नैन सिंह रावत की अब तक तीन डायरियां तथा एक प्रकाशित पुस्तक मिल सकी है। इन डायरियों ने अनेक हिस्से पिछले अध्यायों में प्रयुक्त किए गए हैं। भवान सिंह रावत के अनुसार नैन सिंह ने एक हिंदी-तिब्बती शब्दकोष भी बनाया था। दुर्भाग्य से उसकी कोई प्रति नहीं ढूंढी जा सकी है। इसी तरह नैन सिंह की अंतिम महान यात्रा (देहरादून-शिमला-लेह-ल्हासा-तवांग-ओदालगुड़ी-गुवाहाटी-कलकत्ता-देहरादून) की हिंदुस्तानी डायरी भी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

नैन सिंह की पहली डायरी आंशिक रूप से आत्मकथात्मक है। नैन सिंह की संघर्षगाथा का पता इसी डायरी से चलता है। उसकी जन्म तिथि तथा जन्म स्थान का पता इसी से चलता है। साथ ही उसके पिता की दुस्साहस भरी जीवनी भी इसी डायरी से उजागर होती है। इसमें वह रावत कौम या मिलमवाल कौम का परिचय देकर तिब्बती तथा कुमाउंनी शासकों का जिक्र करता है। फिर विस्तार से अपने रावत वंश का वर्णन करता है। किस तरह राजस्थान से आकर उनके पूर्वज पैनखंडा (चमोली) आए और फिर कैसे वे मिलम पहुंचे। गोरखों के कुमाऊं आगमन से

कंपनी के यहां आने तक की विशेष चर्चा इसमें है।

तत्पश्चात नैन सिंह अपने पिता अमर सिंह यानी बुढ़ा लाटा की अत्यंत रोचक कहानी बताता है और अपनी कहानी भी शुरू करता है। अनेक वर्षों तक भटकूड़ा में रहकर, अपनी तीन पत्नियों को खोकर और चौथी पत्नी तथा बच्चों को साथ लेकर कैसे लाटा अपने मूल गांव मिलम लौटता है, कैसे अगले वर्ष 1848 में अमर सिंह की मृत्यु हो जाती है और कैसे विपत्ति में पड़ा यह परिवार अपना गुजारा नहीं कर पाता है। आगे नैन सिंह के घर से भागने, माणा गांव जाने, विवाह, वापसी, जानवरों की खरीद हेतु हिमाचल की यात्रा, तिब्बत होकर लौटने और नैन सिंह का स्लागेंटवाइट भाइयों के अभियान में जाने का वर्णन है।

नैन सिंह के 1859 में मिलम में शिक्षक बनने, फिर 1862 में धारचूला में स्कूल खोलने के लिए जाने के पश्चात 1863 में सर्वे ऑफ इंडिया के देहरादून दफ्तर में जाने की रोचक कहानी दी गई है। तत्पश्चात जनवरी 1865 में देहरादून से चल कर, काठमांडू होकर तिब्बत में प्रवेश कर जनवरी 1866 में ल्हासा पहुंचने तथा ल्हासा का वर्णन है।

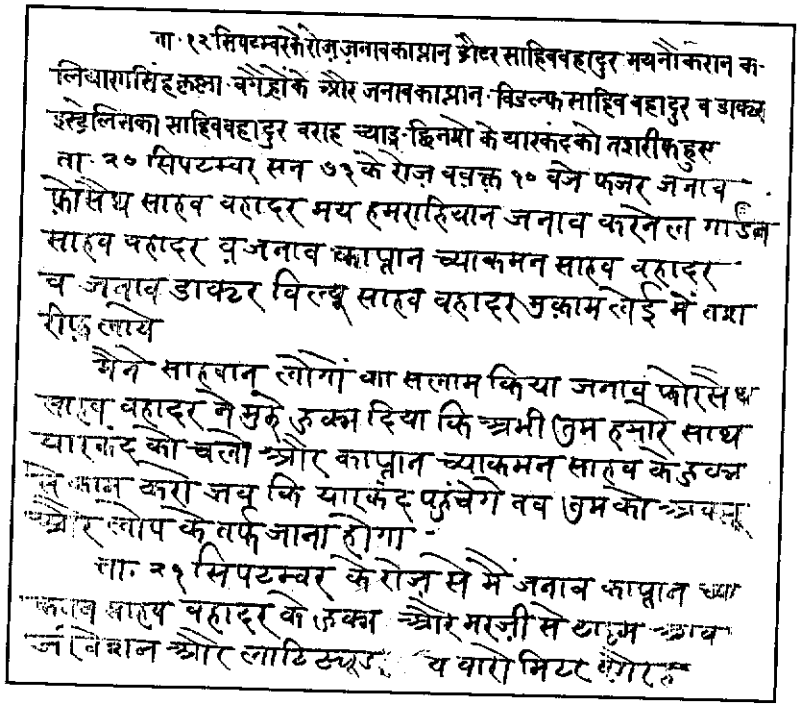

नैन सिंह की डायरी का एक पन्ना



इससे आगे की डायरी उपलब्ध नहीं हो सकी है। अंग्रेजी में इस अभियान की पूरी रिपोर्ट उपलब्ध है।

नैन सिंह की दूसरी डायरी ठोकज्यालुंग यात्रा से संबंधित है, जहां वह सोने, सुहागे तथा नमक की खानों का सर्वेक्षण करने के लिए जून 1867 में गया था और दिसंबर 1867 में लौटा था। यह डायरी माणा से शुरू होती है। सरजी लामा के आगमन के बाद व्यापारियों तथा नैन सिंह का दल किस तरह पश्चिमी तिब्बत में छपराङ पहुंचता है। फिर वे कैसे थोलिंग पहुंचते हैं, जहां नैन सिंह की अपने बड़े ससुर अमरदेव मार्छा से मुलाकात होती है। इसके बाद सतलज तथा सिंधु नदी के जलागमों से होकर आगे बढ़ने का वर्णन है और ठोकज्यालुंग इलाके में पहुंचने का भी। जगह जगह उनको रोके जाने, टोके जाने और नैन सिंह के किसी न किसी तरह आगे बढ़ निकलने का अत्यंत रोचक वर्णन इसमें है।

तत्पश्चात सोने, सुहागे तथा नमक की खानों की चर्चा है। विशेष रूप से सोने की खानों में काम करने वाले सर्वा लोगों का वर्णन तथा उनके सामूहिक तथा गीत गाकर किए जाने वाले श्रम का वर्णन है। इसी डायरी में डाकुओं के हाथ पढ़ने तथा मौसम के विपरीत होने की चर्चा भी है।

नैन सिंह की तीसरी डायरी यारकंद खोतान के रोजनामचे के रूप में सामने आई है। यह 14 फरवरी 1873 को देहरादून से शुरू होती है। यह चर्चा इस डायरी में है कि पहले उसे दार्जिलिंग की राह ल्हासा भेजकर फिर ब्रह्मपुत्र के साथ असम में लखनपुर तक आने की योजना थी, जो किन्हीं कारणों से टल गई। फिर उन्हें मसूरी आकर फॉरसैथ मिशन के साथ तैयार रहने को कहा गया। जून 1873 में मसूरी से शिमला, शिमला से लेह, खरदुंगला, पानामीक, ससेरघाटी, काजीलुंगर, दौलतवेगी, शहीदुल्ला और संजू होकर यारकंद पहुंचने का वर्णन है।

यह डायरी तारीख के क्रम में 26 मई 1874 पर समाप्त होती है, जबकि उनका दल लेह वापस पहुंचता है। पर अन्य वर्णन भी इसमें बहुत हैं। इसी यात्रा में नैन सिंह यारकंद में लगभग पांच माह रहा था। इस डायरी में यात्रा क्षेत्र की प्रकृति, समाज तथा अर्थ व्यवस्था की अनेक पर्तों को उजागर करने का प्रयास हुआ है। नदी, पहाड़, बसासतों, कर प्रणाली, जानवरों तथा फसलों-फलों का वर्णन है। नदियों के जमने तथा मौसम के बदलने का भी। सिंचाई व्यवस्था, विवाह की पद्धति, पर्दा प्रथा, भोजन प्रणाली, प्रशासनिक व्यवस्था, रेशम उत्पादन तथा सोने की खानों की चर्चा है।

अपने जीवन काल में नैन सिंह की एक मात्र प्रकाशित रचना 'अक्षांश दर्पण' है, जो मूलतः तारीख तथा अक्षांश जानने के बारे में है। आगरा की एक लिथो प्रेस से 1871 में मुद्रित इस पुस्तक की पहली बार 300 प्रतियां छपी थी और इसका मूल्य दो पैसा था। इस पुस्तक में सिक्सटैंट प्रयोग करने, ऊंचाई लेने, तारों के झुकाव की पड़ताल करने

तथा अक्षांश जानने की विधि बताई गई थी। हवा, वर्षा तथा सर्दी और गर्मी जानने के बारे में बताया गया था। बैरोमीटर तथा थर्मामीटर के प्रयोग का वर्णन भी था। समुद्र तल से किसी स्थान की ऊंचाई नापने की विधि सउदाहरण बताई गई थी।

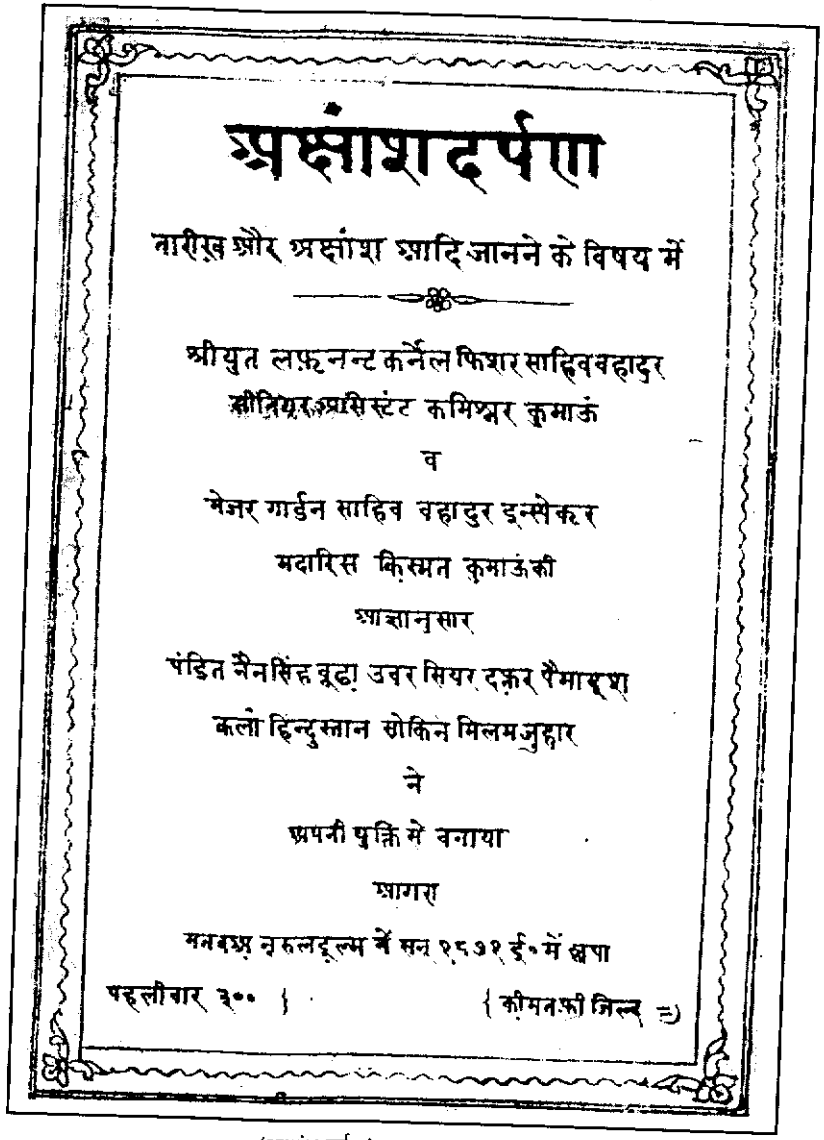

अक्षांशदर्पण

तारीख़ और अक्षांश वग़ैरा जानने के विषय में

श्रीयुत लफ़्टनन्ट कर्नेल फिशर साहिब बहादुर
कमिश्नर कुमाऊं

व

मेजर गार्डन साहिब बहादुर इन्सपेक्टर
मदारिस किस्मत कुमाऊं की
आज्ञानुसार

पंडित नैनसिंह बूढ़ा उत्तर सियर दफ़्तर पैमाइश
कलां हिन्दुस्तान सोकिन मिलम जुहार

ने

अपनी बुद्धि से बनाया

आगरा

मतबअ नूरुलदूल्म में सन १८७१ ई० में छपा

पहलीबार ३०० | क़ीमत की जिल्द =)

'अक्षांश दर्पण' का आवरण पन्ना



नैन सिंह की डायरियां निश्चय ही 1865 से 1875 के बीच की यात्राओं में लिखी गई होंगी। कम से कम प्रारंभिक नोट्स तो इसी दौर के होने चाहिए। इससे पहले यात्राओं में जाने के बावजूद उसने शायद डायरियों को लिखा नहीं होगा। स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ यात्रा के समय वह एक डायरी में नोट्स तो लेता रहा पर विधिवत डायरी उसने नहीं लिखी। ऐसा वह बाद के अभियानों में ही कर सका।

यह भी लगता है 1867 से 1873 के बीच तथा 1877 के बाद नैन सिंह अनेक वर्षों तक अपने नोट्स से अपनी डायरियां विकसित करता रहा। दुर्भाग्य से उसकी कुछ डायरियों के अंश गुम हो गए और उसकी अंतिम अंवेषण यात्रा यानी देहरादून-शिमला-लेह-ल्हासा-तवांग-गुवाहाटी यात्रा की हिंदुस्तानी डायरी अभी तक नहीं मिल सकी है। हां नैन सिंह के कुछ नोट्स भारतीय सर्वेक्षण विभाग में मिलते हैं पर वे नोट्स ही हैं, समग्र डायरियां नहीं। नैन सिंह ने किसी साहित्य रचना की तरह या प्रकाशन के लिए इन्हें नहीं लिखा होगा पर उस दौर में किया गया काम आज एक प्रकार से ऐतिहासिक महत्व का हो गया है। निश्चय ही इन्ही डायरीयों पर उसकी अंग्रेजी रपटें आधारित थीं।

इन डायरियों में उसकी सरलता, संवेदनशीलता के साथ उसके विशिष्ट मानवीय

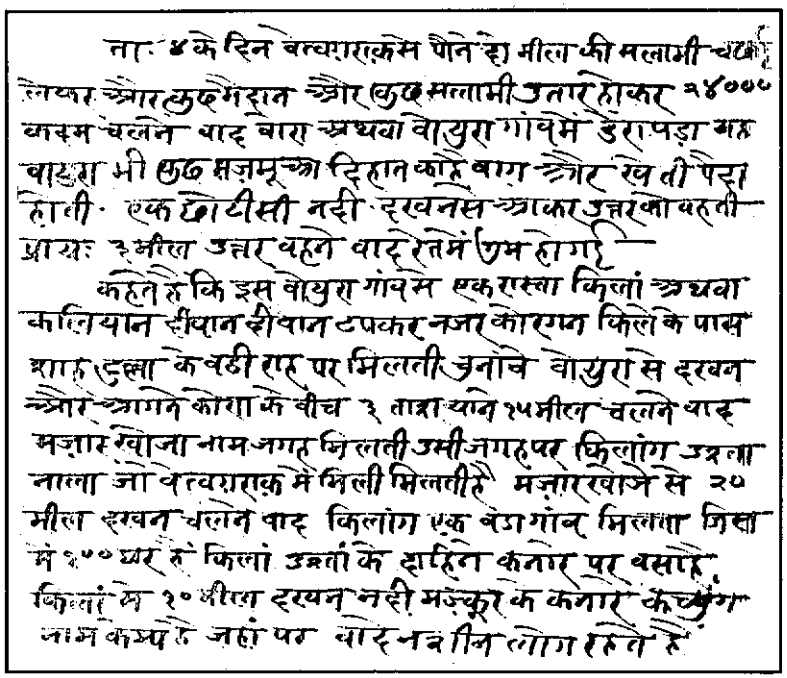

ता० ४ के दिन बत्वाराक़ेम पौने दो मील की मलामी चढ़ाई
लेकर और कुछ मैदान और कुछ मलामी उतार होकर २४००
क़दम चलने बाद बारा अथवा वोयुरा गांव में डेरा पड़ा यह
वोयुरा भी छोटा सज़मूक्रा दिहात कोई बाग़ और खेती पड़ा
होती। एक छोटी सी नदी दखनसे आकर उत्तर को बहती
प्रायः ३ मील उत्तर बहने बाद रेत में लुप्त हो गई।
कहते हैं कि इस वोयुरा गांव से एक रास्ता किलां अथवा
कलियान दीयान दीयान टपकर नज़दीक रंगपा किले के पास
शाह दुल्ला के बड़ी राह पर मिलती उनोंचे वोयुरा से दखन
और आगे कोरा के बीच ३ ताग्रा यानि १५ मील चलने बाद
मज़ार खोजा नाम जगह मिलती उसी जगह पर किलांग उत्तर
नाला जो बत्वाराक़ में मिली मिलती है मज़ार खोजे से २०
मील दखन चलने बाद किलांग एक बड़ा गांव मिलता जिस
में २०० घर हैं किलां उसी के दाहिने कनार पर बसा है
किलां से १० मील दखन नदी मज़्कूर के कनार कचुंग
नाम कस्बे जहां पर बारह तेरह लोग रहते हैं

नैन सिंह की डायरी का एक पन्ना

गुणों को प्रकट होने का मौका मिला। हिन्दी साहित्य की दुनिया में यह भारतेंदु का युग है (1850-85)। भारतेंदु ने कुछ यात्रा वर्णन लिखे थे और कुछ उनके समकालीनों ने भी। पर नैन सिंह ने हिंदी संसार को ऐसे क्षेत्रों से परिचित कराया, जहां जाने की कल्पना करना भी पाठकों के लिए मुश्किल था। आज भी यह इलाका बड़ी सीमा तक वर्जित बना हुआ है।

नैन सिंह अनेक जगह सामाजिक स्थितियों को देखकर उसमें अपनी टिप्पणी जोड़ने से भी नहीं कतराता था। लोगों, स्थानों या कहें कि प्रकृति और मनुष्य की रचनाओं में उसकी लगातार दिलचस्पी दिखाई देती है। वह तुलना करता है और टिप्पणी भी। संख्याओं में उसकी बहुत दिलचस्पी है और वह जब जानवरों या मनुष्यों की गिनती करने लगता है तों 2000 ही नहीं 50,000 तक भी पहुंच जाता है।

नैन सिंह की भाषा में हिंदी, अरबी-फारसी तथा तत्सम प्रधानता दिखाई देती है। वह हिंदी भी है और उर्दू भी। दोनों बहुत सहजता से प्रस्तुत हुई हैं क्योंकि उसे कोई भाषाई पांडित्य तो नहीं दिखाना था। व्याकरण की उसे परवाह नहीं है। यह कहना भी ठीक है कि उसे इसकी तमीज नहीं है। अतः उसकी डायरी में एक ही शब्द कई तरह से प्रयुक्त हुए

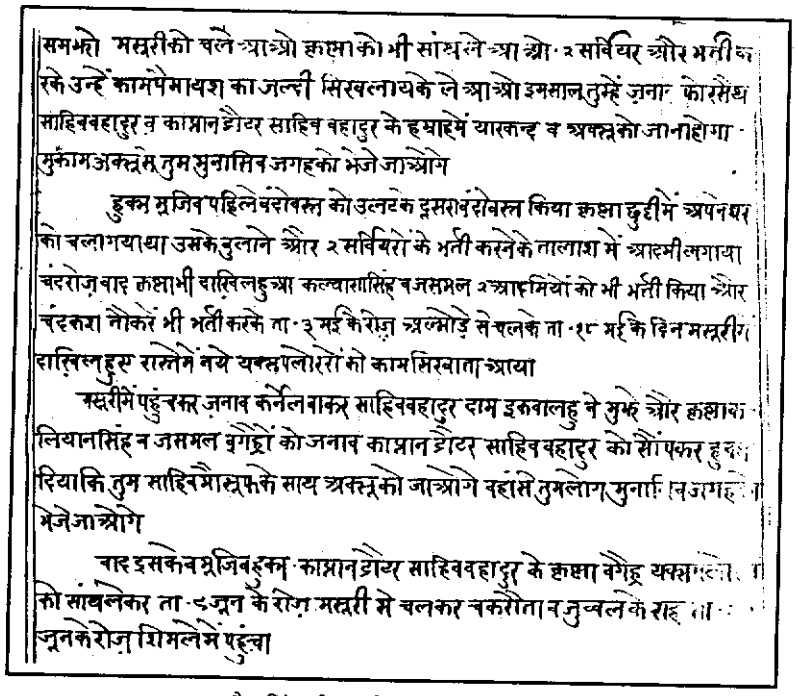

नैन सिंह की डायरी का एक अन्य पन्ना



हैं। पूर्ण विराम या अर्ध विराम का प्रयोग नहीं हुआ है। दूरी कदमों की नाप या मीलों में दी गई है। स्थानीय नाम ज्यादा से ज्यादा देने का प्रयास नैन सिंह ने किया है।

नैन सिंह पूरे समर्पण तथा समझदारी से अपना काम करता रहा। ऐसा अन्य अनेक भारतीय या अंग्रेज सर्वेक्षकों ने भी किया। पर कुछ मामलों में नैन सिंह इनसे भिन्न था और एक मायने में बिल्कुल ही भिन्न। यह पक्ष उसके द्वारा हिंदुस्तानी में लिखी गई डायरियों से जुड़ा था। यह अब तक छिपी ऐसी विरासत है जो हिंदी-उर्दू की दुनिया को गौरव तो प्रदान करती ही है, यह इन भाषाओं में ऐसा यात्रा साहित्य भी सामने लाती है, जो घर-बैठक में नहीं लगातार जान जोखिम में डालकर प्राप्त किए अनुभवों के बाद लिखा गया था।

सन् 1865 से 1885 के बीच लिखा गया यह यात्रा साहित्य या डायरियां हमें उस भाषा के साथ उस दौर के अनेक एशियाई समाजों की दुर्लभ झलक देती हैं। साहित्य के अलावा ये डायरियां इतिहास की स्रोत सामग्री भी हमें प्रदान करती हैं। विशेष रूप से भारतीय हिमालय, नेपाल, तिब्बत तथा मध्य एशिया के इतिहास तथा समाज के कुछ आयामों पर उसकी डायरियों से कुछ नई रोशनी पड़ती है। यात्रा मार्गों, विभिन्न खानों की स्थिति, खान-पान, पहनावे का वर्णन भी मिलता है। यही नहीं नैन सिंह की पहली डायरी से हमें 1857 के संग्राम के एक बागी मुहम्मद शाह का नाम पता चलता है, जिसने डाकुओं से उसको बचाया था। यह अत्यंत रोचक है कि 1857 के लगभग आठ साल बाद भी यह संग्रामी तिब्बत में लगातार गतिशील था और ल्हासा की तरफ बढ़ रहा था।

इतिहास संबंधी अनेक तथ्य उसकी डायरी उजागर करती है। जैसे जोहार और चंद शासकों के संबंध, हर्ष देवी जोशी को जोहारियों द्वारा गिरफ्तार किया जाना, काठमांडू का स्थानीय इतिहास, दलाई लामाओं का विवरण, ठोकज्याजुंग या यादकंद में स्थानीय प्रशासन, धातु खनन तथा कर प्रणाली, तिब्बत के पशुचारक और खेतीहरों का जीवन; तिब्बत की सामाजिक विविधता आदि आदि।

उत्तराखंड के सांस्कृतिक इतिहास और पश्चिमी तिब्बत से उसके संबंधों को लेकर नैन सिंह की डायरी में एक और रोचक तथ्य उभर के आया है। यह है बद्रीनाथ मंदिर तथा छपराङ के जोंपन का सम्बन्ध। नैन सिंह लिखता है कि बद्रीनाथ मंदिर से 100 गज कपड़ा, 5 रुपया नकद, चंदन की एक लकड़ी और सात पोटली मेवा हर साल छपराङ के जोंपन के पास भेजा जाता था और वहां से एक ऊनी पट्टू, चार पोटली चाय और किशमिश बद्रीनाथ मंदिर में आता था, यह शायद बद्रीनाथ और छपराङ के पुराने रिश्ते को उजागर करता था।

इस तरह नैन सिंह को आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक विज्ञान लेखक, यात्रा साहित्यकार या डायरीकार के रूप में देखना आज संभव हो सका है। यदि उसके

द्वारा तैयार किया गया तिब्बती-हिंदी शब्दकोष मिल जाए तो यह उसका एक और ऐतिहासिक योगदान माना जाएगा। उसका अंवेषक ही इन रचनाओं के लिए जिम्मेदार था और ये रचनाएं चाहे उसे हिंदी के प्रारंभिक डायरीकार के रूप में स्थापित कर दें, पर इनकी रचना भौगोलिक अंवेषण में शामिल हुए बिना संभव नहीं थी।

प्रो. उमा भट्ट के शब्दों में "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के एक यायावर अंवेषक की सृजनशीलता तथा भाषिक विकास की परंपरा दोनों ही दृष्टियों से पंडित नैन सिंह के यात्रा साहित्य का महत्व है। रूखे सर्वेक्षण कार्य को अपनी जिज्ञासु दृष्टि के कारण नैन सिंह ने मानवीय संवेदना से युक्त बना दिया था। इन डायरियों में केवल आंकड़े भर नहीं हैं वरन उन स्थानों का प्राकृतिक और मानवीय जीवन साकार हो उठा है।"

# 9

# एक मूल्यांकन

## शैली, संस्कार, सम्मान तथा स्मृति

नैन सिंह रावत ने कुल कितनी लंबी यात्राएं की, इसका अब संपूर्ण और सही विवरण उपलब्ध कराया जा सकता है। पहले एक अनुमान के अनुसार यह माना जाता था कि उसने लगभग 4-5 हजार मील की यात्रा सर्वे विभाग में जाने से पूर्व और लगभग 11 हजार मील की यात्रा सर्वे विभाग में जाने के बाद की। लगभग 100 से अधिक स्थानों, नदियों, झीलों, रेगिस्तानों, खानों और मठों आदि का पता लगाया था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि उसने बहुत जिम्मेदारी तथा समर्पित भाव से पारंपरिक सर्वे कार्य करने के साथ-साथ प्रकृति, समाज-संस्कृति, अर्थ व्यवस्था, व्यापार, कर प्रणाली तथा राजनैतिक व्यवस्था पर भी नजर रखी।

तिब्बत में उससे पहले और पश्चात् इस तरह का कार्य कोई यूरोपीय, बर्तानवी या भारतीय अंवेषक नहीं कर सका। दरअसल नैन सिंह तथा कुछ अन्य पंडितों को ही वह ऐतिहासिक तथा निर्णायक काल खंड मिल सका, जो हिमालय, तिब्बत तथा मध्य एशिया में अंवेषण प्रारंभ होने तथा ल्हासा में प्रत्यक्ष औपनिवेशिक हमले के बीच पड़ता था। इस कालखंड, जो सन् 1857 से 1904 के बीच फैला था, से आगे या पीछे विभिन्न पंडितों अथवा नैन सिंह रावत की किस तरह की और कितनी भूमिका होती यह अलग से विश्लेषण तथा अनुमान का विषय है!

किशन सिंह, कलियान सिंह, पर्सी साइक, स्वेन हैडिन से लेकर यंगहजबैंड और राहुल सांकृत्यायन तक कितनी ही प्रतिभाएं उससे प्रेरणा पाती रही। एटकिंसन ने उसकी प्रशंसा की तो प्रणवानंद ने उसकी चर्चा की। हालांकि नैन सिंह को राय बहादुर बनने का मौका नहीं मिला, जैसा प्रणवानंद लिखते हैं, बल्कि उसे सी.आइ.ई. (कंपेनियन ऑव इंडियन इंपायर) का तमगा मिला था। राय बहादुरी का तमगा किशन सिंह को मिला था। स्लागेंटवाइट भाइयों ने सन् 1857 में रावलपिंडी से नैन सिंह के चले जाने का वास्तविक कारण न जानकर भी उसकी प्रशंसा की और लिखा था कि :

**''नैन सिंह एक प्रतिभाशाली नौजवान था, जिसने हमारे साथ अनेक उपकरणों को इस्तेमाल करना, नक्शे बनाना तथा कुछ अंग्रेजी लिखना सीखा।''**

क्योंकि दिसंबर 1856 में स्लागेंटवाइट भाइयों को नैन सिंह के एक रात को रावलपिंडी से भागने का असली कारण कभी पता नहीं चल सका तो उन्होंने लिखा कि :

**''आम पहाड़ियों की तरह वह भी अपने पहाड़ों में ही रहना चाहता था और वह अप्रत्याशित ही हमें रावलपिंडी में छोड़कर चला गया था परंतु वह मांफी का एक पत्र भी हमारे लिए लिख गया था।''**

क्लीमैंट्स मारखम ने नैन सिंह को हार्दिकता से याद किया और उसके उन गुणों-साहस, धैर्य, दृढ़ता, समझदारी तथा कूटनीतिक निपुणता आदि—की सराहना की। इन्हीं गुणों के कारण उसे भौगोलिक अंवेषकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यही नहीं मारखम ने नैन सिंह के सर्वे निरीक्षण (यानी भौगोलिक तथ्यों को जमा करना) की विधि को 'शुद्धता' तथा 'सुस्पष्टता' से लैस बताया था। उसने यहां तक लिखा था कि :

**''इतनी असाधारण सेवा किसी व्यक्ति ने भूगोल विषय की नहीं की होगी तथा भारत के इस महानतम् घुमक्कड़ वैज्ञानिक को बिना उसको उचित सम्मान दिए सेवा से अवकाश नहीं दिया जाना चाहिए''।**

किस तरह 'पंडित' शब्द विद्वान, शिक्षक, हिंदू कानूनी विशेषज्ञ के अलावा देशी सर्वेयरों तथा अंवेषकों के लिए प्रयुक्त होने लगा था, इस तथ्य को जब हेनरी यूल तथा ए.सी. बरनैल ने 'हाबसन जाबसन डिक्सनरी' में उजागर किया तो उन्हें अनेक बार नैन सिंह का जिक्र करना पड़ा था।

स्वेन हैडिन ने उसे 'महान', 'अतुलनीय', 'असाधारण' तथा 'अमर पंडित' कहा था। नैन सिंह के पद चिन्हों पर तिब्बत में अनेक स्थानों पर चलते हुए स्वेन हैडिन देखता था कि वहां के बारे में पंडित ने क्या कहा है और उस स्थान को नक्शे पर कहां दिखाया है। नैन सिंह की यात्रा के 27 साल बाद सन् 1899-1900 में अपनी एक यात्रा में जब स्वेन हैडिन उस झील पर पहुंचा, जो मलवा भर जाने के कारण अब तक बहुत सिमट गई थी, और जिसका नैन सिंह ने सुना हुआ वर्णन लिखा था, तो वह नैन सिंह की सन् 1873 की यात्रा को 'यादगार' और 'महत्वपूर्ण' बताना नहीं भूला। हैडिन अनेक स्थानों पर नैन सिंह की आलोचना करने से नहीं कतराता था पर तिब्बत में किए गए नैन सिंह के 'लंबे तथा महत्वपूर्ण कार्य' की सराहना करना भी नहीं भूलता था। कुछ स्थानों में आए पारिस्थितिक परिवर्तनों को समझने के लिए भी नैन सिंह तथा स्वेन हैडिन के अंवेषण कार्य को देखना उचित होगा और आशा है कि भविष्य में इस दिशा में कार्य होगा।

यद्यपि स्वेन हैडिन की टिप्पणियों में सदा इस तरह की सदाशयता नहीं मिलती थी



कि वह संवेदना के साथ नैन सिंह तथा अन्य पंडितों के काम को देख पाता। वह पंडितों की साधनहीनता तथा छिप कर काम करने की विवश शैली का अपनी साधन संपन्नता तथा मुक्त होकर काम करने से कभी तुलना नहीं कर सका। तिब्बत की कठिनाइयां हैडिन ने भी झेली थी लेकिन जिन परिस्थितियों में नैन सिंह तथा अन्य पंडितों ने काम किया उसके मुकाबले हैडिन को बहुत अधिक सुविधाएं प्राप्त थीं। कुछ आग्रहों के बावजूद स्वेन हैडिन की पंडितों के प्रति प्रशंसा के भाव प्रकट हो ही जाते थे। उसने लिखा था कि :

**''पंडित लोग 'अद्भुत' थे। अंग्रेजों ने उनकी प्रतिभा तथा कर्तव्यनिष्ठा का चतुराई से इस्तेमाल किया। अनेक मामलों में शिष्य गुरू से आगे निकल गए और उन्होंने सही परीक्षण किए।''**

नैन सिंह की प्रतिभा और खोज कार्यों का लाभ उठाने वाले चतुर औपनिवेशिक शासक अपनी सत्ता तथा साम्राज्यवादी लक्ष्यों के लिए उपयोगी प्रतिभाओं का सम्मान करना कभी नहीं भूले। नैन सिंह को भी पर्याप्त तो नहीं पर कुछ न कुछ सम्मान दिया गया था। रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी में पंडितों को लेकर अक्सर उनकी प्रशंसा के साथ यह चर्चा होती थी कि यदि वे अंग्रेज होते तो उनको निश्चय ही बड़ा आर्थिक तथा सामाजिक सम्मान मिलता। जब नैन सिंह ने अपनी खोई हुई घड़ी की अनुकृति देने का निवेदन रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी से किया तो यह चिंता किसी को नहीं थी कि घड़ी की अनुकृति नैन सिंह को मिल जाए। वहां ज्यादा बड़ी यह बहस चली हुई थी कि नैन सिंह तथा ट्रॉटर में से कौन ज्यादा प्रशंसा तथा सम्मान का हकदार था? यह सच था कि इस कार्य में दोनों परस्पर निर्भर थे लेकिन प्रश्न यह था कि पहले मान्यता किसको मिलती है।

इस बहस में बर्तानवी प्रभावशाली व्यक्तियों के जो दो धड़े बने हुए थे, उनमें एक ओर रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के पूर्व अध्यक्ष सर हेनरी रॉलिंसन थे, तो दूसरी ओर कर्नल हेनरी यूल थे, जिनकी एक विद्वान तथा अंवेषक के रूप में बड़ी हैसियत थी। रॉलिंसन ने यह प्रस्ताव रखा कि सन् 1876 का 'पेट्रंस मैडल' पूर्वी तुर्किस्तान में सर डॉगलस फॉरसेथ के नेतृत्व में किए गए सर्वे अभियान के संचालन के लिए कैप्टन एच. ट्रॉटर को मिलना चाहिए।

इस मत का हेनरी यूल द्वारा स्पष्ट तथा सतर्क विरोध किया गया था। हेनरी यूल ने रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के सर रदरफोर्ड अल्कौक को लिखे पत्र में नैन सिंह को 'पंडितों का पंडित' कहते हुए उसकी तुलना दक्षिण अफ्रीका में अंवेषण करने वाले डेविड लिविंगस्टन तथा अफ्रीका में जंजीवार से पूर्वी विषुवत्रेखीय क्षेत्र के आर पार मिस्र तक का अंवेषण करने वाले जे. ए. ग्रांट से की थी। बर्तानवी अंवेषकों में उसे सिर्फ ये दो ही नैन सिंह के साथ तुलना के लायक लगे थे।

## रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के पुरस्कार

यह जानना भी उचित होगा कि रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की सन् 1830 में स्थापना के दो साल बाद सन् 1832 से इस संस्था द्वारा भौगोलिक अंवेषण के लिए पुरस्कार दिए जाने शुरू हुए थे। दो मुख्य मैडल सोसायटी के द्वारा दिए जाते थे—फाउंडर्स मैडल तथा पेट्रंस या विक्टोरिया मैडल। संस्थाओं तथा स्कूलों को भी भौगोलिक ज्ञान के विकास में योगदान के लिए पुरस्कृत किया जाता था। दुनिया के विभिन्न अनजाने या कम जाने गए क्षेत्रों के बारे में नई भौगोलिक जानकारी देने के लिए दर्जनों लोगों को यह मैडल दिए गए थे। हिमालय, तिब्बत तथा मध्य एशिया में अंवेषण हेतु अनेक अंवेषकों को फाउंडर्स मैडल दिए गए थे। इनमें कुर्दिस्तान में अंवेषण हेतु सन् 1840 में कर्नल एच. सी. रॉलिंसन को; सिंधु तथा आक्सस नदी के जलागमों के अंवेषण हेतु सन् 1841 में लैफ्टिनैंट जॉन वुड को; पश्चिमोत्तर भारत में जी.टी.एस. अभियान हेतु सन् 1865 में कैप्टन टी.जी. मांटगोमरी को; पश्चिमी हिमालय तथा तिब्बत में अंवेषण हेतु सन् 1866 में थॉमस थामसन को; पूर्वी तुर्किस्तान में अंवेषण हेतु सन् 1870 में जॉर्ज हेवर्ड को; हिमालय के तीन विशिष्ट अभियानों के लिए सन् 1872 में हेनरी यूल को तथा मंगोलिया और यैलो रीवर संबंधी अंवेषण के लिए सन् 1873 में ने इलियास आदि को ये मैडल दिए गए थे।

इसी तरह के अंवेषण कार्य हेतु पेट्रंस या विक्टोरिया मैडल भी दिए गए थे। इनमें पश्चिमी तिब्बत में अंवेषण हेतु सन् 1852 में कैप्टन हेनरी स्ट्रैची को; जी.टी.एस. सर्वे में योगदान हेतु सन् 1857 में एंड्रयू स्काट वॉ को तथा तिब्बत की यात्रा, ल्हासा और ब्रह्मपुत्र के विशाल क्षेत्र में दो अन्य यात्राओं हेतु सन् 1877 में नैन सिंह को पुरस्कृत किया गया था। इसके अलावा अफ्रीका में अंवेषण हेतु डेविड लिविंगस्टन (सन् 1855) को; जंजीवार तथा अफ्रीका में अंवेषण हेतु जे.ए. ग्रांट को (सन् 1864) तथा अफ्रीका के अंवेषण में ग्रांट तथा स्पीक की मदद करने के लिए एस. डब्ल्यु. बेकर (सन् 1865) को पेट्रंस मैडल और मध्य अफ्रीका तथा विक्टोरिया झील की खोज में योगदान के लिए कैप्टन जौन हानिंग स्पीक (सन् 1861) को फाउंडर्स मैडल दिया गया था।

यूल ने लिखा था कि :

**"रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के किसी न किसी सोने के मैडल से कम में नैन सिंह की प्रतिभा का सम्मान नहीं हो सकता है। उसकी तिब्बत में की गई दो यात्राओं ने हमारे सही भौगोलिक ज्ञान में बहुत कुछ नया जोड़ा है। ऐसा कार्य सिर्फ लिविंगस्टन तथा ग्रान्ट ने ही किया था। नैन सिंह की जैसी एक भी यात्रा यदि किसी यूरोपीय ने की होती तो उसे यह पुरस्कार मिल चुका होता।"**

यूल अवकाश में इंग्लैंड आए हुए जनरल वाकर के संपर्क में भी था। वाकर ने इस संबंध में अपनी सहमति देते हुए लिखा था कि मैं आभारी रहूंगा यदि आप नैन सिंह को



उसके द्वारा भूगोल में दिए गए योगदान के लिए रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी का गोल्ड मैडल या अन्य उपयुक्त सम्मान दिला सकें। इस पत्र को भी यूल ने रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी को भेज दिया था। जब सोसायटी के अध्यक्ष ने नैन सिंह की अनुपस्थिति में उसे पुरस्कृत करने की घोषणा की तो रॉलिंसन ने भी नैन सिंह की प्रशंसा की और कहा कि नैन सिंह निष्ठावान, साहसी तथा सहनशील व्यक्ति था, जिसने सदा अंवेषण अभियानों हेतु अपनी जिंदगी दांव पर लगाई थी।

रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी का पुरस्कार समारोह 18 मई 1877 को लंदन में आयोजित हुआ। नैन सिंह की ओर से कर्नल हेनरी यूल को मैडल लेने के लिए बुलाया गया। यूल को संबोधित करते हुए सोसायटी के अध्यक्ष ने कहा कि :

**"इस देश में नैन सिंह की अनुपस्थिति के कारण मैं इस विक्टोरिया या पेट्रन्स मैडल को स्वयं व्यक्तिगत रूप से नैन सिंह को दे पाने के सौभाग्य से वंचित हुआ हूं। यह मैडल नैन सिंह को तिब्बत तथा ब्रह्मपुत्र की उपरी घाटी की महान यात्राओं तथा सर्वेक्षण के लिए दिया जा रहा है, जिसमें उसने ल्हासा की भौगोलिक स्थिति भी निश्चित की थी। मैं स्पष्ट रूप से भारतीय वायसराय के लिए यह पत्र लिखूंगा कि वह इस सर्वोच्च पुरस्कार को भव्य ढंग से पंडित को प्रदान करने का प्रबन्ध करें। साथ ही मैं नैन सिंह की निष्ठा, साहस तथा धैर्य की प्रशंसा करते हुए कहना चाहता हूं कि उसने एशिया के उस हिस्से का भौगोलिक ज्ञान हमें दिया जिसे कोई यूरोपीय व्यक्ति नहीं खोज सका। निश्चय ही नैन सिंह भूगोल का अध्ययन करने वाला स्वचालित यंत्र नहीं था। वह एशिया का निवासी, तिब्बती भाषा का जानकार तथा अपनी जान को जोखिम में डालकर इन अभियानों में जाने वाला बना। इन अभियानों में शामिल नैन सिंह से यह कहने का मैं आपसे निवेदन करता हूं कि इस सम्मान से उन्हें संतोष होगा।"**

इसके जबाव में हेनरी यूल ने कहा कि :

**"मैं व्यक्तिगत रूप से नैन सिंह को न जानते हुए भी उसके काम से उसे जानता हूं। वह वास्तव में स्थलाकृति का अध्ययन करने वाला स्वचालित यंत्र या सिर्फ मामूली तौर पर शिक्षित तमाम देशी कर्मचारियों में से एक न था। बल्कि उसके सर्वेक्षण तथा अंवेषण कार्य ने किसी भी और जीवित व्यक्ति के मुकाबले में एशिया के नक्शे को महत्वपूर्ण भौगोलिक ज्ञान से परिपूर्ण किया।"**

सबसे रोचक बात यह थी कि इस संपूर्ण प्रक्रिया में नैन सिंह सिर्फ अपने काम के रूप में उपस्थित था। वह भौतिक रूप से अपनी यात्राओं के अलावा सर्वत्र अनुपस्थित था। पहली बार जब उसके काम से खुश स्लागेंटवाइट भाई उसे लंदन ले जाना चाहते थे

तो वह निर्णय न ले पाने की अपनी कमजोरी का शिकार हुआ और मानी सिंह के दबाव में वह अभियान को बीच में ही छोड़कर भागने को विवश हुआ। दूसरी बार उसका नाम और यश तो इंग्लैंड पहुंच गया था पर उसे इसकी जानकारी तक नहीं थी।

अधिकारिक रूप से उसे 'पेट्रंस' या 'विक्टोरिया मैडल' प्राप्त करने हेतु इंग्लैंड बुलाए जाने का भी संदर्भ नहीं मिलता है। अधिकांश गौरांग अंवेषकों तथा सर्वेक्षकों को ही ये मैडल मिलते रहे थे और वे ऐसे मौकों पर रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के सभागार में अपरिहार्य रूप से उपस्थित होते थे और मंच पर जाकर पुरस्कार लेने का दुर्लभ सौभाग्य पाते थे।

यह पता किए जाने की जरूरत है कि क्या हेनरी यूल दिल से चाहते थे कि नैन सिंह अपने उन्हीं हाथों से यह मैडल ले, जो अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में भी सर्वेक्षण के काम में सक्रिय बने रहे थे ? क्या हेनरी यूल ने इस तरह का प्रयास किया कि नैन सिंह इस मौके पर वहां लंदन आ सके? या क्या रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी को यह प्रयास नहीं करना चाहिए था कि नैन सिंह उस समारोह में उस शरीर के साथ उपस्थित हो जिसने एशिया की पीठ को वास्तव में नापा था?

इससे पहले रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी ने 24 मई 1868 को नैन सिंह को सोने की एक घड़ी उपहार में दी थी। यह घड़ी, जैसा कि बताया जा चुका है, गुम हो गई थी। नैन सिंह के अनेक आग्रहों के बावजूद इसकी अनुकृति उसे कभी नहीं दी जा सकी। मांटगोमरी ने नैन सिंह की सदैव अंतरंग प्रशंसा की थी। पर नैन सिंह को पुनः दूसरी घड़ी दिलाने या उसे 'पेट्रंस मैडल' लेने हेतु इंग्लैंड बुलाने के लिए उसके द्वारा किंए गए किसी प्रयास का संदर्भ नहीं मिलता है। नैन सिंह के किसी भी प्रशंसक से नैन सिंह की समारोह में उपस्थिति की सद इच्छा की अपेक्षा करना स्वाभाविक है।

सन् 1877 में विक्टोरिया को भारत की शासिका घोषित किया गया था। पैंशन के साथ 1 जनवरी 1877 को नैन सिंह को अल्मोड़ा शहर में सी. आई. ई. (कंपेनियन ऑफ द न्यू आर्डर आव द इंडियन इंपायर) की उपाधि और मुरादाबाद जिले में एक हजार रुपए सालाना आय की जागीर दी गई। रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी, लंदन ने उसे 'पेट्रंस गोल्ड मैडल' प्रदान किया। पेरिस की ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी ने भी उसे सोने की घड़ी प्रदान की थी। रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी लंदन के इस मैडल तथा पेरिस ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की घड़ी को नैन सिंह को प्रदान करने के लिए भारत लाया गया।

1 जनवरी 1878 को कलकत्ता के गवर्नमैंट हाउस में एक सादे समारोह में वायसराय लार्ड लिटन द्वारा यह मैडल तथा घड़ी नैन सिंह को प्रदान की गई और उसी दिन विशेष सरकारी गजट द्वारा उसके 'कंपेनियन आव द आर्डर आव द इंडियन इंपायर' बनाए जाने की अधिसूचना जारी की गई थी। इतने बड़े काम कर चुका नैन



सिंह औपनिवेशिक सरकार से अपने बच्चों (बेटे तथा भतीजे) की शिक्षा के लिए कुछ मदद चाहता था। इसी आशा में तब नैन सिंह ने वायसराय लार्ड लिटन को एक आवेदन पत्र दिया, जिसमें उसने अपने दो बच्चों—एक बेटा तथा एक भतीता—को इंग्लैंड में पढ़ाई करने हेतु आर्थिक सहयोग देने का आग्रह किया था। शायद उसके मन में स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ इंग्लैंड न जा पाने की ग्रंथि थी जिससे वह अपने बेटों को वहां भेजकर मुक्त होना चाहता था। लेकिन वायसराय से उसे ऐसी कोई मदद नहीं मिल सकी। इस संबंध में हुए पत्राचार को ढूढ़ने का प्रयास किया जाना चाहिए।

फिर भी नैन सिंह को नकारना और विस्मृत करना संभव नहीं था। कदाचित् वह अकेला भारतीय सर्वेक्षक था, जिसका नाम लंदन स्थित रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के प्रांगण पट में खुदा है। जॉर्ज एवरेस्ट के बाद वह अकेला सर्वेक्षक था जिसके नाम पर एक पर्वतमाला का नाम 'नैन सिंह रैंज' रखा गया था। बल्कि सच तो यह है कि 'एवरेस्ट' एक शिखर था और 'नैन सिंह रैंज' एक विशाल पर्वतमाला। एक शताब्दी से कुछ कम समय तक उस पर्वतमाला का 'नैन सिंह रैंज' नाम प्रचलित रहा।

अपनी अंतिम महान यात्रा के समय ठोक डोरक्पा से आगे चांगथांग के आरपार दक्षिण में स्थित जिस पर्वतमाला के समानांतर नैन सिंह चल रहा था उसी को बाद में 'नैन सिंह रैंज' नाम दिया गया था। इसका शिखर अलिंग कांगरी कहलाता था। उन्नीसवीं सदी में चार बार अत्यंत वर्जित तिब्बत में यात्रा तथा अंवेषण करने का तथा दो बार बेगानों तथा विदेशियों के लिए पूरी तरह बंद ल्हासा में पहुंचने का दुर्लभ सौभाग्य शायद सिर्फ नैन सिंह को ही मिला था। 100 दिन ल्हासा में, 37 दिन किरोंग में, 54 दिन सिगात्से में, पांच महीने तक यारकंद में तथा 55 दिन तक तवांग में रहने का भी उसने दुर्लभ रिकार्ड अर्जित किया था।

अनेक वर्षों तक नैन सिंह नए सर्वेयरों को प्रशिक्षण देता रहा। धीरे-धीरे रोमांचक तथा चुनौती भरे सर्वेक्षणों का युग समाप्त होने लगा। तिब्बत भी सन् 1904 में ल्हासा में बर्तानवी हमले के बाद न वर्जित रहा और न ही वहां सामान्य अंवेषण से बाहर कुछ रह गया था। जो था भी उस ओर अब औपनिवेशिक सरकार की गंभीर नजर नहीं थी। सर्वेक्षणों का स्थान धीरे धीरे पर्वतारोहण अभियान लेने लगे थे। सन् 1883 में नैन सिंह ने अपनी आत्मकथा, जो उसकी पहली डायरी थी, लिखी और विभिन्न डायरियां संशोधित कीं, जो आज पता नहीं कहां-कहां बिखरी पड़ी हैं? कुछ तो शायद नष्ट हो गईं और कुछ को जिम्मेदार लोगों तथा सौभाग्य ने बचा लिया था। जो बचा और जिम्मेदार लोगों तक पहुंचा वह हिंदी की दुनिया के सामने आता रहा है। जो हम खोज सके या हमारे हाथों तक जो पहुंचा उसे हाल ही में 'एशिया की पीठ पर' में पूरा का पूरा प्रकाशित कर दिया गया है।

## हिंदी डायरियों का नकार

दुर्भाग्य से हिंदी डायरियों के प्रति अंग्रेज सर्वेयर-अंवेषक, रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी और भारतीय सर्वेक्षण विभाग कभी उत्साहित नहीं रहे। बल्कि भौगोलिक अंवेषण के अंग्रेजी इतिहासकार भी नैन सिंह की पूरी प्रतिभा का कभी पता ही नहीं लगा सके। हिंदी की दुनिया से नैन सिंह का परिचय लगभग एक सदी बाद तब हो सका, जब आर.एस. टोलिया, राम सिंह तथा उमा भट्ट ने उसकी डायरियों पर लिखा, उन्हें प्रकाशित किया या 'पहाड़' के अंकों में उसकी डायरियों के कतिपय अंश छपते रहे।

मेरा मानना है कि तत्कालीन कुमाऊं में नैन सिंह अथवा अन्य पंडितों की अधिक सामाजिक चर्चा इसलिए नहीं हो पाई थी क्योंकि उनका अंवेषण का काम उस दौर में ज्यादातर गुप्त ही रहा। संचार साधन तब सीमित थे और अंवेषण की खबरें सिर्फ यूरोप में सनसनी पैदा करती थी। नैन सिंह की चर्चा या तो सर्वे ऑव इंडिया में होती थी या रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी में। इन दोनों जगहों पर जानकार लोग तो होते थे पर यहां से छनकर कोई जानकारी भारतीय समाज तक नहीं जा पाती थी। फिर भी बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक में जब तत्कालीन कुमाऊं की प्रतिभाओं का कलेंडर प्रकाशित हुआ तो उसमें नैन सिंह तथा किशन सिंह दोनों ने स्थान पाया था। कुमाऊं के 24 महत्वपूर्ण व्यक्तियों में ये दोनों भी थे।

सन् 1937 में 'शक्ति' साप्ताहिक पत्र के पूर्व संपादक मथुरा दत्त त्रिवेदी ने 'कुमाऊं कुमुद' (अल्मोड़ा) के 8 अप्रैल 1937 के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख 'हमारा कुमाऊं व अल्मोड़ा' में तमाम स्थानीय प्रतिभाओं की चर्चा करते हुए लिखा था कि 'तब के लोग कितने साहसी थे यह नैन सिंह की डायरी (सर्वे विभाग ने इसका अंग्रेजी रूपांतर किया है) से पता चलेगा'। इसी साल प्रकाशित अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कुमाऊं का इतिहास' में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी तथा संपादक-पत्रकार बद्रीदत्त पांडे ने संदर्भ सूची में अप्रकाशित सामग्री के अंतर्गत 'श्री नैन सिंह सी. आई. ई. की आत्म जीवनी (जोहार व तिब्बत बाबत)' का उल्लेख किया है। इसका यह अर्थ था कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में स्थानीय प्रबुद्ध वर्ग नैन सिंह के कार्यों से सुपरिचित ही नहीं था, उसके प्रकाशित तथा अप्रकाशित लेखन का इस्तेमाल संदर्भ के रूप में करने लगा था।

पता नहीं किन कारणों से सन् 1882 में एक बार लंदन में यह झूठी खबर प्रचारित हुई कि नैन सिंह की हैजे की बीमारी से मुरादाबाद में मृत्यु हो गई है। यह हैजा उसे इलाहाबाद में कुंभ के मेले में संक्रमित होना बताया गया था। इस बाबत वहां 'द टाइम्स' लंदन के 15 मार्च 1882 के अंक में समाचार भी छपे थे। एडमंड स्मिथ ने तो नैन सिंह पर एक लंबी लगभग ढाइ पेज की पर अत्यंत हार्दिक श्रद्धांजलि भी रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की 1882 की प्रोसीडिंग्स में प्रकाशित की थी। यह हमारे लिए



आज भी आश्चर्यजनक है कि इसी अंक में सुप्रसिद्ध चार्ल्स डार्विन पर मात्र आधे पृष्ठ की श्रद्धांजलि टिप्पणी प्रकाशित हुई थी।

जनरल वाकर ने नैन सिंह की मृत्यु की तिथि 1 अक्टूबर 1881 से 30 सितंबर 1882 के बीच संभावित की थी। यह अनुमान भी आश्चर्य में डालने वाला था कि 1883 में भी जनरल वाकर यह पता नहीं करवा सका कि नैन सिंह की मृत्यु हुई है कि नहीं अथवा कब हुई थी? हौपकिर्क ने नैन सिंह की मृत्यु जनवरी 1882 बताई है। कुछ लोग उसकी मृत्यु का साल सन् 1892 बताते हैं तो कुछ सन् 1895, जब वह सरकार द्वारा प्रदान की गई अपनी इस्टेट को देखने मुरादाबाद गया था। वहां उसका दिल का दौरा पड़ने से देहांत हुआ था। बुर्राड ने नैन सिंह के जन्म का वर्ष 1835 लिखा, जो कि गलत था। नैन सिंह की आत्मकथात्मक पहली डायरी में स्पष्ट रूप से उसके जन्म का दिन और साल बताया गया था, जो कि 21 अक्टूबर 1830 था।

यह आश्चर्यजनक है कि औपनिवेशिक सरकार या बर्तानवी साम्राज्यवाद, जिसकी निगाह हर छोटी बड़ी चीज पर लगी रहती थी, या अधिक जिम्मेदार समझी जाने वाली रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी, लंदन, जो नैन सिंह की प्रशंसक थी, क्यों उसकी मृत्यु की असली तिथि जानने का जतन नहीं कर सकी ! 1895 में जब वास्तव में उसकी मृत्यु हुई तो कहीं इसकी चर्चा नहीं हुई। यह बताया जाना उचित होगा कि नैन सिंह की सही जन्म तिथि हमें सिर्फ उसके द्वारा छोड़े गए विवरण के कारण उपलब्ध है पर औपनिवेशिक सत्ता, सर्वे ऑफ इंडिया तथा रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी और उसके तमाम सम्मानित सदस्य और भूगोल-इतिहासविदों के बावजूद हमें उसकी निश्चित मृत्यु तिथि ज्ञात नहीं हो सकी है।

औपनिवेशिक शासन की यह लापरवाही एक और मामले में भी दिखाई देती है। सन् 1877 में नैन सिंह को दिए गए गोल्ड मैडल के बारे में रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की सन् 1916 की इयर बुक में स्वर्ण घड़ी विजेता के रूप में नैन सिंह का नाम न देकर मांटगोमरी द्वारा लगाया गया सिर्फ 'पंडित' संबोधन ही लिखा गया था। इसी तरह रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की वैब साइट में नैन सिंह की यात्रा के नक्शे तथा मणिचक्र के साथ नैन सिंह की फोटो न देकर शरद चंद्र दास की दी गयी है।

यही नहीं नैन सिंह का मात्र एक फोटो ही मिलता है। किशन सिंह के तो एक से अधिक फोटो मिल जाते हैं पर मानी सिंह, कलियान सिंह, दोलपा पांगती तथा अन्य अंवेषकों के कोई भी फोटो या अन्य विवरण या जन्म-मृत्यु तिथियां नहीं मिलती है। अभी इन जानकारियों को प्राप्त करने की जरूरत बनी हुई है। इससे पंडितों की बर्तानवी साम्राज्य हेतु उपयोगिता के आगे उन्हें 'प्रतिभाशाली आदमी', 'भारतीय प्रतिभा' या 'हिमालयी समुदायों के प्रतिनिधि' के रूप में देखे जाने के प्रयास नहीं हुए हैं।

## नैन सिंह के वंशज

यह दुखद था कि नैन सिंह के स्वयं अपने परिवार में कोई उसकी परंपरा का वाहक बनने का मौका नहीं पा सका। उसके बेटे बाला सिंह, नाती त्रिलोक सिंह या त्रिलोक के बेटे मोहन सिंह को पद या प्रतिष्ठा प्राप्त करने का कोई मौका नहीं मिल सका। वे औपनिवेशिक सरकार द्वारा नैन सिंह को रुहेलखंड में दी गई भूमि को भी अपने अधिकार में नहीं बनाए रख सके। इस भूमि के उत्पादों से साल में 1000 रुपया तक की आय होती थी।

हां नैन सिंह के बेटे बाला सिंह बागेश्वर से रामनगर के बीच के जोहारियों के व्यापारिक मार्ग के यात्रा पड़ावों की सुव्यवस्था करवाने में सफल रहे। जब बैकेट के बंदोबस्त के आधार पर मल्ला जोहार में पशुकर लगाया गया तो नैन सिंह के नाती त्रिलोक सिंह ने शौका समुदाय के हित में पहल की थी। सन् 1902 में इस हेतु पंडित किशन सिंह के नेतृत्व में बंदोबस्त अधिकारी (सैटलमैंट ऑफीसर) को आवेदन पत्र दिया गया था। पर तब समाधान नहीं निकला। त्रिलोक सिंह ने सन् 1922 से 1937 तक लगातार प्रयास किया और अंत में पहली कांग्रेसी सरकार द्वारा यह कर उठा लिया गया। इस तरह लंबे प्रयास के बाद शौका समुदाय की बकरियों पर विभिन्न मौकों पर लिए जाने वाले कर माफ हुए।

नैन सिंह के पोते का पोता कुंदन सिंह रावत एम.ए., बी.एड. तक शिक्षा प्राप्त कर तथा आरक्षण की सुविधा का हकदार होकर भी अनेक सालों तक बेरोजगार रहा और अपने गांव मदकोट में किताब-कापियों की दुकान खोल कर गुजारा करता रहा था। फिर उसे अध्यापक की नौकरी भी मिली। सन् 2003 में असमय ही कुंदन सिंह रावत की मृत्यु हो गयी। कुंदन का एक पुत्र वीरेंद्र स्थानीय प्राइमरी पाठशाला में अध्यापक है। तीन पुत्र अभी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। कुंदन की पत्नी मदकोट में अपने बेटों तथा बहू के साथ रहती है।

नैन सिंह के भाईयों पर भी एक नजर डालनी उचित होगी। नैन सिंह के पिता अमर सिंह यानी लाटा बूढ़ा की तीसरी पत्नी जसुली से उत्पन्न सबसे बड़ा बेटा समजांग बोना में रहने लगा था। आज उसके वंशज बोना वाले रावत कहलाते हैं। नैन सिंह ने अपने जीवन के अंतिम सालों में स्थाई रूप से मदकोट में रहना शुरू किया था। आज उसके वंशज वहीं रहते हैं। नैन सिंह के छोटे भाई मांगा ने विवाह नहीं किया। वह कई बार जोगी बन गया था और उसके जीवन के अंतिम अनेक सालों का कोई विवरण नहीं मिल सका है। नैन सिंह ने अपनी एक बहिन का जिक्र तो किया है। उसका नाम नहीं मिलता है पर यह विवरण प्राप्त होता है कि उसका विवाह जंगपांगियों में हुआ था।

लाटा की चौथी पत्नी पदिमा से जन्मे पहले बेटे गजराज के वंशज थल के पास तेजम में रहते हैं तथा दूसरे बेटे कलियान सिंह के उत्तराधिकारी शंखधूरा (मुनस्यारी) में



निवास करते हैं। कलियान सिंह हिमालयी सर्वेक्षण के इतिहास का एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व रहा था। आज दुर्भाग्य से रॉयल ज्याग्रेफिकल सोसायटी के विवरणों तथा कुछ अन्य पुस्तकों में कुछेक बार नाम चर्चा के अलावा उसके जीवन पर कोई अधिक जानकारी नही मिलती है।

नैन सिंह रावत के असली अंवेषक उत्तराधिकारी किशन सिंह रावत ने नैन सिंह के काम को आगे बढ़ाया था। किशन सिंह ने नैन सिंह के साथ और स्वतंत्र रूप से भी काम किया था। नैन सिंह पालन-पोषण, सामान्य शिक्षा तथा सर्वेक्षण प्रशिक्षण में भी किशन सिंह का संरक्षक, शिक्षक तथा प्रशिक्षक रहा था। जब नैन सिंह धारचुला में शिक्षक नियुक्त हुआ तो वह किशन सिंह को अपने साथ ले गया था। किशन सिंह की नन्हे कृष्णा से तिब्बत, मध्य एशिया तथा मंगोलिया में काम करने वाले महत्वपूर्ण अंवेषक-सर्वेक्षक बनने तथा राय बहादुरी का खिताब पाने तक की यात्रा उसकी अपनी स्वतंत्र कहानी भी है और नैन सिंह की गाथा का विस्तार भी। किशन सिंह का जीवन तथा योगदान एक अलग अध्ययन की मांग करता है। इसी तरह अन्य पंडितों पर कतिपय विस्तार से लिखा जाना चाहिए। इससे उनके कृतित्व तथा व्यक्तित्व पर विधिवत रोशनी पढ़ने के साथ ही नैन सिंह रावत से संबंधित अनेक पहलुओं को भी उजागर होने का मौका मिलेगा।

अधिकांश लोग यह भूल गए हैं कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदुस्तान में इतना महान यायावर अंवेषक हुआ था। अंवेषण के तमाम साहित्य तथा इतिहास में उसका बार बार संदर्भ आता है। आजादी के बाद नैन सिंह को सिर्फ तब याद किया जा सका जब सन् 1967 में भारतीय सर्वेक्षण विभाग की द्वि-शताब्दी के अवसर पर विभाग के देहरादून मुख्यालय के मुख्य हाथीबड़कल्ला परिसर की एक मुख्य सड़क से नैन सिंह का नाम जोड़ा गया था। तत्पश्चात इक्कीसवीं सदी में ग्रेट आर्क की द्वि शताब्दी के समय अवश्य नैन सिंह की प्रतिमा देहरादून स्थित जियोडेटिक एवं रिसर्च ब्रांच (पूर्व जी. टी. सर्वे) के मुख्यालय में लगाई गयी थी। सन् 2004 में नैन सिंह पर एक डाक टिकट भी जारी किया गया था। 10 अप्रैल 2004 को जियोडेटिक एवं रिसर्च ब्रांच, सर्वे परिसर देहरादून के एक सभागार का नाम नैन सिंह के नाम पर रखा गया। पिथौरागड़ जिले में थल से होकर मुनस्यारी आने वाली सड़क को भी उसके नाम से जोड़ा गया है।

नैन सिंह का मिलम का पैतृक मकान और पाठशाला भवन अनेक सालों तक जीर्णावस्था में खड़े रह कर अब गांव के शेष मकानों की तरह ध्वस्त हो चुके हैं। भटकूड़ा के जिस मकान में उसका जन्म हुआ उसकी खोज कर स्मारक बनाए जाने की समझ हमारे समाज तथा सरकार को आनी चाहिए। इसी तरह मिलम स्थित पंडित किशन सिंह के अर्ध ध्वस्त मकान को भी स्मारक तथा विश्राम गृह का रूप दिया जाना चाहिए। मूर्तियां लगाना या सड़क का नामकरण करना स्वागत योग्य है पर यह अधिक

कठिन कार्य नहीं है। एक यादगार स्मारक बनाने के लिए अधिक समझदारी तथा साधन दोनों चाहिए।

नैन सिंह को याद करने के लिए सिर्फ सर्वेयर तथा अंवेषक की उसकी हैसियत को ही नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि उसकी समग्र जीवन गाथा को जानने का जतन किया जाना चाहिए। एक विवादग्रस्त तथा तिरस्कृत पिता के पुत्र के रूप में किस तरह उसे अपने घर तथा गांव से बाहर जन्म लेना तथा रहना पड़ा, अपने ही परिवार तथा बिरादरी का बार-बार अपमान सहना पड़ा, किस तरह उसके शिक्षक बनने का विरोध हुआ, उसे स्लागेंटवाइट भाइयों के सर्वेक्षण अभियान में ले जाने से प्रारंभ में किस तरह मानी सिंह द्वारा इंकार किया गया, ये घटनाएं उन जटिल परिस्थितियों को समझने का आधार देती हैं, जिनके बीच से वह निकला था। फिर एक कुली, अंशकालिक सर्वेयर, शिक्षक, सर्वेयर-अंवेषक, प्रशिक्षक, लेखक तथा कुछ-कुछ इतिहास लेखक के रूप में भी वह धीरे धीरे विकसित होता चला गया। इस कठिन जीवन यात्रा को समग्रता में देखा जाना चाहिए। वह कहां तक पहुंचा था यह बहुत महत्वपूर्ण है पर इसके साथ ही यह अवश्य देख लेना चाहिए कि वह कहां से चला था।

## अंवेषण की 'पंडित' शैली

नैन सिंह रावत को तिब्बत तथा मध्य एशिया का सर्वे करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंवेषक माना जाता रहा है। इस दौर के उसके अनुभवों का संसार बहुरंगी और बहुस्तरीय था। सर्वे तथा जानकारियां इकट्ठा करने की उसकी शैली असाधारण तथा अतिरिक्त रूप से उपयोगी थी। सामान्य तापमान, क्वथनांक, हिमांक, अक्षांश, देशांतर, जनसंख्या, नदी की चौड़ाई तथा गहराई, पानी के बहाव की गति आदि पता करने के लिए वह कुछ भी कर सकता था। इस मामले में वह जरा भी लापरवाही का विरोधी था। इसलिए उसके द्वारा खोजे गए स्थानों का जब बाद के वर्षों में सर्वे किया गया तो उसके सर्वेक्षण को ज्यादातर त्रुटिहीन पाया गया। यह समस्त कार्य कठिन और ऊंचे इलाकों में अत्यधिक मानसिक संतुलन तथा शारीरिक श्रम के साथ किया गया था। दरअसल इससे कम सक्रियता तथा समर्पण से यह कार्य संभव भी नहीं हो सकता था।

किसी यात्रा में बौद्ध लामा बनकर और 'ओम मणि पद्मे हुम' का जाप करते हुए वह कदम गिनता रहा। कभी बिना मंत्र के यह गिनती हुई और कुछ एक बार वह घोड़ा दौड़ाते हुए भी दूरी नापना नहीं भूला। घोड़े के कदमों को अपने कदमों में बदल कर यह कार्य होता था। कभी बुशहरी व्यापारी बनकर और वहीं की बोली में बातचीत कर वह अपने को बुशहरी (हिमाचली) व्यापारी सिद्ध करने में सफल रहता, कभी जोहारी व्यापारी के रूप में ल्हासा के व्यापारियों के पास फंसी जोहारियों की धनराशि लेने के



बहाने का औचित्य सिद्ध करने में कामयाब रहता तो कभी अपने को पश्चिमी तिब्बत का निवासी बताकर खतरे पार कर जाता।

पहली ल्हासा यात्रा में वह हमराही छिरंग नोरफेल के सो जाने पर रात में अक्षांश और तापमान आदि ज्ञात करने निकल पड़ता तो अनेक बार तिब्बत की झीलों की लंबाई-चौड़ाई पता करने में हफ्तों तक भागता रहता। खोतान-यारकंद की यात्रा के समय उसने सिर्फ क्वथनांक ज्ञात करने हेतु आग जलाने की कोशिश में कितने ही घंटे लगा दिए। हवा इतनी तेज थी कि दियासलाई जलते ही बुझ जाती थी। पर अंततः चादर-कपड़ों की ओट से आग जलाने में वह सफल हुआ और क्वथनांक का अंकन करके ही रहा। यह सिर्फ दुस्साहस या जिद्दीपन नहीं था। यह एक तरह की प्रतिबद्धता थी, जो उस कठिन भूगोल, जटिल समय तथा विपरीत परिस्थिति में अपरिहार्य ही थी।

तिब्बत या मध्य एशिया की किस नदी का व्यक्तित्व किस तरह का है, कौन सी नदी कब से जमने लगती है, कब पिघलनी शुरू होती है, ब्रह्मपुत्र को पार कराने वाली नावें कैसी थी या किस चोटी से आगे का दृश्य कैसा था, लोग और उनके पहनावे-भाषा की क्या विशेषता थी, कोई भी बात उसकी डायरी में आने से नहीं रही। कभी उसे इस बात का दुख होता था कि यारकंद में बड़े-बूढ़े छोटी लड़कियों से विवाह करते हैं तो कभी पुरुषों की अकर्मण्यता पर वह तरस खाता था। लेकिन विचित्र तिब्बती रीति-रिवाजों से वह उस दिन भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ जब अपनी पहली अंवेषण यात्रा में किरोंग में उसके एक तात्कालिक मित्र दावानंगल की औरत परंपरानुसार रात में उसकी सेवार्थ प्रस्तुत की जानी थी।

चीजों को उनकी संपूर्णता में देखने और जानने की उसकी ललक गजब की थी और अनेक बार इसी कारण उसे अतिरिक्त खतरों से खेलना पड़ा था। यात्रा में उसे कई बार जंगली घोड़ों और हिरनों के झुंड दिखे और अपनी आदत के अनुसार वह उनकी संख्या गिनने लगता। एक बार उसने जंगली घोड़ों को 630 तक और हिरनों को 912 तक गिन डाला। एक अन्य मौके पर उसने 2000 तक हिरनों को गिनने का प्रयास किया था। यारकंद शहर की जनसंख्या उसने 50 हजार के आसपास तक गिनी थी। अन्य अनेक स्थानों की तरह यांगी तथा कूना कस्बों का क्षेत्रफल उसने अपने कदमों से नाप डाला था।

कई मौकों पर भूख और प्यास से तड़पना पड़ा पर उसने न स्वयं साहस खोया और न ही सहयोगियों को खोने दिया। कितनी ही बार उसे भटकना पड़ा पर इससे उसके सर्वेक्षण का कार्य न रुका, न स्थगित हुआ। अनेक बार डाकुओं के हाथ से वह बचा और दर्जनों बार उसने तिब्बत की पुलिस, जोंगपन, गोंबा या अन्य अधिकारियों की आंखों में धूल झोंकी। कितनी ही बार वह अकेले ही काम पर निकल गया और इतना

डूबा रहा कि पता नहीं चला कि डाकुओं के बीच घिर गया है। वह चतुराई से घोड़ा दौड़ाकर बच निकला पर इस दौड़ का उपयोग करना न भूला। और घोड़े की टापें गिन कर उसने दूरी का हिसाब लगा लिया। जैसा कि कहा जा चुका है कि दो बार ल्हासा जाने वाला, पहली बार ल्हासा में 100 दिन तक, यारकंद में पांच माह तक, ट्राडम में 25 दिन तक, सिगात्से में 54 दिन तथा तवांग में 55 दिन तक टिकने वाला वह उस दौर का अकेला अंवेषक था।

चाहे वह पंचेन लामा, दलाई लामा, सामान्य लामा या व्यापारी हों; कोई जोंगपन, गोंबा या अन्य अधिकारी या कोई महल, मठ, मंदिर अथवा लोग, गांव, नदी, झील या पहाड़ हों उसने इन पर औपचारिक नजर कभी नहीं डाली। वह इनकी एक एक पर्त में जाने का प्रयास करता था। उनके प्रत्यक्ष स्वरूप से जुड़े अन्य आयामों को ढूंढता था। इसलिए उसने इनसे वह जानकारी प्राप्त की अथवा इनकी वह स्थिति ज्ञात की जो सामान्यतया दिखती नहीं थी या तमाम पर्तों को हटाने के बाद ही नजर आ सकती थी।

सोना साफ करने की विधि, खनन कर रहे मजूरों की स्थिति, उनके सामूहिक गीत, रेशम के कीड़े का जीवन चक्र, नमक का प्रारंभिक चेहरा ही नहीं औरतों की स्थिति, चीजों के दाम या मठों की नक्काशी तथा विभिन्न फसलों या उत्पादनों पर ली जाने वाली कर राशि भी उसकी आंख से अपने को न छिपा सकी। ल्हासा के एक बाजार में एक बार वह जीवाश्म के रूप में बिक रहे ढाई फीट लंबे खोपड़े को देखकर चकित हुआ और उसके भीतर के गहन जिज्ञासु को इसलिए दब जाना पड़ा कि इस काम में पड़कर सर्वे का काम ठीक से न हो पाने की संभावना बढ़ जाएगी या कोई तिब्बती जासूस उस पर नजर रखना शुरू कर देगा।

असाधारण रूप से संवेदनशील नैन सिंह ने रूखे सर्वे कार्य को एक बहुरंगी शोध यात्रा के रूप में ही लिया और उसे इसी रूप में जिया। उसे कदाचित् इस तथ्य में दिलचस्पी लेने का अवसर ही नहीं मिला कि उसकी यात्राओं का साम्राज्यवादी उपयोग कितना महत्वपूर्ण है। जब वह युवा था तो सन् 1857 का विद्रोह हुआ था, जब वह सफल अंवेषक के रूप में साम्राज्य में लगातार चर्चित था तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जन्म ले चुकी थी। उसे तब यह भी पता नहीं था कि जिस लार्ड लिटन के हाथ से उसने सी.आइ.ई. का तमगा लिया था, स्वयं उसने किस तरह प्रेस एक्ट तथा आर्म्स एक्ट जारी कर भारतीय समाज में उभर रही चेतना को दबाने का प्रयास किया था। स्वयं उसके अपने इलाके में इस बीच बहुत बड़ा सामाजिक परिवर्तन हो चुका था और राजनैतिक चेतना में भी पर्याप्त इजाफा हो गया था। खुद उसके परिवार की अगली पीढ़ी में राष्ट्रीय संग्राम में हिस्सेदारी करने वाले जन्म ले रहे थे।

कदाचित् उसे यह भी लगा हो सकता है कि अंवेषण यात्राओं ने, जो उसकी रोजी का आधार तथा प्रसिद्धि का कारण बनीं, उसको अपने लोगों और अपनी संस्कृति से



काट दिया था। लेकिन दरअसल इन यात्राओं ने उसे कितने ही समाजों और कितनी ही संस्कृतियों का अनुभव दिया था और आज सिर्फ उसकी यात्राएं ही हमें उसको अपना प्रेरक पूर्वज मानने का दबाव देती हैं। उसकी डायरियां आज उसे एक यात्रा लेखक के रूप में स्थापित करती हैं और हमारी उस दौर की भाषा के नमूने हमें सौंपती हैं। यही नहीं, उसकी डायरियां ऐतिहासिक स्रोत सामग्री की तरह भी प्रयुक्त हो सकती हैं और वे उत्तराखंड के भोटांतिक तथा पश्चिमी तिब्बत तथा मध्य एशिया के कुछ हिस्सों के बारे में ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य उजागर करती हैं, जो सामान्यतया हमें प्रसिद्ध ग्रंथों में नहीं मिल पाते हैं।

## जासूसी और अन्वेषण

कुछ लेखकों ने नैन सिंह या अन्य पंडितों को जासूस ('अनहोली स्पाइज ऑव कैप्टन मांटगोमरी' या 'पंडित स्पाइ') भी कहा है, हालांकि वे उसकी या उनकी प्रशंसा करने में भी पीछे नहीं रहे। लेकिन जासूसी की यह विवशता अनिवार्य रूप से औपनिवेशिक शासकों द्वारा कराए जा रहे इस कार्य के साथ जुड़ गई थी। नैन सिंह को कुछ स्थानों पर झूठ भी बोलना पड़ा था। लेकिन इस सबका लक्ष्य अपनी रोजी अर्जित करने के साथ-साथ भौगोलिक ज्ञान में बढ़ोत्तरी ही था। यह भी सच है कि नैन सिंह तथा साम्राज्यवादी शासक एक ही निगाह से इन अभियानों को नहीं देख रहे थे। नैन सिंह अपनी रोजी के लिए सर्वे विभाग में गया था पर वह कभी 'भाड़े का सर्वेयर' नहीं बना। सिर्फ दो दशकों के अंतराल में (और सर्वेक्षण विभाग में तो मात्र 10 साल) उसने अपना यह योगदान देते हुए जैसे अपने आप को खो दिया था।

यह अत्यंत महत्वपूर्ण था कि नैन सिंह सिर्फ साम्राज्यवादी ज्ञान में ही वृद्धि नहीं कर रहा था बल्कि वृहत्तर मानवीय ज्ञान में भी अपना योग दे रहा था। पंडित सर्वेयरों पर हत्या या डकैती का कलंक नहीं लगा जबकि यंगहजबैंड से ऑरल स्टाइन तक के उपलब्धियों से भरे महान और चर्चित जीवन दागों से बच नहीं सके थे। नैन सिंह तथा अन्य पंडितों द्वारा विभिन्न वर्जित इलाकों में अंवेषण के लिए जो कतिपय काम भेष बदल कर करने पड़े उन्हें निश्चय ही साम्राज्यवाद के 20वीं तथा 21वीं सदी के अन्य आक्रामक कारनामों के मुकाबले अत्यंत कम ही कहा जाएगा।

यह पक्ष देखना भी उचित होगा कि औपनिवेशिक काल में सर्वेक्षण विभाग सेना के अंतर्गत था। अधिकांश सर्वे अधिकारी, सुप्रिंटेंडेंट तथा सर्वेयर जनरल सेना के पदों से थे। भारत का पहला गैर सैनिक सर्वेयर जनरल आजादी के चार दशक बाद सन् 1991 में ही बन पाया था। स्थलाकृतिक सर्वेक्षण का सैन्य विभाग से प्रारंभ से ही संबंध रहा है। तोपों तथा जहाजों के बाद सर्वे कार्य ही औपनिवेशिक सत्ता के सबसे बड़े हथियार थे। मौसम की पड़ताल करने का काम भी नौसेना तथा खेतीहर समाज दोनों के लिए

जरूरी था। इस तरह सर्वे विभाग एक स्वायत्त संस्थान या विश्वविद्यालय की तरह कार्य नहीं कर सकता था। औपनिवेशिक गोपनीयता के संस्कार ने सर्वे विभाग को आज रिमूट सैंसिंग, ई-मेल तथा गूगल अर्थ के जमाने में भी खुलने तथा खिलने का मौका नहीं दिया है।

हमारी सदियों में जासूसी का जो स्वरूप रहा है, उसे देख कर पंडितों के योगदान पर गर्व होता है। बीसवीं सदी के जासूसी तथा तत्संबंधी कारनामों के अनेक अपराध अभी उजागर होने हैं। एक उदाहरण इस संदर्भ में देना शायद उचित होगा। पंडितों जैसे परतंत्र भारत के दुर्गम इलाकों के बेटों, जो दूसरे दुर्गम इलाकों के सर्वेक्षक-अंवेषक बने, द्वारा की गई तथाकथित 'जासूसी', दुनिया के दो सबसे बड़े जनतंत्रों (भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका) द्वारा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भौगोलिक अध्ययन के लिए नहीं बल्कि एक तीसरे राष्ट्र (चीन) के परमाणु कार्यक्रम पर नजर रखने कि लिए उत्तराखंड हिमालय के नंदाकोट तथा नंदादेवी जैसे शिखरों-ग्लेशियरों के पास आणविक संयंत्रों पर नजर रखने वाले उपकरण स्थापित करने, उनमें से एक को खो देने और फिर उसे न ढूंढ़ पाने के 'अपराध' के मुकाबले अत्यंत मामूली थी।

यह सच है कि आधुनिक पर्वतारोहण की ओट में गुप्तचरी होती रही है। अमेरिका ने तो अनेक हिमालयी शिखरों/ग्लेशियरों में घुसपैठ की है। यह सर्वविदित है कि अमेरिकी सहयोग से 1965 में नंदादेवी तथा 1967 में नंदाकोट शिखरों के पास पर्वतारोहण भावना तथा उद्येश्यों को ताक में रख कर आणविक संयंत्रों पर नजर रखने वाले उपकरण स्थापित किए गए थे। इनसे जनित परमाणु प्रदूषण की शंका का अभी तक निदान नहीं हुआ है। इस अभियान में हमारे सरकारी पर्वतारोही भी जाने अनजाने शामिल थे। मजेदार बात यह है कि आई. एम. एफ. (भारतीय पर्वतारोहण संस्थान) के रिकार्ड में इस कारनामे की चर्चा नहीं है। इन संयंत्रों की स्थापना के द्वारा चीनी परमाणु कार्यक्रमों पर नजर रखना मुख्य लक्ष्य था। इनमें से नंदादेवी में ले जाया गया संयंत्र बर्फीली खाई में कहीं फंस गया और अब तक नहीं ढूंढ़ा जा सका है। इस हेतु अनेक पैदल तथा हवाई सर्वेक्षण हो चुके हैं। दूसरा यंत्र एक साल बाद निकाल लिया गया था। ऐसा निश्चय ही पाकिस्तान तथा नेपाल के शिखरों में भी किया गया होगा। सच्चाई कभी न कभी जरुर उजागर होगी।

पंडितों ने औपनिवेशिक शासकों की अवमानना चाहे नहीं की हो लेकिन औपनिवेशिक सत्ता के कार्यों में लगे होने के बावजूद वे सत्ता के समर्थकों, चाटुकारों या निहित स्वार्थों के प्रतिनिधि नहीं थे। साथ ही उनके वंशजों ने देश और काल की पुकार को अनुत्तरित नहीं रखा। नैन सिंह के असली उत्तराधिकारी तथा महत्वपूर्ण अंवेषक राय बहादुर किशन सिंह रावत के तहसीलदार बेटे दुर्गा सिंह रावत तथा बहू तुलसी रावत द्वारा राष्ट्रीय संग्राम में सक्रियता से भाग लेना, सरकारी नौकरी छोड़ना और पिता की



औपनिवेशिक सरकार से मिली संपत्ति को राष्ट्रीय संग्राम में लगा देना इसका उल्लेखनीय उदाहरण है। यही नहीं जिस झलतोला इस्टेट (जिला पिथौरागढ़, उत्तराखंड) को उनके पिता किशन सिंह रावत ने राय बहादुरी के तमगे के साथ पाया था, वहीं दुर्गा सिंह ने पिछड़े कुथलिया बोरा समुदाय को आगे बढ़ाने का काम शुरू किया था। इस अभियान में स्थानीय स्वतंत्रता सेनानी बद्री दत्त पांडे या हरगोबिंद पंत आदि ही नहीं राम मनोहर लोहिया भी झलतोला पहुंचे थे।

नैन सिंह को सर्वे ऑफ इंडिया के रिकार्ड में या अन्यत्र 'ऑरिजिनल पंडित' भी कहा गया था। इसका भाव एक प्रकार से उसके प्रारंभिक पंडितों में होने से जुड़ा था। 'ऑरिजनल पंडित' के दो स्पष्ट अर्थ स्वाभाविक रूप से निकलते हैं। इसका पहला अर्थ है 'मूल पंडित' और दूसरा अर्थ है 'मौलिक पंडित'। यानी नैन सिंह हिमालयी तथा हिमालयपारीय सर्वेक्षण तथा अंवेषण के मूल और मौलिक व्यक्तित्व थे। जैसा कि सामान्य पाठक जानते हैं 'पंडित' शब्द ब्राह्मणों, पुजारियों तथा शास्त्र के जानकारों के लिए इस्तेमाल होता था। इसके अलावा विद्वान तथा अध्यापक के लिए भी यह शब्द इस्तेमाल होने लगा।

नैन सिंह के साथ इस शब्द के जुड़ जाने ने इस शब्द को ही ब्राह्मणों या शिक्षितों के घेरे से बाहर निकाल दिया। एक व्यक्ति जो अपनी विवशताओं के कारण विधिवत शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका वह कुमाऊं के तिब्बती सीमांत के मुनस्यारी तथा धारचूला जैसे दूरस्थ इलाकों की पहली शिक्षित पीढ़ी का निर्माता बना और बाद में यह 'पंडित' शब्द असाधारण हिमालयी अंवेषकों का प्रतीक और पदवी बन गया।

अपनी मौलिकता तथा अंवेषण के प्रति समर्पण ने नैन सिंह को प्रतिष्ठित तो किया ही, स्वयं औपनिवेशिक शासक उसके काम की बाद तक दाद देते रहे। सन् 1904 में ल्हासा अभियान के समय 7 सितंबर की संधि पर हस्ताक्षर होने के बाद यंगहजबैंड द्वारा गरतोक, पश्चिमी तिब्बत का वह स्थान जहां नई संधि के अनुसार व्यापारिक मंडी खुलनी थी, के लिए कैप्टन सी.जी. रॉवलिंग के नेतृत्व में एक अध्ययन दल भेजा गया। रॉवलिंग के साथ कैप्टन रायडर तथा कैप्टन वुड भी थे। बाद में इस अभियान के अनुभवों पर आधारित आलेख रायडर द्वारा रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी में प्रस्तुत किया गया और प्रारंभ में ही अपने इस अभियान के अंवेषण वाले पक्ष की कमजोरी को स्वीकार कर लिया गया। साथ ही यह बताया गया कि उनका अभियान पुराने सर्वेक्षणों की जानकारियों से संचालित था। यह जानकारियां मुख्यतः तीन-चार दशक पहले नैन सिंह तथा किशन सिंह द्वारा किए गए कार्य पर आधारित थीं। इस तरह पंडितों के कार्य की सराहना बाद तक होती रही। यह सराहना कहीं हेनरी यूल की तरह हृदय के अंदर से आती थी और कई बार यह विवशता में निकली नकली प्रशंसा भी थी।

एडनी मैथ्यू ने अपने अध्ययन 'मैपिंग एन इंपायर' में कहा है कि बर्तानवी अधिकारियों को भारतीयों की सर्वेक्षण प्रतिभा पर विश्वास नहीं था, उन्होंने नस्ल (रेस) पर आधारित श्रम विभाजन तथा उत्तरदाइत्व का अनुक्रम (हाइआर्की) स्थापित किया था। और तो और, यूरेशियनों को भी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया गया था। सन् 1825 में जॉर्ज एवरेस्ट के अवकाश पर जाने पर जोसेफ ओलीवर को जी.टी.एस. का इंचार्ज न बनाने वाला मामला ऐसा ही था। लैंबटन तथा एवरेस्ट की वैज्ञानिक समझ वायसराय को प्रभावित नहीं कर पाती थी।

लेकिन तिब्बत, चीन तथा मध्य एशिया के मामले में पंडितों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जा सका। वे इस सर्वेक्षण के अपरिहार्य आधार बने। शायद इंग्लैंड में इस कारण कुछ लोग चिढ़े भी होंगे। निश्चय ही इसका एक प्रमुख कारण स्वयं गोरे अधिकारियों का तिब्बत तथा अन्य वर्जित स्थानों तक न जा पाना था और इस कारण पंडितों द्वारा अतिरिक्त विश्वसनीयता प्राप्त करना भी इसी तथ्य से जुड़ा है। लेकिन नस्ल आधारित समझ साम्राज्यवाद के स्वभाव में थी और इसके पीछे पश्चिम को श्रेष्ठ मानने का दुराग्रह था, चाहे उपनिवेश के लोगों ने अपनी प्रतिभा को सिद्ध करके अनेकों को अपना कायल ही क्यों न बना डाला हो।

अंत में रॉयल ज्योग्रेफिकल सोसायटी, लंदन की सभा में, जहां नैन सिंह की अनुपस्थिति में एक समारोह में उसके नाम का पेट्रंस मैडल दिया जा रहा था, कर्नल हैनरी यूल द्वारा नैन सिंह को 'पंडितों का पंडित' बताते हुए कहे गए शब्दों को दोहराना उचित होगा कि 'नैन सिंह ने किसी भी और जीवित व्यक्ति के मुकाबले एशिया के नक्शे को महत्वपूर्ण भौगोलिक ज्ञान से परिपूर्ण किया है'।

*परिशिष्ट 1*

# पंडित नैन सिंह रावत की वंशावली

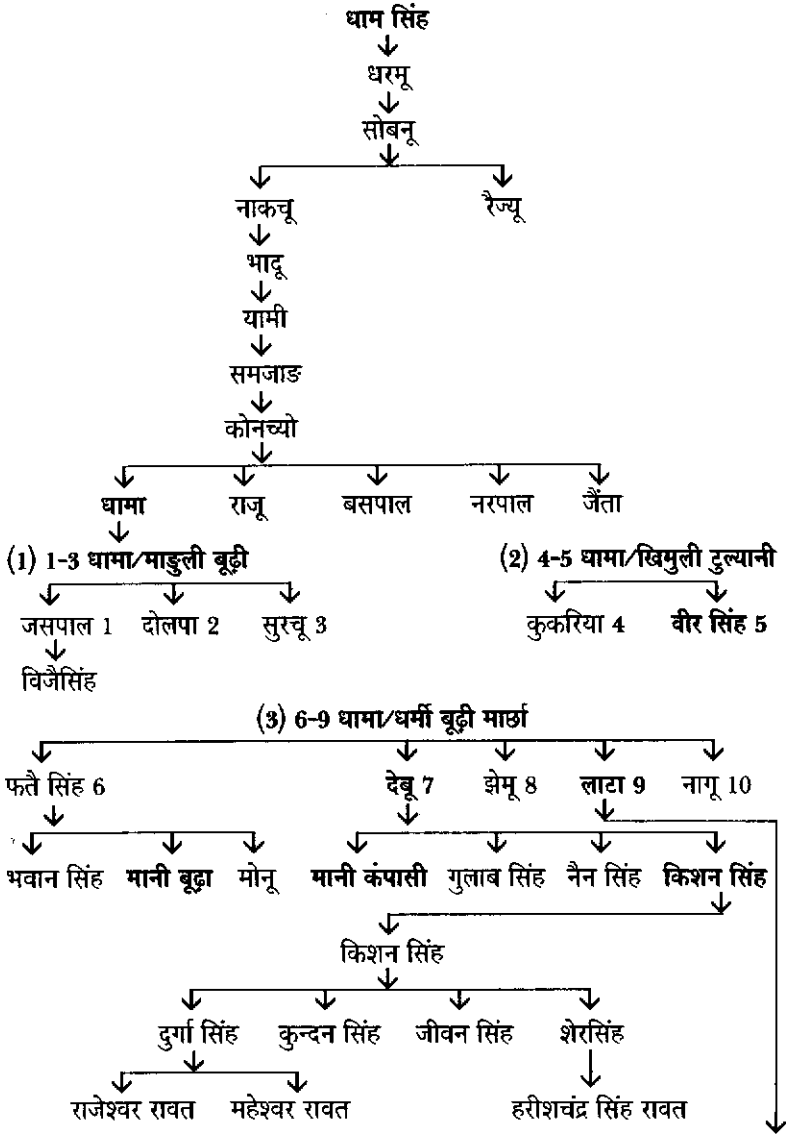

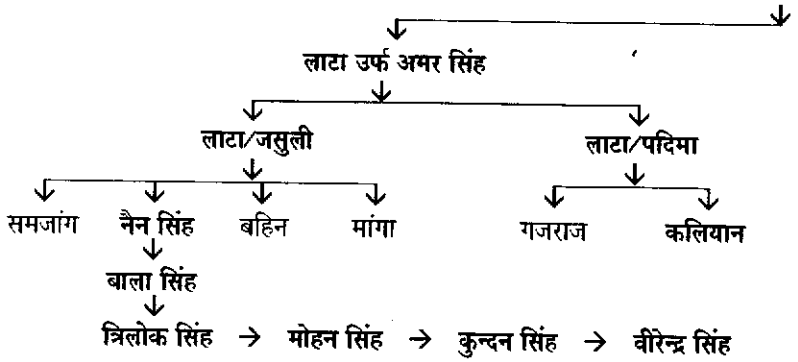


*टिप्पणी :*

**भादू** ने सन् 1670 में बाज बहादुर चंद के साथ कैलास-मानसरोवर की यात्रा की। **जसपाल** ने 10 वर्ष तक गोरखों को जोहार में घुसने नहीं दिया। **विजय सिंह** गोरखाकाल का एक प्रभावशाली व्यक्ति था और सन् 1810 में नेपाल दरबार में गया था। इसी की चौथी पीढ़ी में पादरी **उत्तम सिंह रावत** 1878 में ईसाई बने और पांचवी पीढ़ी में **जॉन** तथा **ऑर्थर रावत** हुए। **देब (देबू) सिंह** तथा **वीर सिंह** ने अगस्त 1812 में मूरक्राफ्ट तथा हियरसे को गरतोक में मदद का प्रस्ताव दिया। **फते सिंह** का बेटा **मानी बूढ़ा** उस युग का महत्वपूर्ण जोहारी था तथा **नैन सिंह** के लिए सर्वाधिक मददगार वही बना। देबू का पहला पुत्र **मानी सिंह (कंपासी)**, चौथा पुत्र **किशन सिंह** तथा **लाटा** का दूसरा पुत्र **नैन सिंह** तथा पांचवा पुत्र **कलियान सिंह** सर्वे के इतिहास में प्रख्यात रहे।



# संदर्भ सूची

**मूल सामग्री**

1. नैन सिंह रावत की तीन हस्तलिखित डायरियां।
2. नैन सिंह कृत 'अक्षांश दर्पण' (1871)।
3. नैन सिंह के लिखे नोट्स तथा अन्य हस्तलिखित विवरण (सर्वे विभाग, देहरादून में स्थित)।
4. भारतीय सर्वेक्षण विभाग के विभिन्न दस्तावेज।
5. राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली तथा उ.प्र. राज्य अभिलेखागार लखनऊ में उपलब्ध सामग्री।
6. Diary of Haider Hearsay, British Library, London.
7. Pre-Mutiny Records: Office of the Commissioner of Kumaun.

**किताबें तथा लेख**

Alder, Garry, Beyond Bokhara: The Life of William Moorcroft Asian Explorer and Pioneer Veterinary Surgeon 1767-1825, 1985, Century Publishing, London.

Allen, Charles, A Mountain in Tibet, 1992 (1982), Rupa & Co, Calcutta.

Andrews, Kenneth R., Trade, Plunder, and Settlement: Maritime Enterprise and the Genesis of the British Empire 1480-1630, Cambridge University Press, 1984, Cambridge.

Anon, Atlas of the Northern Frontier of India, Ministry of External Affairs, Government of India, New Delhi, 1960, Map 11 and 12.

Archer, Mildred, Early Views of India: The Picturesque Journey of Thomas and William Daniell 1786-1794: The Complete Aquatints text with painting 45, 1980, Thames and Hudson, London.

Atkinson, Edwin T., The Himalayan Gazetteer, Volume II, Part 2; Volume III, Part 2, 1882, 1886 (1974), Cosmo, Delhi.

Baker, J. N. L., History of Geographical Discoveries and Exploration, 19—??, George G. Harrap, London.

Bayly, C. A., Empire & Information: Intelligence Gathering and Social

Communication in India, 1780- 1870, Cambridge University Press, New Delhi.

Bellew, H. W., Kashmir and Kashghar: A Narrative of the Journey of the Embassy to Kashghar in 1873-74, 1989 (1875), AES, Delhi.

Britannica Atlas (Encyclopaedia Britannica), 1977, Chicago.

Burrard, S.G. (Ed.), Records of Survey of India, Volume VIII, 2 Parts, 1915, Survey of India, Dehradun.

Burrard, S.G. and Hayden, H. H. (revised by Burrard, Sidney and Heron, A. M.), A Sketch of the Geography and Geology of the Himalaya Mountains and Tibet, 1933 (1907), Delhi.

Cameron, Ian, Mountains of the Gods: The Himalaya and the Mountains of Central Asia, 1987 (1984), T.B.I. New Delhi.

Cammann, S., Trade Through the Himalayas: The Early British Attempts to Open Tibet, 1951, Princeton University Press, Princeton.

Collister, Peter, Bhutan and the British, 1987, Serindia Publications, London.

Colebrooke, H.T., On the Sources of the Ganges in the Himadri or Emodus, *Asiatic Researches*, Volume 11, 1979 (1818), Cosmo, Delhi.

Colebrooke, H.T., On the Height of the Himalaya Mountains, *Asiatic Researches*, Volume 12, 1979 (1818) Cosmo, Delhi.

Cunningham, A., Journal of a Trip through Kulu and Lahul, to the Chu Mureri Lake, in Ladak, *Journal of the Asiatic Society of Bengal*, March 1848, Calcutta.

------, Ladak: Physical, Statistical, and Historical, with Notices of the Surrounding Countries, 1854, London.

Daniell, William and Caunter, Rev. Hobart, 1835, The Oriental Annual, Bull and Churton, London.

Das, Sarat Chandra, Indian Pandits in the Land of Snow; 1992 (1893), AES, New Delhi.

Datta, C. L., Ladakh and Western Himalayan Politics 1819-1848: The Dogra Conquest of Ladakh, Baltistan and West Tibet and Reactions of Other Powers, 1973, Munshiram Manoharlal, New Delhi.

David-Neel, Alexandra, My Journey to Lhasa, 1991 (1927), TMI, New Delhi.

Davis, Samuel, Remarks on the Religious and Social Institutions of the Bouteas, or Inhabitants of Boutan, from the Unpublished Journal of the late Samuel Davis, Esq. F.R.S. &c., *Transactions of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, II (1830): 491-517; Extracts from the Bhutan Journal of Samuel Davis, 1783 in Michael Aris, Views of Medieval Bhutan: The Diary and Drawings of Samuel Davis 1783, 1982, Serindia, London/ Smithsonian, Washington, D.C.



Drew, F., The Jummoo and Kashmir Territories, 1875, London.

Duka, Theodore, Life and Work of Alexander Csoma de Koros, 1972, Delhi.

Eden, Ashley, Pemberton, R. B., Griffiths, W., Political Missions to Bootan, 1972 (1865), Manjusri, New Delhi: 1-394.

Edney, Matthew H., Mapping an Empire: The Geographical Construction of British India 1765- 1843, The University of Chicago Press, Chicago.

Everest, George, On Instruments and observations for Longitude for Travellers on Land, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume The Thirtieth, 1860, London.

Francke, A. H., A History of Western Tibet: One of the Unknown Empires, 1998 (1907), Motilal Banarsidass, New Delhi (Also published by Sterling, New Delhi, 1977 with an Introduction by S.S: Gergan and F. M. Hassnain titled A History of Ladakh).

Frazer, James B.,Account of a Journey to the Sources of the Jumna and Bhagirathi Rivers, *Asiatic Researches*, Volume 13, 1979 (1818).

Fraser, James Baillie, The Himala Mountains, 1982 (1820), Neeraj Publishing, New Delhi.

Francis Buchanan Hamilton, An Account of the Kingdom of Nepal, 1990 (1819), AES, New Delhi.

Filippo, De Filippi, (ed.), An Account of Tibet: The Travels of Ippolito Desideri of Pistoia, S.J., 1712-1727, 1931, Routledge & Sons, London.

Foster, William (Ed.), Early Travels in India 1583-1619, 1968, S. Chand and Co., New Delhi.

French, Patrick, Younghusband: The Last Great Imperial Adventurer, 1995 (1994), Flamingo, London.

Gerard, Alexander, Account of Koonawur in the Himalaya, 1993 (1841), Indus, New Delhi.

Hamilton, Francis Buchanan, An Account of the Kingdom of Nepal, 1990 (1819), AES, New Delhi.

Hardwicke, Captain Thomas, Narrative of a Journey to Sirinagur, Asiatic Researches, Vol 6, 1979 (1809), Cosmo, Delhi.

Hayward, G. W., Journey from Leh to Yarkand and Kashgar, and Exploration of the Sources of the Yarkand River, Journal of the Royal Geographic Society, London, Volume 40, 1870.

Heber, Reginald D.D., 1993 (1827), Narrative of a Journey Through the Upper Provinces of India 1824-25, 2 Volumes, L.P. Publications, Delhi.

Hedin, Sven, Through Asia, 2 Volumes, 1998, Macmillan, London.
Hedin, Sven, Trans-Himalayas: Discoveries and Adventures in Tibet, 3 Volumes, 1910 (1909), Macmillan, London.
Hedin, Sven, Central Asia and Tibet: Towards the Holy City of Lassa, 2 Volumes, 1991 (1903), Classics India, New Delhi.
Hedin, Sven, Southern Tibet: Discoveries in Former Times Compared with My Own Researches in 1906-1908, 11 Volumes, 1916-1922, Stockholm.
Heim, Arnold and Gansser, August, The Throne of the Gods: An Account of the First Swiss Expedition to the Himalayas, 1994 (1939), Book Faith India, Delhi.
Hinger, Nathalie E., A History of Discovery and Exploration: Africa and Asia: Mapping Two Continents, Part I, The Heart Land of Asia, Aldus Books, London.
Hoffmiester, W., Travels in India and Ceylon, 1847, London.
Hoon, Vineeta, Living on the Move: Bhotiyas of the Kumaon Himalaya, 1996, Sage, New Delhi.
Hooker, Joseph Dalton, Himalayan Journals: Notes of a Naturalist in Bengal, the Sikkim and Nepal Himalayas, the Khasia Mountains etc., 2 Volumes, 1987 (1855), Today and Tomorrow Publishers, New Delhi.
Hopkirk, Peter, Trespassers on the Roof of the World, 1991 (1983), OUP Paperback, Oxford.
------, The Great Game: On Secret Service in High Asia, 1991 (1990), OUP Paperback, Oxford.
------, Foreign Devils on the Silk Road: The Search for the Lost Cities and Treasures of Chinese Central Asia, 1984 (1980), OUP Paperback, Oxford.
Huc, Evariste and Gabit, Joseph (translated by William Hazlit), Travels in Tartary Thibet and China 1844-1846, 2 Volumes, 1988 (1928), AES, New Delhi.
Jacquement, Victor Vinceslas, Letters from India Describing A Journey in the British Dominions of India Tibet, Lahore, and Cashmere during the years 1828,1829, 1830, 1831, 2 Volumes, 1993 (1834), AES, New Delhi.
Keay, John, When Men and Mountains Meet, 1993, OUP, Karachi.
------, The Great Arc, 2000, Harpercollins Publishers, London.
------, Explorers Extraordinary, 2001 (1985), John Murray, London.
------, Celebrating 200 Years of the Great Arc, n.d., Laburnum Technologies, New Delhi.



Kennedy, James, Life and Work in Benares and Kumaon 1839-1877, 1993 (1884), AES, Delhi.
Kipling, Rudyard, Kim, 1986 (1901), Exeter Books, New York.
Kumar, Deepak, Science and the Raj 1857-1905, 1997 (1995), OUP, New Delhi.
------, Problems in Science Administration: A Study of the Scientific Surveys in British India 1757-1900, in *Science and Empire* (Edited by P. Petitjean et al.), 1992, Netherlands.
La Touche, T.H.D., The Journal of Major James Rennell, First Surveyor General of India, Memoirs of the Asiatic Society, Volume III, No. 3.
Marco Polo, The Travels (translated by Ronald Latham), 1958, Harmondsworth/Penguins.
Markham, Clements R. (ed.), Narratives of the Mission of George Bogle to Tibet, and of the Journey of Thomas Manning to Lhasa, 1876, London.
Markham, Clements R., A Memoir on the Indian Surveys, 1878 (1871), London.
------, The Fifty Years Work of the Royal Geographical Society, 1881, London, Murray.
Mason, Kenneth, Abode of Snow: A History of Himalayan Exploration and Mountaineering, 1955, Rupert Hart-Davis, London.
------, Kishan Singh and the Indian Explorers, *The Geographical Journal*, Volume LXII, July to December 1923, London.
MacGregor, John, Tibet: A Chronicle of Exploration, 1970, Routledge & Kegan Paul, London.
Maclagan, Edward, The Jesuits and the Great Mogul, 1932, London.
Mehra, Parshotam, The Younghusband Expedition: An Interpretation, 1968, Asia Publishing House, Bombay.
------, In the Eyes of its Beholders: The Younghusband Expedition (1903-04) and Contemporary Media, Modern Asian Studies, 39, 3, 2005, Cambridge University Press, Cambridge.
Meissner, Konrad, Malushahi and Rajula: A Ballad from Kumaun (India) as Sung by Gopi Das, Part I, 1985, Otto Harrassowitz Wiesbaden (Germany).
Minayeff, Ivan Povlovich, Travels in and Diaries of India and Burma, nd (tr. by Hirendranath Sanyal), Eastern Trading Co., Calcutta.
Moira, Lord Rouden, The Private Journal of the Marques of Hastings, 1858, Sounders and Oatley, London.
Montgomerie, T. G., Report of a Route-Survey made by Pundit*...., from Nepal to Lhasa, and thence through the Upper Valley of the

Brahmaputra to its Source, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume Thirty Eighth, 1868, London.

Montgomerie, T. G., Letter written from Camp Ladak dated 21st July 1862 to Secretary of the Bengal Asiatic Society, given in the Appendices (A) in On the Geographical Position of Yarkand and some other Places in Central Asia, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume Thirty Sixth: 1866, London.

Moorcroft, William, A Journey to Lake Manasarovara in U'n-de's, a Province of Little Tibet, *Asiatic Researches*, Volume 12.

Moorcroft, William and George Trebeck, Travels in the Himalayan Provinces of Hindustan and the Punjab, 1986 (1835), Nirmal Publishers, Delhi.

Webb, Captain, Memoir Relative to a Survey of Kemaon, *Asiatic Researches*, Volume 13, 1979 (1818).

Pangtey, R. S., Lonely Furrows of the Borderland, 2005 (1949), Pahar Pothi, Nainital.

Pant, S. D., The Social Economy of the Himalayans: Based on a Survey in the Kumaon Himalayas, 1935, George Allen & Unwin, London.

Pathak, Shekhar, Colonial Intrusion in Uttarakhand, *U. P. Historical Review*, 1987, Vol 4, Allahabad.

Pemble, John, The Invasion of Nepal John Company at War, 1971, Clarendan Press, Oxford.

Pemberton, R. Boileau, Report on Bootan, 1838, Bengal Orphan Military Press, Calcutta.

Philimore, R. H., The Historical Records of the Survey of India (H.R.S.I.), 4 Volumes (Volume 5 not released), Dehradun.

Raper, F.V., Narrative of a Survey for the Purpose of Discovering the Sources of the Ganges, *Asiatic Researches*, Volume 11, 19—(18—) Cosmo, New Delhi.

Rawat, I.S., Indian Explorers of the 19th Century, 1973, Publications Division, New Delhi.

Said, Edward, Orientalism, 1995 (1978), Penguin, London.

Sanwal, B. D., Nepal and the East India Company, 1965, London.

Sandberg, Graham, The Exploration of Tibet: History and Particulars, 1987 (1904), Cosmo, New Delhi.

Saran, Mishi, Chasing the Monks Shadow: A Journey in the Foot Steps of Xuanzang, 2005, Penguin/ Viking, New Delhi.

Schlagintweit, Adolphe and Robert, Journey from Milam in Johar to Gartok, *Journal of Asiatic Society of Bengal*, Volume XXV, 1857.

Schlagintweit, Hermann, Adolphe and Robert De, Results of a Scientific Mission to India and High Asia, Undertaken Between the Years MDCCCLIV (1854) to MDCCCLVIII (1858), by Order of the Court of Directors of the Honourable East India Company, Vol I to IV, 1861, 1862, 1863 and 1866, F.A. Brockhans Trubner & Co, Leipzig/ London.



Schlagintweit, Hermann, Adolphe and Robert De, Results of a Scientific Mission to India and High Asia, Atlas, I to IV Parts, 1861, Leipzig/ London.

Schlagintweit, Hermann, Adolphe and Robert De, Results of a Scientific Mission to India and High Asia, Undertaken Between the Years MDCCCLIV (1854) to MDCCCLVIII (1858), by Order of the Court of Directors of the Honourable East India Company, 1861, Vol. I.

Schlagintweit, Hermann and Robert, From Ladakh to Khotan, *Journal of Asiatic Society of Bengal*, Volume XXVI, 1857

Sherring, C. A., Western Tibet and British Borderland, 1906, London.

Shuyun, Sun, Ten Thousand Miles with out a Cloud, 2004 (2003), Harper Perrennial, London.

Singh, Fauja – Singh, Kirpal, Atlas: Travels of Guru Nanak, 2004 (1976), Punjabi University, Patiala.

Smyth, Edmund, Obituary: Pundit Nain Singh, *Proceedings of the RGS and Monthly Records of Geography*, New Monthly Series, Volume IV, 1882, London.

Strachey, Henry, Narrative of a Journey to Cho Lagan (Rakas Tal), Cho Mapan (Manasarowar) and the Valley of Purang in Gnari, Hundes, in September and October 1846, *Journal of the Asiatic Society of Bengal*, Volume 17, Part II, July- September 1848.

Strachey, Henry, Physical Geography of Western Tibet, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume 23, 1853, London.

Strachey, Henry, Kumaon and Garhwal in the Himalaya Mountains and the Adjoining parts of Tibet, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume 21, 1851, London.

Strachey, Richard, Notice of a Trip to the Niti Pass, *Journal of the Asiatic Society of Bengal*, Volume 19, 1850, London.

Strachey, Richard, Narrative of a Journey to the Lakes Rakas-Tal and Manasarowar in Western Tibet, undertaken in September 1848, *Geographical Journal*, Volume 15, 1900, London.

Sykes, Percy, A History of Exploration: From the Earliest Times to the Present Day, Routledge & Kegan Paul Ltd, London.

The Reader's Digest Great World Atlas, The Reader's Digest Association, London, 1961.

Times Atlas of the World, Volume I, 1958, London.
Traill, George William, Bhotia Mahals, *Asiatic Researches*, Vol. 6.
Trotter, H., Account of the Pundit's Journey in Great Tibet from Leh in Ladakh to Lhasa, and of his Return to India Via Assam, *The Journal of the Royal Geographical Society*, Volume The Forty-Seven, 1877, London.
Turner, Samuel, Account of an Embassy to the Court of the Teshoo Lama in Tibet: Containing a Narrative of a Journey Through Bootan, and Part of Tibet, 1800, London.
Upreti, Mohan, Malushahi-The Ballad of Kumaon, 1982, Sangeet Natak Akademy, New Delhi.
Vigne, G. T., Travels in Kashmir Ladak, Iskardo: The Countries Adjoining the Mountain-Course of the Indus and the Himalaya, North of the Punjab, Two Volumes, 1981 (1842), Sager Publications, New Delhi.
Watters, Thomas, On Yuan Chwang's Travels in India, 2 Volumes, 1961, Munshiram Manoharlal, Delhi.
Waller, Derek, The Pundits: British Exploration of Tibet and Central Asia, 1990, The University Press of Kentucky: Kentucky.
Wessels, C., Early Jesuit Travellers in Central Asia 1603-1721, 1992 (1924), AES, New Delhi.
Webber, Thomas, Forests of Upper India, 1902, London.
White, George Francis, Views in India, Chiefly among the Himalaya Mountains, 1838, Fisher Son and Co, London.
White, J. Claude, Sikkim & Bhutan: Twenty One Years on the North-East Frontier 1887-1908, 1971 (1909), Vivek Publishing, Delhi.
Young, G. M., A Journey to Toling and Tsaprang in Tibet, *Journal of the Punjab Historical Society*, VII, 1919, Calcutta.
Younghusband, Francis, India and Tibet, 1993 (1910), AES, New Delhi.
Yule, Henry and Burnell, A.C., Hobson-Jobson, 1990 (1886), Rupa, Calcutta.
टोलिया, आर. एस., धामू बुढ़ा के वंशजः हिमालय पार क्षेत्रों के वैज्ञानिक सर्वेक्षणों में एक जोहारी परिवार का योगदान, 1996, जोहार सांस्कृतिक संगठन, लखनऊ.
——, नैन सिंह रावतः अध्यापक, प्रशिक्षक और लेखक, 1992, जोहार सांस्कृतिक संगठन, लखनऊ.
टोलिया, रघुनंदन सिंहए,पंडित भाइयों की याद, 1989, *पहाड़-4*, नैनीताल.
डबराल, शिव प्रसाद, उत्तराखंड का इतिहास, भाग 5, वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा.
——, गोरख्याणीः उत्तराखंड का इतिहास, भाग 6, वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा.
——, उत्तराखंड के भोटांतिक, 1964, वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा.



दत्त, तारा, (सं. किरन त्रिपाठी) अपने मुलुक का भूगोलः 1997, पहाड़, नैनीताल.
पंत, ललित, कुमाऊं के आदिवासियों का आर्थिक अध्ययनः राजी तथा शौका के संदर्भ में, कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल का अप्रकाशित शोध प्रबंध, 1982, (शीघ्र प्रकाश्य).
पाठक, शेखर, हिमालय के इतिहास की ओर, उ.प्र. इतिहास कांग्रेस के 14 वें अधिवेशन (2003) में दिया गया अध्यक्षीय व्याख्यान, Dimensions in Indian History (ed. by A.K. Shinha), 2005, Anamika, Delhi.
——, हिमालय के द्वारों का खुलना, 1999, *पहाड़ 9/10*, नैनीताल.
——, उत्तराखंड का यायावर अंवेषकः नैन सिंह रावत, *उत्तर प्रदेश*, 1976, लखनऊ.
पांडेय, बदरी दत्त, कुमाऊं का इतिहास, 1937, देश भक्त प्रेस, अल्मोड़ा.
पांगती, राम सिंह, जोहार का इतिहास तथा वंशावली, 1980, सीमांत सांस्कृतिक संगठन, नई दिल्ली.
पांगती, एस. एस.ए मध्य हिमालय की भोटिया जनजातिः जोहार के शौका, 1992, तक्षशिला, नई दिल्ली.
भट्ट, उमा, अक्षांश दर्पण की पारिभाषिक शब्दावली, जुलाई 1998, *आजकल*, नई दिल्ली.
——, पंडित नैन सिंह रावत का रोजनामचा और उनकी भाषा, जुलाई-अगस्त 2004, *भाषा* (द्वैमासिक), नई दिल्ली.
भट्ट, उमा तथा पाठक, शेखर, एशिया की पीठ पर, 2006, पहाड़ पोथी, नैनीताल.
रायपा, रतन सिंह, शौका, 1974, रायपा ब्रदर्स, धारचूला.
रावत, नैन सिंह बूढ़ा उवरसियर, अक्षांश दर्पणः तारीख और अक्षांश आदि जानने के विषय में, 1871, आगरा.
सिंह, राम, पं. नैनसिंह का यात्रा साहित्य, 1999, प्रेमग्रंथ भनार, टनकपुर.
——, भारतीय अंवेषक पंडित नैन सिंह, *साप्ताहिक हिंदुस्तान*, नई दिल्ली : 10 मई 1973.

**जर्नल तथा पत्रिकाएं**

*Asiatic Researches*
*Himalaya Today*
*Journal of Asiatic Society of Bengal*
*Journal of the Punjab Historical Society*
*Modern Asian Studies*
*Proceedings of the Royal Society*
*Proceedings of the Royal Geographical Society and Monthly Records of the Geography*

*The Journal of the Royal Geographical Society*
*The Geographical Journal*
*Transactions of the Royal Asiatic Society of the Great Britain and Ireland*
*U.P. Historical Review*
*आजकल*, दिल्ली
*उत्तर प्रदेश*, लखनऊ
*कुमाऊं कुमुद*, अल्मोड़ा
*पहाड़*, नैनीताल
*भाषा*, दिल्ली
*नैनीताल समाचार*, नैनीताल
*युगवाणी*, देहरादून
*साप्ताहिक हिंदुस्तान*, दिल्ली
*शक्ति*, अल्मोड़ा

*परिशिष्ट 3*

# पंडित नैन सिंह रावत : कुछ महत्वपूर्ण तिथियां

| | |
|---|---|
| 1624 | जैसुइट पादरियों अंद्रादे तथा मारक्यूज का हरद्वार, श्रीनगर तथा बद्रीनाथ होकर माणा दर्रे के पार छपराङ आगमन। |
| 1757 | प्लासी का युद्ध। बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन शुरू। |
| 1767 | सर्वे ऑव इंडिया की स्थापना। |
| 1789 | चित्रकार डैनियल का उत्तराखंड आगमन। |
| 1790 | कुमाऊं में गोरखा शासन प्रारंभ। |
| 1795 | नैन सिंह के पिता अमर सिंह या लाटा का जन्म। |
| 1796 | हार्डविक का गढ़वाल आगमन। |
| 1802 | ग्रेट ट्रिगनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.) की स्थापना। |
| 1808 | वैब तथा रेपर आदि का उत्तराखंड में सर्वेक्षण। |
| 1812 | मूरक्रोफ्ट की पश्चिमी तिब्बत यात्रा। |
| 1815 | ईस्ट इंडिया कंपनी का उत्तराखंड आगमन। |
| 1818 | वैब आदि द्वारा नंदादेवी शिखर की ऊंचाई निर्धारित। |
| 1820 | अमर सिंह का मिलम से निष्कासन। भटकूड़ा में विस्थापित। |
| 1825 | अमर सिंह का जसुली देवी से विवाह। |
| 1830 | (23 अप्रैल) मांटगोमरी का जन्म। |
| 1830 | (21 अक्टूबर) नैन सिंह का जन्म, ग्राम भटकूड़ा, जोहार, तब जिला अल्मोड़ा, अब जिला पिथौरागढ़। |
| 1830 | रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी की स्थापना, कचनजंगा की ऊंचाई निर्धारित। |
| 1833 | जॉर्ज एवरेस्ट द्वारा हाथी पांव (मसूरी) में दफ्तर तथा घर की स्थापना। |
| 1838 | नैन सिंह की माता तथा अमर सिंह की तीसरी पत्नी जसुली की मृत्यु। |
| 1847 | अमर सिंह की 27 साल बाद सपरिवार मिलम वापसी। |
| 1848 | अमर सिंह की 53 साल की उम्र में मिलम में मृत्यु। |
| 1851 | नैन सिंह का मां से झगड़ कर घर से निकल पड़ना। माणा आगमन और उम्ती से विवाह। |
| 1852 | राधाकांत शिकधर द्वारा चोमोलंगमा या सागरमाथा की ऊंचाई निर्धारित। |

| | |
|---|---|
| 1854 | नैन सिंह और उम्ती की माणा से मिलम वापसी। 24 साल के नैन सिंह का जानवरों की खरीद हेतु चंबा (हिमाचल) गमन। थोलिंग (तिब्बत) होकर मिलम वापसी, अधिकांश जानवरों का बीमारी से मर जाना। |
| 1856 | नैन सिंह स्लागेंटवाइट भाइयों द्वारा लद्दाख में सर्वे हेतु बने दल में भर्ती। |
| 1856-57 | स्लागेंटवाइट भाइयों के साथ शिमला, कश्मीर, लद्दाख, पंजाब आदि क्षेत्रों की यात्रा और असमय वापसी। |
| 1857 | भारत में पहले स्वतंत्रता संग्राम का प्रस्फुटन। कंपनी शासन समाप्त। |
| 1858 | नैन सिंह की बागेश्वर में हेनरी स्ट्रैची से मुलाकात तथा जोहार, नामिक तथा पिंडारी ग्लेशियर की यात्रा। अल्मोड़ा में डिप्टी कमिश्नर से मुलाकात। |
| 1859 | मिलम के नव स्थापित तहसील स्कूल में नैन सिंह अध्यापक नियुक्त। 1861 तक कार्यरत। पूर्व सैनिक अधिकारी तथा तत्कालीन स्कूल इंसपेक्टर एडमंड स्मिथ से मित्रता। |
| 1862 | नैन सिंह का शिक्षक बन कर धारचुला जाना। |
| 1863 | के प्रारंभ में नैन सिंह तथा मानी सिंह सर्वे ऑव इंडिया में नियुक्त और देहरादून प्रस्थान। |
| 1865 | (1 जनवरी) में देहरादून से पहला अभियान प्रारंभ।<br>(13 मार्च) को काठमांडू।<br>(13 अगस्त) को किरोंग से आगे तिब्बत में प्रवेश।<br>(29 अक्टूबर) को सिगास्ते पहुंचा। |
| 1865 | सर्वोच्च शिखर को जॉर्ज एवरेस्ट का नाम दिया गया। |
| 1866 | (10 जनवरी) नैन सिंह का ल्हासा प्रवेश।<br>(21 अप्रैल) को ल्हासा से वापसी।<br>(17 जून) को दारचिन। जुलाई में देहरादून। |
| 1867 | (2 मई) को ठोकज्यालुंग यात्रा शुरू। |
| 1867 | (26 अगस्त) ठोकज्यालुंग पहुंचे। |
| 1867 | (28 दिसंबर) देहरादून वापस। |
| 1868 | (24 मई) रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी द्वारा नैन सिंह को सोने की घड़ी से पुरस्कृत किया गया। नेपाल-ल्हासा यात्रा का विवरण जार्नल ऑव रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के 38 वे खंड में प्रकाशित। |
| 1869 | नैन सिंह तथा साथियों की ठोकज्यालुंग यात्रा का विवरण टी.जी. मांटगोमरी द्वारा जार्नल ऑव रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के 39 वे खंड में प्रकाशित। |



| | |
|---|---|
| 1870 | नैन सिंह फॉरसेथ मिशन में शामिल पर कतिपय कारणों से लेह से वापस। |
| 1871 | आगरा की लिथो प्रेस से नैन सिंह कृत 'अक्षांश दर्पण' प्रकाशित। |
| 1873 | दूसरे फॉरसेथ मिशन में नैन सिंह तथा किशन सिंह शामिल। 9 मई को मसूरी से प्रस्थान।<br>(12 अगस्त) लेह पहुंचे।<br>नवंबर 1873 से मार्च 1874 तक यारकंद में निवास |
| 1874 | (26 मार्च) यारकंद से वापसी।<br>(10 मई) कराकोरम दर्रा पार किया।<br>(26 मई) लेह वापस। |
| 1874 | (15 जुलाई) अंतिम यात्रा लेह से प्रारंभ।<br>(17 सितंबर) ठोकडोरकपा की सोने की खानों पर पहुंचे। |
| 1874 | (18 नवंबर) 8 साल तथा 10 माह बाद नैन सिंह का पुनः ल्हासा आगमन। दो दिन बाद ल्हासा से प्रस्थान।<br>(27 नवंबर) सामये मठ।<br>(24 दिसंबर) तवांग।<br>17 फरवरी 1875 तक तवांग में निवास। |
| 1875 | (1 मार्च) नैन सिंह उपरी असम में ओदालगुड़ी पहुंचा।<br>(11 मार्च) कलकत्ता और फिर देहरादून। |
| 1877 | (1 जनवरी) अल्मोड़ा में नैन सिंह को सी.आइ.ई. तमगा तथा मुरादाबाद में 1000 रुपए सालाना आय देने वाली जागीर दी गई। |
| 1877 | (18 मई) लंदन में नैन सिंह की अनुपस्थिति में रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के पुरस्कार समारोह में 'पेट्रंस गोल्ड मैडल' कर्नल हेनरी यूल को दिया गया। इसी साल ट्राटर द्वारा लेह से ल्हासा की यात्रा का विवरण जार्नल ऑव रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के 47 वे खंड में प्रकाशित। |
| 1878 | (1 जनवरी) कलकत्ता के गवर्नमैंट हाउस में लार्ड लिटन द्वारा नैन सिंह को रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी द्वारा दिया गया 'पेट्रंस गोल्ड मैडल' प्रदान किया गया। इसी दिन पेरिस की ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी द्वारा भेजी गयी सोने की घड़ी भी नैन सिंह को प्रदान की गई। |
| 1878 | मिलम के उत्तम सिंह रावत द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार। |
| 1878-79 | किशन सिंह का ल्हासा प्रवास |
| 1882 | (15 मार्च) के 'द टाइम्स', लंदन में नैन सिंह की मृत्यु का गलत समाचार प्रकाशित। एडमंड स्मिथ द्वारा रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के जार्नल में नैन सिंह को श्रद्धांजलि। किसी के द्वारा भी वास्तविकता जानने का प्रयास नहीं। |

| | |
|---|---|
| 1883 | नैन सिंह द्वारा अपनी आत्मकथात्मक पहली डायरी पूरी की गई। इसके बाद अन्य डायरियां परिष्कृत की गई। |
| 1895 | नैन सिंह की मृत्यु। |
| 1967 | सर्वे ऑव इंडिया की द्वि शताब्दी पर सर्वे परिसर देहरादून का मुख्य मार्ग नैन सिंह के नाम पर अंकित। |
| 1973 | नैन सिंह के पोते के पोते कुन्दन सिंह द्वारा नैन सिंह पर अल्मोड़ा कालेज की मैगजीन 'आस्था' में लेख प्रकाशित। |
| 1973 | आइ.एस. रावत कृत 'इंडियन एक्सप्लोरर्स ऑव 19 थ सेंचुरी' का प्रकाशन। |
| 1973 | (10 मई) 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में राम सिंह का नैन सिंह पर लेख प्रकाशित। |
| 1976 | (अक्टूबर) 'उत्तर प्रदेश' में शेखर पाठक का नैन सिंह पर लेख प्रकाशित। |
| 1977-78 | कुंदन सिंह रावत तथा कवींद्र शेखर उप्रेती से नैन सिंह की डायरियों का प्रथम दर्शन तथा नकल उपलब्ध। मदन मोहन मेहता से नैन सिंह की पहली डायरी की नकल उपलब्ध। बाद में भवान सिंह रावत से पहली मूल डायरी का जिराक्स प्राप्त। |
| 1983-2003 | 'पहाड़' के विभिन्न अंकों में नैन सिंह की डायरियों के अंश प्रकाशित। |
| 1985 | इतिहास कांग्रेस में नैन सिंह पर शोध पत्र प्रस्तुत। |
| 1985 | 'नैनीताल समाचार' के 1 अप्रैल से 31 अक्टूबर तक के अंकों में ठोकज्यालुंग यात्रा विवरण प्रकाशित। |
| 1988 | आर.एस. टोलिया का नैन सिंह पर लेख प्रकाशित। |
| 1989 | (मार्च-मई) 'हिमालय टुडे' में शेखर पाठक तथा उमा भट्ट का नैन सिंह पर लेख प्रकाशित। |
| 1989 | आर.एस. टोलिया का नैन सिंह पर पहाड़ 3/4 में लेख प्रकाशित। |
| 1990 | डेरेक वालर कृत 'द पंडित्स' प्रकाशित। |
| 1992 | आर.एस. टोलिया की एक और पुस्तिका 'नैन सिंह रावत' के साथ 'अक्षांश दर्पण' प्रकाशित। |
| 1992 | आर.एस. टोलिया का 'धामू बुढ़ा के वंशज' प्रकाशित। |
| 1995 | पहाड़ द्वारा नैन सिंह की मृत्यु शताब्दी पर व्याख्यान का आयोजन। |
| 1995 | उत्तराखंड प्रशासनिक अकादमी द्वारा 'नैन सिंह रावत स्मारक व्याख्यान' की शुरुआत। |
| 1997 | पहाड़ द्वारा 140 साल बाद पुनर्प्रकाशित तारा दत्त कृत 'अपने मुलुक का भूगोल' नैन सिंह को समर्पित। |



| | |
|---|---|
| 1998 | (जुलाई) 'आजकल' में उमा भट्ट का 'अक्षांश दर्पण' की पारिभाषिक शब्दावली लेख प्रकाशित। |
| 1999 | राम सिंह द्वारा 'पं. नैन सिंह का यात्रा साहित्य' प्रकाशित। |
| 2002 | ग्रेट ट्रिगनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.) की द्विशताब्दी। फिल्म निर्मित तथा पुस्तकें प्रकाशित। नैन सिंह पर स्वतंत्र फिल्म या पुस्तक नहीं। ग्रेट ट्रिगनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.) परिसर, देहरादून में नैन सिंह तथा किशन सिंह की प्रतिमाएं स्थापित। |
| 2004 | ग्रेट ट्रिगनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.) की द्विशताब्दी पर नैन सिंह पर डाक टिकट जारी। ग्रेट ट्रिगनोमैट्रिकल सर्वे (जी.टी.एस.) परिसर में नैन सिंह के नाम पर सभागार। |
| 2005 | नैन सिंह तथा रॉयल ज्यॉग्रेफिकल सोसायटी के 175 साल होने पर नैन सिंह के समग्र जीवन, अन्वेषण तथा लेखन पर केंद्रित 'एशिया की पीठ पर' ग्रंथ तैयार। |
| 2006 | जौलजीबी से मुनस्यारी मोटर मार्ग नैन सिंह के नाम पर घोषित। |
| 2006 | 'एशिया की पीठ पर' प्रकाशित तथा सर्वे ऑव इंडिया के नैन सिंह सभागार में विमोचित। |

जे. जे. ऑफसेट प्रिंटर्स, पटपड़गंज, दिल्ली–92 द्वारा मुद्रित।